Dr. C.V. Raman University
Kargi Road, Kota, BILASPUR, (C. G.),
Ph. : +07753-253801, +07753-253872
E-mail : info@cvru.ac.in | Website : www.cvru.ac.in

हिन्दी साहित्य का इतिहास - II

Institute of **Open** and **Distance Education**

Faculty of Arts

हिन्दी साहित्य का इतिहास - II

2MAHIN5

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Chhattisgarh, Bilaspur
A STATUTORY UNIVERSITY UNDER SECTION 2(F) OF THE UGC ACT

2MAHIN5

हिन्दी साहित्य का इतिहास

2MAHIN5

हिन्दी साहित्य का इतिहास

Credit- 4

Subject Expert Team

Dr. Shahid Hussain, Dr. C.V. Raman *University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh*

Dr. Kirshan Kumar Bhaskar, Dr. C.V. *Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh*

Dr. Murli Singh Thakur, Dr. C.V. *Raman University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh*

Dr. Manju Bhatt, Dr. C.V. Raman *University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh*

Dr. Kalpana Abhishek Pathak, *Department of Hindi, Govt. College, Kotari, Mungeli, Chhattisgarh*

Miss. Pragya Sharma, Dr. C.V. Raman *University, Kota, Bilaspur, Chhattisgarh*

Course Editor:

- **Dr. Sandhya Dubey, Associate Professor**
  Dr. C.V. Raman **University Khandwa, M.P.**

Unit Written By:

---

1. Dr. Shahid Hussain

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

2. Miss. Pragya Sharma

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

3. **Dr. Radha Sharma**

(Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University)

Warning: All rights reserved, No part of this publication may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the publisher.

Published by: Dr. C.V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.), Ph. +07753-253801,07753-253872 E-mail: info@cvru.ac.in, Website: www.cvru.ac.in

अनुक्रमणिका

ब्लॉक -I

इकाई 1 आधुनिक काल की पृष्ठ भूमि 1
इकाई 2 आधुनिक काल की परिस्थितियाँ 14
इकाई 3 सन 1857 की राज्य क्रांति एवं पुनर्जागरण 30
इकाई 4 भारतेंदु युग 47

ब्लॉक -II

इकाई 5 द्विवेदी युग 60
इकाई 6 छायावाद 75
इकाई 7 प्रगतिवाद 89
इकाई 8 प्रयोगवाद 99

ब्लॉक -III

इकाई 9 नई कविता 110
इकाई 10 उपन्यास 120
इकाई 11 कहानी 148
इकाई 12 नाटक 177

ब्लॉक -IV

इकाई 13 निबंध 195
इकाई 14 संस्मरण और रेखाचित्र 219
इकाई 15 जीवनी और आत्मकथा 230
इकाई 16 रिपोतार्ज 242

ब्लॉक - I

इकाई -1

आधुनिक काल की पृष्ठ भूमि

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 आधुनिक काल की पूर्व पीठिका

1.4 नामकरण एवं सीमांकन

1.5 साहित्य, संगीत एवं अन्य कलाएं

1.6 सार संक्षेप

1.7 मुख्य शब्द

1.8 स्व -प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1.9 संदर्भ सूची

1.10 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहास में प्रत्येक काल का अपना विशिष्ट योगदान और प्रभाव रहा है। रीतिकाल की श्रृंगार प्रधान परंपरा के बाद साहित्य ने आधुनिक युग में एक नई दिशा ग्रहण की, जो समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था, और संस्कृति के व्यापक परिवर्तनों से प्रेरित थी। 'आधुनिक' शब्द न केवल समय की नवीनता को दर्शाता है, बल्कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण, बौद्धिकता और तर्कशीलता का भी परिचायक है।

आधुनिक युग का प्रारंभ ऐसे समय में हुआ जब भारत पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति के संपर्क में आया। ब्रिटिश शासन के लगभग दो शतकों ने देश की सामाजिक और सांस्कृतिक संरचना को गहराई से प्रभावित किया। इस काल में हिंदी साहित्य ने इन परिवर्तनों को न केवल आत्मसात किया, बल्कि साहित्यिक विधाओं, विषयों और अभिव्यक्तियों में भी नवाचार प्रस्तुत किया।

यह युग न केवल साहित्यिक चेतना का प्रतीक है, बल्कि यह उस संघर्ष और समझौते की प्रक्रिया का भी गवाह है, जिसमें भारतीय समाज ने आधुनिकता के साथ तालमेल बिठाने का प्रयास किया। आधुनिक युग ने हिंदी साहित्य को एक नई दिशा और गत्यात्मकता प्रदान की, जो न केवल प्राचीन परंपराओं से जुड़ी रही, बल्कि नवीन विचारधारा का भी परिचय देती है।

1.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- आधुनिक युग के स्वरूप को स्पष्ट कर सकेंगे तथा आधुनिक युग के नामकरण पर विचार कर सकेंगे।
- आधुनिक युग की परिस्थितियों से अवगत हो सकेंगे।
- राष्ट्रीय आंदोलन में आधुनिक युग की भूमिका के महत्व को समझ सकेंगे।
- प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद के विषय में जान पाएंगे।
- नई कविता, नवगीत एवं समकालीन कविता के स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।

1.3 आधुनिक काल की पूर्व पीठिका

आधुनिक काल को शुक्ल जी ने 'गद्यकाल' की संज्ञा दी है, किंतु इस काल में आधुनिक हिंदी कविता बहुमुखी होकर विकसित हुई और इसी काल के द्वितीय चरण में आकर कविता में भाषाई क्रांति आई। अब कविता खड़ी बोली हिंदी में रची जाने लगी। इस प्रकार हिंदी में पहली बार आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास गद्यात्मक और पद्यात्मक दो प्रकार से हुआ।

यहां आधुनिक काल के 'आधुनिक' शब्द को लेकर प्रश्न उठना स्वाभाविक है। साहित्य के संदर्भ में तथा इतिहास के संदर्भ में इसे दो अर्थों में समझा जा सकता है। एक तो आदिकाल तथा मध्यकाल से भिन्न नवीन इहलौकिक दृष्टि

की सूचना देने वाली सभी गतिविधियों के परिप्रेक्ष्य में और दूसरे लौकिक, सामाजिक एवं सांसारिक दृष्टिकोण के बदलते, संवरते परिप्रेक्ष्य में। रीतिकाल में श्रृंगारिकता, ऊहात्मकता, रूढ़िवादिता तथा शास्त्रीयता से समृद्ध एक विशेष प्रकार के साहित्य ने एकरसता और अरुचि पैदा कर दी थी। तत्पश्चात नवीन ऐतिहासिक प्रक्रिया प्रारंभ हुई और आधुनिक गत्यात्मकता का संचार होने लगा। यह आधुनिक तथा नवीन दृष्टिकोण कला और साहित्य में भी इसीलिए अभिव्यक्त हुआ क्योंकि इस युग में सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में इसका प्रादुर्भाव हो रहा था।

रीतिकाल के उत्कर्ष के बाद जिस नए युग का आगमन हो रहा था, उसके संकेत अंग्रेज़ों की नई आर्थिक नीति, औद्योगिक क्रांति, संचार व्यवस्था तथा मुद्रणालयों के प्रचार-प्रसार से मिलने लगते हैं। एकरसता और स्थिरता से निकलकर देश अब गत्यात्मकता का अनुभव करने लगा था। परंपराएं टूट रही थीं, रूढ़ियों और पाखंडों का विरोध हो रहा था। सामाजिक जीवन शैली में नवीनता दिखाई दे रही थी। इन बदलती परिस्थितियों ने ही पुनर्जागरण को जन्म दिया।

धार्मिक दृष्टि से भी परिवर्तन हो रहा था। अंग्रेज़ों के आक्रामक रुख की परिभाषा बदल रही थी, धर्म इहलौकिक आकांक्षाओं का वाहक बन गया था। लोगों का दृष्टिकोण वैज्ञानिक एवं तार्किक होने लगा। धर्मसुधारकों ने भी धर्मशास्त्रों की शरण ग्रहण की। दयानंद सरस्वती एवं राममोहन राय जैसे समाजसुधारकों ने तर्क और प्रमाण के आधार पर समाज सुधार कर कुरीतियों के निवारण का प्रयास किया। परिणामतः देशवासियों में आत्मसम्मान एवं आत्मविश्वास जागा। इसी चेतना ने पश्चिमी चुनौती का सामना करने और स्वतंत्रता हासिल करने की मांग को स्वर दिया। अतः धर्मसुधार और राष्ट्रीयता की दूरी कम होने लगी। पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली का भी प्रभाव पड़ा।

अतः नए अर्थतंत्र, बदलती शिक्षा प्रणाली तथा प्रचार-प्रसार पाते संचार माध्यमों से आधुनिकीकरण का प्रादुर्भाव हुआ। आधुनिकीकरण की इस दृष्टि में वैज्ञानिकता थी, लोकसम्पृक्ति थी और तर्कसंगत व्यवहार था। परंतु आधुनिकता के इस

प्रभाव-प्रसार का तात्पर्य यह नहीं कि भारतीयों ने पश्चिमीकरण की प्रक्रिया का अनुकरण किया। पौराणिक-ऐतिहासिक व्याख्यानों के साथ-साथ समसामयिक चिंतकों, विचारकों, दार्शनिकों एवं समाज-सुधारकों की वैचारिक पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में भी साहित्य को समाज से जोड़ा। छूआछूत, जाति प्रथा तथा स्त्री-पुरुष में भेदभाव का विरोध, समानता, स्वतंत्रता, राष्ट्रीय चेतना, वैज्ञानिकता का ग्रहण तथा नवीन मानवतावाद के आविर्भाव का समर्थन आदि प्रसंगों से आधुनिक युग की इस पृष्ठभूमि को समझा जा सकता है। इस युग में बहुत से अंतर्विरोधों के बावजूद वैचारिक मान्यताओं के स्रोतों ने जनसामान्य को एक बौद्धिक एवं तार्किक आधार प्रदान किया।

हिंदी साहित्य के आधुनिक युग का प्रारंभ कब से माना जाए इस विषय में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। सामान्यतया इसका प्रारंभ संवत 1900 अर्थात 1843 ई. से माना जाता है। कुछ विद्वानों ने 1857 से नवीन सामाजिक-राजनीतिक चेतना के प्रादुर्भाव का संदर्भ जोड़ते हुए यहीं से आधुनिक काल का प्रारंभ माना। इस संदर्भ में डॉ. नगेन्द्र का मत विचारणीय है- "सामान्यतया रीतिकाल के अंत (1843) से आधुनिक काल का आरंभ मानने की परंपरा रही है, नवीन सामाजिक-राजनीतिक चेतना के संवहन के फलस्वरूप सन् 1857 को भी यह गौरव दिया जाता है, किंतु साहित्य-क्षेत्र में नई विचारधारा का प्रवेश वस्तुतः भारतेंदु के रचनाकाल से हुआ। इसके पूर्ववर्ती कालखंड की गणना आधुनिक काल के अंतर्गत तो होगी, किंतु उसे भारतेंदु युग की पूर्वपीठिका के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।"

1.4 नामकरण एवं सीमांकन

इस इकाई में हम आधुनिक युग के नामकरण एवं सीमा-निर्धारण पर संक्षिप्त समीक्षा करते हुए यही स्पष्ट करेंगे कि कोई भी कालखंड अपने बदलाव के कारण ही किसी दूसरे कालखंड से भिन्न होता है। बदलाव की यह प्रक्रिया यों तो निरंतर

चलती ही रहती है किन्तु इस प्रक्रिया से प्राप्त परिणाम जब अत्यन्त मुखर होने लगते हैं और ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियाँ साहित्य और भाषा की सोच, दिशा, दृष्टि तथा चेतना को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। तभी एक नए युग का स्वरूप उभर कर सामने आता है।

हिंदी साहित्य के आधुनिक युग का प्रारंभ कब से माना जाए इस विषय में भी विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। सामान्यतः इसका प्रारंभ संवत् 1900 अर्थात् 1843 ई. से माना जाता है। कछ विद्वानों ने सन 1857 से नवीन सामाजिक-राजनीतिक चेतना के प्रादुर्भाव का संदर्भ जोड़ते हुए यहीं से आधुनिक काल का प्रारंभ माना। यों तो बदलाव के स्पष्ट चिह्न भी, जैसा कि पहले कहा भी गया है, उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में स्पष्टतः दिखाई देते हैं। संयोग से आधुनिक हिंदी साहित्य में जीवन-बोध के प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म भी उन्नीसवीं शती के मध्य अर्थात् सन् 1850 में ही हुआ था। परन्तु ठीक इसी वर्ष से आधुनिक युग की शुरुआत मान लेना तर्कसंगत नहीं लगता। इस संदर्भ में डॉ. नगेन्द्र का मत विचारणीय है- 'सामान्यतः रीतिकाल के अंत (1843) से आधुनिक काल का आरंभ मानने की परम्परा रही है, नवीन सामाजिक-राजनीतिक चेतना के संवहन के फलस्वरूप सन् 1857 को भी यह गौरव दिया जाता है; किन्तु साहित्य-क्षेत्र में नई विचारधारा का प्रवेश वस्तुतः भारतेन्दु के रचनाकाल (1868) से हुआ। इसके पूर्ववर्ती कालखंड (1843-1868) की गणना आधुनिक काल के अंतर्गत तो होगी, किन्तु उसे भारतेन्दु युग की पूर्वपीठिका के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।' (हिन्दी साहित्य का इतिहास, संपादक, डॉ. नगेन्द्र. पृष्ठ 437) आधुनिक भारत की सबसे महत्वपूर्ण घटना वह है जब अंग्रेजों ने अपने व्यापारिक हितों को राजनीतिक हितों में बदल दिया था। इस दृष्टि से सन् 1757 ई. में हुआ प्लासी का युद्ध तथा सन् 1764 ई. में हुआ बक्सर का युद्ध बहुत महत्वपूर्ण है। अंग्रेजों ने इन दोनों युद्धों में विजय हासिल करके अपना भावी

राजनीतिक मार्ग प्रशस्त किया था। अब उन्हें चुनौती देने वाला कोई शेष न था। यहीं से भारतीय इतिहास के आधुनिक काल का प्रारंभ माना जाने लगा। देश की तदयुगीन परिस्थितियों ने साहित्य और सृजन को रचना और रचनाकार को ऐसे परिवेश में बहुत प्रभावित किया।

अंग्रेजी राज्य के प्रचार-प्रसार, उनकी विविध नीतियों तथा विचार दृष्टियों ने साहित्य को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया। सन् 1800 ई. में कलकत्ता में स्थापित किए गए फोर्ट विलियम कॉलेज के अंतर्गत भारतीय साहित्य के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था, पाट्य पुस्तकों के संपादन, लेखन, प्रकाशन आदि के परिप्रेक्ष्य में इस प्रभाव को सहज ही देखा भी जा सकता है। यह युग गद्य के प्रचार-प्रसार के आधिक्य के कारण गद्य-युग ही कहलाया। साहित्य और भाषा के इतिहास एवं विकास की दृष्टि से भी देखें तो यही प्रमाणित होता है कि गद्य के विकास की यात्रा का श्रीगणेश भी सन् 1800 में स्थापित फोर्ट विलियम कॉजेज से ही होता है। यह ठीक है कि आचार्य शुक्ल ने नामकरण का प्रमुख आधार 'प्रवृत्ति-विशेष' को माना परन्तु आधुनिक काल के संदर्भ में वे भी इसे गद्य भाषा की प्रमुखता के कारण गद्य काल ही कहते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि, आधुनिक चेतना तथा तर्कसंगत वैचारिकता का वहन भी गद्य भाषा ही बाखूबी कर सकती थी। परन्तु इस आधार पर इस काल को 'गद्य काल' कहना उचित नहीं। ऐसा करने से आधुनिक काव्य की दीर्घ परंपरा के साथ अन्याय होगा।

प्रवृत्ति की दृष्टि से देखें, जो आधुनिक काल के अधिकांश साहित्य में एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा बौद्धिक धरातल देखने को मिलता है। यही 'आधुनिकता' की प्रवृत्ति इस युग के साहित्य को रीतिकाल से पृथक भी करती है। आधुनिक काल नामकरण की सटीकता और सार्थकता का आभास इस बात से भी मिलता है कि इसके अंतर्गत वे सभी अर्थ छवियाँ विकीर्ग होती जान पड़ती हैं जिनका संबंध पुनर्जागरण, नवीनता, प्रगतिशीलता, वैज्ञानिकता, बौद्धिकता तथा अस्तित्ववादिता आदि प्रवृत्तियों से माना जाता है। आधुनिकता की यही भावना

इस युग के साहित्य को मध्यकालीन रूढ़िवादिता, एकरसता श्रृंगारिकता तथा रीतिबद्धता आदि प्रवृत्तियों से अलग भी करती है। अतः जीवनधारा के विविध स्रोतों को बद्ध एवं मुक्त रूप में स्वीकारने तथा अभिव्यक्ति देने वाले इस गत्यात्मक काल को 'आधुनिक काल' ही कहा जाना उचित है। मनुष्य के सुख-दुःखों से, उसके जीवन की खट्टी-मीठी अनुभूतियों से तथा समाज एवं राष्ट्र की परिवर्तनशील स्थितियों से साहित्य को जोड़ने वाला यह काल 'आधुनिक' शब्द की सार्थकता के अनुकूल ही ठहराता है। काव्य या गद्य-विधाओं में अब परलौकिक नहीं लौकिक व्यक्ति, लौकिक समस्याएँ तथा सभी लौकिक संदर्भ समाहित होने लगे। साहित्य, धर्म, दर्शन, चित्र, संगीत तथा अन्य सभी कलाओं में अधुनातन तथा नवीनतम दृष्टिकोण का, वैचारिक क्रांति का तथा वैज्ञानिक पद्धति का आविर्भाव हुआ। ब्रजभाष और अवधी भाषा का रथान जन-भाषा खड़ी बोली ने लेना प्रारंभ कर दिया। सुधार, परिष्कार, जागृति, राष्ट्रीयता, सांस्कृतिक बोध तथा स्वातंत्र्र्थ्य चेतना आदि का प्रबल आधार जिस युग ने दिया उसे 'आधुनिक युग' ही कहा जाना उचित जान पड़ता है। अतः सन् 1868 के आसपास से ही इस 'आधुनिक युग' की प्रारंभिक सीमा मानी जा सकती है और आज तक का समग्र गद्य-पद्य साहित्य इसी युग के भीतर आता है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. हिंदी साहित्य के आधुनिक युग का प्रारंभ कब से माना जाता है?
2. आधुनिक युग का नामकरण किस आधार पर किया गया है?
3. फोर्ट विलियम कॉलेज का हिंदी साहित्य के विकास में क्या योगदान है?

4. आधुनिक युग की साहित्यिक प्रवृत्तियों में कौन-कौन से तत्व सम्मिलित हैं?

1.5 साहित्य, संगीत एवं अन्य कलाएं

आधुनिक काल की इन परिस्थितियों और गतिविधियों ने युगीन साहित्य, संगीत, भाषा तथा चित्रकला आदि को भी प्रभावित किया। रीतिकाल में इन सभी को दरबारों में आश्रय और प्रश्रय मिल रहा था, किन्तु अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना के बाद सामंतवादी ढाँचा टूटा और इन कलाओं के दरबारी आश्रय भी छिन गए। कला, संगीत और नृत्य आदि को घरानों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी संरक्षण मिला करता था। इस युग में वह धीरे-धीरे कम होता चला गया। पाश्चात्य संस्कृति की आंधी ने भारतीय कलाओं के स्वरूप को बदला। संगीत के क्षेत्र में एक नई पद्धति का आविर्भाव 'रवीन्द्र संगीत' के नाम से हुआ, जिसमें पूर्व और पश्चिम की संगीत-शैली का मिश्रण था। चित्रकला पर भी पश्चिमी प्रभाव बढता गया। पश्चिमी ढंग के तैल चित्रों का निर्माण इस अभिव्यक्ति का प्रमाण बना। पत्र-पत्रिकाओं में ये सामंजस्यमयी-संस्कृति के सूचक चित्र छपने लगे थे। आगे चलकर हैबेल, रवीन्द्र नाथ ठाकुर तथा आनंद कुमार स्वामी आदि ने भारतीय चित्र शैली को आधुनिक जीवन दृष्टि से अनुशासित करते हुए एक नया रूप प्रदान किया। बंगाल ने इस दिशा में तो प्रमुख भूमिका निभाई ही, साहित्य की अनेक विधाओं में भी आधुनिक जीवन के नवजागरण की मुखर अभिव्यक्ति देखने को मिली। हिंदी भाषा और साहित्य को भी इसी प्रेरणा से नई दिशा प्राप्त हुई। मुद्रणकला की आधुनिक दृष्टि से इस युग का साहित्य तेजी से तथा नए-नए रूप-रंग में आगे बढ़ा। साहित्यकारों ने अतीत को भी सामने रखकर अपने को गौरवान्वित महसूस करना प्रारंभ किया। देश में उभरती हुई राष्ट्रीय चेतना को भी साहित्य से स्वर प्राप्त हुआ। देश की सभी भाषाओं में साहित्य का वैविध्य तथा जागरण की चेतना देखी जा सकती है। मुद्रणालयों ने साहित्य को जन-जन तक तो पहुँचाया ही, देश को एक सूत्र में बांधने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाई। देश में

नवजागरण लाने वाले समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं, पुस्तकों तथा मुद्रणालयों की इस भूमिका को कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

उस समय सरकारी कार्यालयों, अदालतों तथा शिक्षा संस्थाओं में उर्दू भाषा का आधिपत्य था। फलतः हिंदी भाषा जन-समूह तथा विभिन्न बोलियों के बीच संपर्क माध्यम के रूप में खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करने, उर्दू के स्थान पर नागरी लिपि में खड़ी बोली हिंदी को हिंदी भाषी जनता के नवजागरण का सांस्कृतिक माध्यम बनाने और सरकारी स्तर पर हिंदी को यथायोग्य स्थान दिलाने का जो संघर्ष उस समय हुआ, उसमें आधुनिक बोध की तथा अधुनातन-चेतना की महत्वपूर्ण भूमिका रही। 1868 ई. से ही आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य का प्रवर्तन हुआ और यहीं से साहित्यिक पत्रिका 'कवि-वचन सुधा' की शुरुआत भी। इसके बाद 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका', 'सरस्वती', तथा 'मतवाला' आदि पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हुईं। यों सन् 1802 ई. में कलकत्ता के हरकारू प्रेस, गजट प्रेस तथा मिरर प्रेस से मर्सिया, सिंहासन बत्तीसी, माधोनल, शकुन्तला नाटक तथा बैताल पचीसी का हिंदी में प्रकाशन हो चुका था। अतः खड़ी बोली हिंदी साहित्य के इतिहास में यह ऐतिहासिक वर्ष ही था। इसके बाद तो 'लल्लू जी लाल कवि' द्वारा किया गया खड़ी बोली रूपांतरण 'प्रेम सागर' प्रकाशित हुआ। फिर पंडित सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' तथा 'रामचरित' नामक ग्रंथों में प्रयुक्त राजभाषा सामने आई। तदोपरांत मुंशी सदासुख लाल का 'सुख सागर' नामक ग्रंथ प्रकाशित हुआ। इसी प्रकार इंशा अल्ला खाँ की रचना 'रानी केतकी की कहानी' भी आधुनिक खड़ी बोली गद्य के इतिहास में महत्वपूर्ण रचना के रूप में जानी गई। मिशनरियों द्वारा बाइबिल के अनुवाद किए गए। राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द का आविर्भाव भी हिंदी खड़ी बोली गद्य के विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण चरण माना गया। इसी प्रकार, राजा लक्ष्मण सिंह की रससिद्ध गद्य शैली तथा नवीन चन्द्र राय की गद्य शैली भी आधुनिक हिंदी साहित्य एवं भाषा के विकास की सूचक बनी।

अतः आधुनिक युग की विभिन्न परिस्थितियों ने साहित्यकार, कलाकार तथा चित्रकार आदि को तो प्रभावित किया ही, साहित्य की विभिन्न विधाओं, भाषाओं, शैलियों तथा माध्यमों को भी प्रभावित किया। नवीन शिक्षा प्रणालियाँ, पाठ्य-पुस्तकें, समाचार-पत्र, लेखन-पठन-सामग्री सभी का गद्य एवं पद्य में लेखन सृजन हुआ। पत्रकारिता के विकास ने भी गद्य लेखन को प्रोत्साहित किया। परन्तु इसका तात्पर्य यह भी नहीं कि इस युग में काव्य सृजन हुआ ही नहीं या बहुत कम हुआ। काव्य की दृष्टि से इस युग के इतिहास एवं विकास के सोपानों को देखें तो वे इस प्रकार हैं भारतेंदु युगीन काव्य, महावीर प्रसाद द्विवेदी युगीन काव्य, छायावादी काव्य, प्रगतिवादी काव्य, प्रयोगवादी काव्य, नई कविता, साठोत्तरी कविता, अकविता तथा विचार कविता आदि। इसी प्रकार, गद्य के विकास को विभिन्न साहित्य रूपों में देखें तो बहुत सी विधाएँ उपलब्ध होती हैं- नाटक, एकांकी, उपन्यास, निबंध, समालोचना, गद्यकाव्य, जीवनी, यात्रावृत्त, संस्मरण रेखाचित्र, पत्र-साहित्य, भेंटवार्ता, इंटरव्यू, अनुवाद तथा रिपोर्ताज आदि। आगे की इकाइयों खंडों में आप इनकी समीक्षा भी कर सकेंगे।

अतः आधुनिक युग के हिंदी साहित्य, भाषा, संगीत, चित्र तथा अन्य कलाओं पर भी पश्चिमीकरण का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। कई गद्य विधाएँ विदेशी 'फ्रेम' पर तैयार हुई। भाषा पर, मुहावरों पर, संस्कृति पर, मानसिकता पर, विषय-वैविध्य पर इस विदेशी प्रभाव को देखा जा सकता है। परन्तु यह मात्र विदेशी अथवा पश्चिम का अंधानुकरण नहीं। यह मिश्रित संस्कृति का सूचक है। वैज्ञानिक दृष्टि का वाचक है। यह आधुनिक युग की आधुनिकता का परिणाम है।

1.6 सार संक्षेप

आधुनिक युग हिंदी साहित्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण परिवर्तनकाल है, जिसमें सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है। यह काल पश्चिमी सभ्यता, संस्कृति और विचारधारा के संपर्क से प्रेरित होकर साहित्य में नवीनता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तर्कशीलता को

प्रोत्साहित करता है। ब्रिटिश शासन के लगभग दो शतकों ने भारतीय समाज को नई चुनौतियों और संभावनाओं से परिचित कराया, जिनका प्रभाव हिंदी साहित्य पर भी पड़ा।

इस युग में साहित्य ने न केवल अपने स्वरूप और विषयों में बदलाव किया, बल्कि सामाजिक जागरूकता, बौद्धिकता और राष्ट्रीयता जैसी प्रवृत्तियों को भी अपनाया। आधुनिक युग ने हिंदी साहित्य को प्राचीन परंपराओं से जोड़ते हुए उसे नवीन दृष्टिकोण और अभिव्यक्तियों की ओर उन्मुख किया, जिससे यह काल साहित्यिक नवाचार और सामाजिक चेतना का प्रतीक बन गया।

1.6 मुख्य शब्द

1. **गद्यकाल(गद्ययुग)** - हिंदी साहित्य का वह समय, जब गद्य रचनाओं का प्रमुखता से विकास हुआ। आचार्य शुक्ल ने इस काल को यह नाम दिया, क्योंकि गद्य भाषा ने वैज्ञानिक दृष्टि और विचारधारा को प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त किया।
2. **पुनर्जागरण** - सांस्कृतिक, सामाजिक और वैचारिक बदलाव का वह दौर जिसने नई चेतना और जागरूकता को जन्म दिया। इसने परंपराओं को तोड़ते हुए राष्ट्रीयता और स्वाधीनता की भावना को प्रबल किया।
3. **वैज्ञानिक दृष्टिकोण** - तर्कपूर्ण और बौद्धिक दृष्टि, जो आधुनिक युग के साहित्य को मध्यकालीन रूढ़िवाद से भिन्न करती है। यह दृष्टि लौकिक समस्याओं और उनके समाधान पर केंद्रित है।
4. **भाषाई क्रांति** - वह परिवर्तन, जिसमें ब्रजभाषा और अवधी के स्थान पर खड़ी बोली ने हिंदी साहित्य में मुख्य स्थान प्राप्त किया। यह बदलाव आधुनिक हिंदी कविता और गद्य के विकास का प्रतीक है।
5. **सामाजिक - राजनीतिकचेतना** - 1857 के स्वाधीनता संग्राम और अन्य ऐतिहासिक घटनाओं से उत्पन्न चेतना, जिसने साहित्य को सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों से जोड़ा।

6. **राष्ट्रीयता** - आधुनिक युग में साहित्य में प्रकट भावना, जिसने स्वाधीनता और सांस्कृतिक जागरूकता को बढ़ावा दिया। यह भावना साहित्यिक रचनाओं में विशेष रूप से अभिव्यक्त हुई।
7. **आधुनिकता** - नवीनता, प्रगतिशीलता और वैज्ञानिक दृष्टि की वह भावना, जो साहित्य, कला और जीवन के अन्य क्षेत्रों में दिखाई दी। यह रीतिकालीन प्रवृत्तियों से पूरी तरह भिन्न है।
8. **परिष्कार** - साहित्य और समाज में रूढ़ियों, परंपराओं और कुरीतियों के स्थान पर तर्कपूर्ण और सुधारवादी दृष्टिकोण को अपनाने की प्रक्रिया।
9. **सुधार आंदोलन** - राममोहन राय और दयानंद सरस्वती जैसे समाज सुधारकों द्वारा कुरीतियों को समाप्त करने के लिए चलाए गए प्रयास, जिन्होंने साहित्य को नई सामाजिक सोच प्रदान की।
10. **भारतेन्दु युग** - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के रचनाकाल से आरंभ होने वाला समय, जिसे आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रारंभिक चरण माना जाता है। यह युग नई विचारधाराओं और अभिव्यक्तियों की नींव है।

1.7 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

उत्तर: 1. हिंदी साहित्य के आधुनिक युग का प्रारंभ सामान्यतः संवत् 1900 (1843 ई.) से माना जाता है, जबकि कुछ विद्वान इसे सन् 1857 से जोड़ते हैं।
उत्तर: 2. आधुनिक युग का नामकरण वैज्ञानिक दृष्टि, तर्कसंगत वैचारिकता, नवीनता, प्रगतिशीलता और आधुनिक चेतना जैसे तत्वों के आधार पर किया गया है।

उत्तर: 3. फोर्ट विलियम कॉलेज ने भारतीय साहित्य के अध्ययन-अध्यापन, पाठ्य पुस्तकों के संपादन, लेखन और प्रकाशन के माध्यम से गद्य भाषा के प्रचार-प्रसार को बढ़ावा दिया।

उत्तर: 4. आधुनिक युग की साहित्यिक प्रवृत्तियों में वैज्ञानिकता, बौद्धिकता, अस्तित्ववादिता, सामाजिक जागृति, राष्ट्रीयता, और स्वातंत्र्य चेतना जैसे तत्व सम्मिलित हैं।

1.8 संदर्भ सूची

1. कुमार, पी. (2015)। हिंदी साहित्य में साहित्यिक आधुनिकता। नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. शुक्ल, ए. के. (2007)। समकालीन हिंदी कविता: स्वर और दृष्टि। नई दिल्ली: साहित्य अकादमी।
3. सिंह, आर. पी. (2012)। हिंदी साहित्य में यथार्थवाद और आधुनिकता। जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।
4. वर्मा, आर. (2009)। भारतीय साहित्य में आधुनिक चेतना। नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।

1.9 अभ्यास प्रश्न

1. प्रश्न: आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रारंभिक काल कब से माना जाता है, और इसे निर्धारित करने में किन कारकों का योगदान है?
2. प्रश्न: 'आधुनिक' शब्द का अर्थ साहित्यिक दृष्टि से क्या है, और यह हिंदी साहित्य में किस प्रवृत्ति को व्यक्त करता है?
3. प्रश्न: आचार्य शुक्ल ने हिंदी साहित्य के आधुनिक युग को 'गद्य-काल' क्यों कहा, और इसमें किन विधाओं का योगदान रहा?
4. प्रश्न: फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना का हिंदी साहित्य के गद्य विकास पर क्या प्रभाव पड़ा?
5. प्रश्न: हिंदी साहित्य में आधुनिक युग की शुरुआत किन परिस्थितियों और विचारधाराओं से प्रभावित थी?

इकाई - 2

आधुनिक काल की परिस्थितियाँ

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 आधुनिक युग की परिस्थितियाँ

2.4 ऐतिहासिक एवं राजनैतिक परिस्थितियाँ

2.5 सामाजिक परिस्थितियाँ

2.6 सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

2.7 साहित्यिक परिस्थितियाँ

2.8 आर्थिक परिस्थितियाँ

2.9 धार्मिक परिस्थितियाँ

2.6 सारांश

2.7 मुख्य शब्द

2.8 स्व -प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

2.9 संदर्भ ग्रन्थ

2.10 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

आधुनिक युग के प्रारंभ का निर्धारण उस समय से किया जाता है जब भारत की सत्ता मुगलों के हाथ से निकलकर अंग्रेजों के अधीन चली गई। यह समय केवल राजनीतिक परिवर्तन का ही नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक बदलावों का भी युग था। अंग्रेजों का आगमन केवल एक व्यापारिक उद्देश्य से हुआ था, परंतु धीरे-धीरे उन्होंने भारतीय शासन-प्रणाली में हस्तक्षेप करते हुए पूरे देश पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

इस युग में भारत ने कई ऐतिहासिक और राजनीतिक घटनाओं का सामना किया, जिनका प्रभाव न केवल जनता के जीवन पर पड़ा, बल्कि साहित्य और कला पर भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हुआ। अंग्रेजों की शासन-नीति, जिसमें रेल, तार, और डाक जैसी आधुनिक व्यवस्थाएँ शामिल थीं, ने देश में आधुनिकता का मार्ग प्रशस्त किया। इसके साथ ही पाश्चात्य शिक्षा और विचारधारा ने भारतीय मनीषा को नए आयाम दिए।

भारतीय संस्कृति, जो सदैव से समन्वय और सहिष्णुता की प्रतीक रही है, अंग्रेजों की नीतियों के कारण पाश्चात्य प्रभावों को आत्मसात करने लगी। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक जीवन में नई चेतना का विकास हुआ। हालांकि अंग्रेजी शासन ने देश को आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से हानि पहुँचाई, परंतु इसके प्रतिरोध में राष्ट्रभक्ति और स्वाधीनता की भावना भी जाग्रत हुई।

इस युग में साहित्य पर भी पाश्चात्य प्रभाव गहरा पड़ा। पाश्चात्य शिक्षा ने साहित्यकारों को भारतीय संस्कृति, ज्ञान और अध्यात्म की महत्ता को पुनः पहचानने का अवसर दिया। इस अध्याय में हम उस समय की ऐतिहासिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक परिस्थितियों की समीक्षा करेंगे, जिन्होंने आधुनिक हिंदी साहित्य के निर्माण में प्रमुख भूमिका निभाई।

2.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- भारत में आधुनिक युग के प्रारंभ और उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को।
- अंग्रेजों के शासन के प्रारंभिक दौर और उनकी नीतियों के भारतीय समाज, संस्कृति, और राजनीति पर प्रभाव को।
- यूरोपीय शक्तियों–पुर्तगाली, फ्रांसीसी, डच और अंग्रेजों–के भारत आगमन और उनके उपनिवेश स्थापित करने की प्रक्रियाओं को।

- अंग्रेजी शासन के दौरान सामाजिक, आर्थिक, और सांस्कृतिक परिवर्तनों को। और पश्चिमीकरण के प्रभाव से भारतीय मनीषा, शिक्षा, और साहित्य में आए बदलावों को।
- 1857 के विद्रोह के सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना पर प्रभाव को तथा आधुनिक युग में भारतीय समाज में राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक पुनर्जागरण के योगदान को।

2.3 आधुनिक युग की परिस्थितियाँ

आधुनिक युग भारत की शासन व्यवस्था के उस युग से प्रारंभ माना जाता है जब मुसलमानों के हाथ से निकलकर सत्ता अंग्रेजों के हाथ में चली गई थी। अंग्रेजों के आगमन से भारतीयों के रहन-सहन, जीवन-यापन, आचार-विचार, साहित्य-कला एवं शिक्षा-संस्कारों में अनेक परिवर्तन होने लगे। अंग्रेजों से पूर्व भारतवर्ष पोर्चुगीज (पुर्तगाली), डच तथा फ्रांसीसियों ने भारत में खूब व्यापार किया। जहाँगीर के समय आए अंग्रेजों ने बम्बई, मद्रास तथा कलकत्ता में अपने व्यापारिक केन्द्र स्थापित किए। राजनीतिक पकड़ मजबूत करते हुए अंग्रेज़ों ने भारतीय राजाओं को परस्पर लड़वाया और लाभ उठाते हुए अपना प्रभाव स्थापित कर लिया। 1757 में प्लासी का युद्ध सिराजुद्दौला से जीतकर अंग्रेज़ों ने बंगाल पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। परिणामतः रॉबर्ट क्लाइव (1743-1767) ने अपनी कूटनीति से अपार धन बटोरते हुए भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव डाल दी। बक्सर की लड़ाई से अंग्रेजी सैनिक शक्ति और बढ़ गई। 1761 में हैदर अली ने राज्य की स्थापना की और 1764 में सिक्खों का उदय हुआ। परन्तु 1764 में ही अंग्रेज़ों ने अवध पर भी विजय हासिल कर ली। अतः धीरे धीरे ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपना प्रभुत्व बढ़ाते हुए भारत में अपना आधिपत्य कर लिया। फिर धीरे-धीरे ब्रिटिश साम्राज्य समृद्ध होता गया और पूरे भारत पर उनका राज्य हो गया।

इसी तरह से शिक्षा, अर्थव्यवस्था, व्यावसायिक गतिविधियाँ, सामाजिक नियम, आचार विचार संहिताएँ, नौकरशाही, सांस्कृतिक परिवर्तन, सड़कों, नहरों, रेल, तार, डाक सेवा आदि से सम्बद्ध नीतियाँ-सभी पर पश्चिमीकरण की छाप लगती गई। धर्म, समाज शिक्षा पद्धति, प्रेस तथा आविष्कार आदि सभी क्षेत्रों में विदेशी प्रभाव छाने लगा। अंग्रेजों की इस स्वार्थभरी कार्य-व्यवस्था एवं शासन पद्धति से भारत को अप्रत्यक्षतः कुछ लाभ हुए परन्तु हानियाँ अधिक हुई। भाषा, उद्योग तथा शासन व्यवस्था के इस विदेशीकरण का कारण बनीं उस युग की विविध परिस्थितियाँ। अतः साहित्य पर भी उसका पर्याप्त प्रभाव पड़ा। बहुत से कवियों-साहित्यकारों की अभिव्यक्ति में इसे आगे की इकाइयों में देखा भी जा सकता है। अतः यहाँ हम पश्चिमीकरण से आ रही इसी 'आधुनिकता' के कारणों को स्पष्टतः जानने-समझने के लिए युगीन पृष्ठभूमि तैयार कर रही इन विविध परिस्थितियों की समीक्षा करेंगे।

2.4 ऐतिहासिक एवं राजनैतिक परिस्थितियाँ

ऐतिहासिक एवं राजनैतिक परिस्थितियां आधुनिक काल के समय देश राजनीतिक उथल-पुथल एवं परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था। मुगलों की सत्ता उखड़ चुकी थी। व्यापारिक कंपनी के रूप में आई ईस्ट इंडिया कंपनी ने धीरे-धीरे अपना असली रूप दिखाना प्रारंभ किया।

भारत में यूरोपीय जातियों-पुर्तगाली, फ्रांसीसी और डचों का आगमन हुआ। इन्होंने व्यापार की अनुमति लेकर अपनी फैक्टरियां खोलीं। इसका प्रारंभ वास्कोडिगामा के आगमन से हुआ। सर्वप्रथम पुर्तगालियों ने अपनी महत्वाकांक्षा दर्शायी तथा धर्म प्रचार एवं व्यापार प्रारंभ किया। भारतीयों की सहिष्णुता का लाभ उठाकर इन्होंने लाभ लेना प्रारंभ कर दिया। इन्होंने भारत के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप प्रारंभ किया। यहां के शासकों से मित्रता कर पुर्तगालियों ने गोआ, दमन व दीव में, फ्रांसीसियों ने चंद्रनगर, पांडिचेरी तथा माही में अपने उपनिवेश स्थापित किए।

1600 ई. में ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना हुई। जहांगीर ने अंग्रेज़ों को व्यापार की अनुमति दी। जहांगीर, शाहजहां तथा औरंगज़ेब के समय तक अंग्रेज़ व्यापारी भारत की आंतरिक दशा को बहुत समझ चुके थे। औरंगज़ेब की अनुदार नीतियों ने मुगल शासन को काफी दुर्बल बना दिया था। बाद के मुगल शासक और भी अधिक दुर्बल होते चले गए।

बंगाल और बिहार पर अंग्रेज़ों का पूरा अधिकार हो गया और अवध का नवाब उनके हाथ की कठपुतली बन गया। मराठों की पराजय ने भी अंग्रेज़ों को और अधिक शक्तिशाली बनाने का अवसर प्रदान किया। धीरे-धीरे ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपनी नीतियां भारतीयों पर थोपनी प्रारंभ कर दीं। ईस्ट इंडिया कंपनी ने 1844 में 'वलय का सिद्धांत' बना लिया था। इसके द्वारा अंग्रेज़ों के अधीन देशी रियासतों के किसी निस्संतान शासक को दत्तक पुत्र लेने और उसे अपना उत्तराधिकारी बनाने का अधिकार छीन लिया गया। इसके माध्यम से सतारा, नागपुर, झांसी, जैतपुर, संभलपुर, बघाट आदि को अपने अधीन कर लिया। अवध के नवाब पर कुशासन का आरोप लगाकर 1856 में डलहौजी ने अवध को भी अपने अधिकार में ले लिया। डलहौजी और उसके पूर्ववर्ती गवर्नर जनरलों ने कुछ ऐसे विशेष कार्य और सुधार किए जिनसे भारत में ब्रिटिश साम्राज्य सुदृढ़ हुआ। किंतु इन कार्यों और सुधारों से भारत वासियों में भी एक नई राष्ट्रीय चेतना जगी। इस संदर्भ में विलियम बैंटिक का नाम उल्लेखनीय है। लार्ड डलहौजी ने रेल, तार, और डाक व्यवस्था में सुधार किए। आधुनिकता की ओर यह एक महत्वपूर्ण पग था। मैकाले ने बैंटिंग को अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम से भारत में शिक्षा के लिए प्रेरित किया। इनके अनुसार बंबई, मद्रास तथा कलकत्ता में विश्वविद्यालय स्थापित हुए। यद्यपि इन कार्यों के पीछे अंग्रेज़ों का मुख्य उद्देश्य अपने साम्राज्यवादी स्वार्थों की पूर्ति करना ही था, तथापि इनके सहज परिणामस्वरूप भारत में विकास, प्रगति और चिंतन के लिए नए आयाम स्थापित हुए। सन् 1757 में प्लासी के युद्ध में अंग्रेज़ों की विजय से जिस ब्रिटिश

साम्राज्य का विस्तार आरंभ हुआ था, वह 1857 में सारे भारत को आक्रांत कर अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया। तत्पश्चात सारे भारत में विस्फोट हुआ जिसे 'सिपाही विद्रोह' का नाम दिया गया।

2.5 सामाजिक परिस्थितियाँ

सामाजिक परिस्थितियां भारत की संस्कृति सदैव से समन्वय प्रधान रही है। भारत ने सदैव से विदेशी जातियों को भी आत्मसात कर लिया है। इसलाम के प्रवेश के साथ संस्कृति में बदलाव आना प्रारंभ हुआ। ईसाई धर्मावलंबी पाश्चात्य जातियां आधुनिक विज्ञान और उसके उपकरण साथ लेकर आई। साथ ही, उनकी भाषा भी भौतिक ज्ञान, भौतिक समृद्धि का आकर्षक वाहन बनकर इस समाज के सामने खड़ी थी। यह भारतीयों के लिए एक नया अनुभव था। लार्ड मैकाले ने भारत में अंग्रेज़ी भाषा तथा संस्कृति की स्थापना का कुचक्र चलाया। इसमें वह काफी हद तक सफल भी रहा। अंग्रेज़ों की इस कुटिल नीति का मंतव्य अंग्रेज़दा भारतीय क्लर्क तैयार करना था। वे अपने उद्देश्य में पूर्णतः सफल भी रहे। किंतु इस पाश्चात्य शिक्षा से अनेक भारतीय मनीषियों में अपने ज्ञान, विज्ञान, साहित्य, संस्कृति से लेकर अध्यात्म दर्शन के प्रति आदर और राष्ट्र प्रेम की भावना जाग्रत हो गई। अनेक पाश्चात्य विद्वान भारतीय सभ्यता, संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान और दर्शन की श्रेष्ठता का लोहा पहले ही मान चुके थे। भारतीयों को भी पाश्चात्य साहित्य व संस्कृति के अध्ययन से अपनी राष्ट्रीय महत्ता का भान हुआ। एक निष्पक्ष अंग्रेज़ विद्वान जेम्स जीन्स का मत है- "जब हमारे पूर्वज पशुओं का शिकार और एक-दूसरे की हत्या करते रहते थे तब भारत में परिपक्व दर्शन ग्रंथ रचे जा चुके थे। कला, कविता, साहित्य सभी दिशाओं में वह इंग्लैंड से आगे था।"कलकत्ता में एशियाटिक कॉलिज और फोर्ट विलियम कॉलिज, काशी में संस्कृत कॉलिज की स्थापना की गई। सन् 1857 के उपरांत प्राचीन भारतीय संस्कृति के अन्वेषण का कार्य किया गया। भारतीय मनीषी भी बर्क, मिल, मैकाले, लॉक, मिल्स आदि से प्रभावित हुए।

2.6 सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

सांस्कृतिक परिस्थितियां आधुनिक युग के इस परिवेश में ब्रिटिश जाति के भारत में सत्तारूढ़ हो जाने के परिणामस्वरूप भारतीय एवं यूरोपीय संस्कृति के संघर्ष को देखा जा सकता है। आरंभ में भारतीय संस्कृति ने सर्वोपरि होने का दंभ भरते हुए इस पाश्चात्य संस्कृति के सभी पक्षों का विरोध किया, किंतु वह कारगर न हो सका।

भारतीय संस्कृति परिवर्तनशील रही है, अतः उसने स्वयं को परिस्थितियों के अनुसार ढाल लिया। हमने आध्यात्मिकता के क्षेत्र में तो स्वयं को समृद्ध माना परंतु इतिहास, समाज सुधार, राजतंत्र, विज्ञान, उद्योग, अर्थनीति तथा शिक्षा आदि क्षेत्रों में अपनी पहचान बनाए रखी।

ऐतिहासिक सांस्कृतिक संघर्ष का परिणाम यह हुआ कि भारतीय सामंतीय संस्कृति समाप्त होने लगी तथा औद्योगिक पूंजीवादी व्यवस्था का सूत्रपात होता चला गया। परिणामतः राष्ट्रीयता को भी बढ़ावा मिलने लगा। मानवतावाद का उदय और साम्राज्यवाद का विरोध भी खुलकर होने लगा। अतः सांस्कृतिक जागरण की दृष्टि से भी यह युग अत्यंत महत्वपूर्ण युग कहा जा सकता है। अतीत के माध्यम से वर्तमान समस्याओं का, पुराख्यानों, पुरासंदर्भों तथा ऐतिहासिक पात्रों या चरित्रों का गुणगान साहित्य में भी होने लगा। सांस्कृतिक चेतना साहित्य में ढलने लगी।

आधुनिक काल की इन परिस्थितियों और गतिविधियों ने युगीन साहित्य, संगीत, भाषा तथा चित्रकला आदि को भी प्रभावित किया। इस युग में राज्याश्रय न मिलने के कारण भारतीय कलाओं का स्वरूप बदला।

हिंदी भाषा और साहित्य को भी नई दिशा मिली। मुद्रणकला की आधुनिक दृष्टि से इस युग का साहित्य तेजी से तथा नए रूप-रंग में आगे बढ़ा। देश में उभरती हुई राष्ट्रीय चेतना को भी साहित्य से स्वर प्राप्त हुआ। देश की सभी भाषाओं में साहित्य का वैविध्य तथा जागरण की चेतना देखी जा सकती है। मुद्रणालयों ने

साहित्य को जन-जन तक पहुंचाया, देश को एक सूत्रता में बांधने का भी कार्य किया। देश में नवजागरण लाने वाले समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं, पुस्तकों तथा मुद्रणालयों की इस भूमिका को कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

हिंदी भाषा जन-समूह तथा विभिन्न बोलियों के बीच संपर्क भाषा के रूप में खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करने, उर्दू के स्थान पर नागरी लिपि में खड़ी बोली हिंदी को हिंदीभाषी जनता के नवजागरण का सांस्कृतिक माध्यम बनाने और सरकारी स्तर पर हिंदी को यथायोग्य स्थान दिलाने का जो संघर्ष उस समय हुआ, उसमें आधुनिक बोध की तथा अधुनातन-चेतना की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

आधुनिक युग की विभिन्न परिस्थितियों ने साहित्यकार, कलाकार तथा चित्रकार आदि को तो प्रभावित किया ही, साहित्य की विभिन्न विधाओं, भाषाओं, शैलियों तथा माध्यमों को भी प्रभावित किया। पत्रकारिता के विकास ने हिंदी गद्य लेखन को प्रोत्साहित किया। साथ ही पद्य साहित्य का भी पर्याप्त विकास हुआ।

अतः आधुनिक युग के हिंदी साहित्य, भाषा, संगीत, चित्र तथा अन्य कलाओं पर भी पश्चिमीकरण का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। तत्कालीन भाषा, मुहावरों, संस्कृति, मानसिकता एवं विषय-वैविध्य पर इस विदेशी प्रभाव को देखा जा सकता है। यह मिश्रित संस्कृति का सूचक है। यह आधुनिक युग की आधुनिकता है।

2.7 साहित्यिक परिस्थितियाँ

साहित्यिक परिस्थितियां साहित्य मानव जाति के सुख-दुख, आचार-विचार तथा दृष्टिकोण से जुड़ा। परिणामतः एक नई चेतना आई। जिसे आधुनिक युग के नाम से जाना गया। आधुनिक लेखकों, दार्शनिकों, चिंतकों, कलाकारों, विचारकों, धार्मिक व्याख्याताओं ने मानव चिंतनधारा को शुद्ध मानवीय धरातल पर स्थिर किया।

आधुनिक युग की विविध साहित्यधाराओं ने सुधार, परिष्कार तथा अतीत के पुनराख्यानों द्वारा एक विशिष्ट नवीनता तथा मौलिकता प्रदान की। भाषिक स्तर

पर भी नवीनता तथा आधुनिकता के दर्शन होते हैं। डिंगल, पिंगल, मैथिली, अवधी तथा ब्रजभाषा का स्थान खंड़ी बोली ने ले लिया।

आधुनिक काल का प्रारंभ तब से माना जाता है जब अंग्रेज़ों ने अपने व्यापारिक हितों को राजनीतिक हितों में बदल लिया। देश की तद्युगीन परिस्थितियों एवं परिवेश ने साहित्य और सृजन को, रचना और रचनाकार को बहुत प्रभावित किया। सन् 1800 में कलकत्ता (कोलकाता) में फोर्ट विलियम कॉलिज के अंतर्गत भारतीय साहित्य के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था, पाठ्य पुस्तकों के संपादन, लेखन, प्रकाशन आदि के परिप्रेक्ष्य में इस प्रभाव को सहज ही देखा जा सकता है। यह युग गद्य के विकास के कारण 'गद्य युग' भी कहलाया। यह सही है कि आचार्य शुक्ल ने नामकरण का प्रमुख आधार 'प्रवृत्ति विशेष' को माना, परंतु आधुनिक काल के संदर्भ में वे इसे गद्य भाषा की प्रमुखता के कारण 'गद्य काल' भी कहते हैं।

प्रवृत्ति की दृष्टि से देखें, आधुनिक काल के अधिकांश साहित्य में जो एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा बौद्धिक धरातल देखने को मिलता है, यही 'आधुनिकता' की प्रवृत्ति इस युग के साहित्य को रीतिकाल से पृथक करती है। "आधुनिक काल के नामकरण की सटीकता और सार्थकता का आभास इस बात से मिलता है कि इसके अंतर्गत वे सभी अर्थछवियां विकीर्ण होती जान पड़ती हैं जिनका संबंध पुनर्जागरण, नवीनता, प्रगतिशीलता, वैज्ञानिकता, बौद्धिकता तथा अस्तित्ववादिता आदि प्रवृत्तियों से माना जाता है। आधुनिकता की यही भावना इस युग के साहित्य को मध्यकालीन रूढ़िवादिता, एकरसता, श्रृंगारिकता तथा रीतिबद्धता आदि प्रवृत्तियों से भी अलग करती है।"

अतः 'आधुनिक काल' नाम ही सर्वाधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। मनुष्य के सुख दुःखों से, उसके जीवन की खट्टी-मीठी अनुभूतियों से तथा समाज एवं राष्ट्र की परिवर्तनशील स्थितियों से साहित्य को जोड़ने वाला यह काल 'आधुनिक' शब्द की सार्थकता के अनुकूल ही ठहरता है। इस काल के साहित्य में लौकिक व्यक्ति,

लौकिक समस्याएं तथा लौकिक संदर्भ समाहित होने लगे। साहित्य, धर्म, दर्शन, चित्र, संगीत तथा अन्य सभी कलाओं में अधुनातन तथा नवीनतम दृष्टिकोण, वैचारिक क्रांति तथा वैज्ञानिक पद्धति का आविर्भाव हुआ।

ब्रजभाषा तथा अवधी का स्थान खड़ी बोली ने ले लिया। सुधार, परिष्कार, राष्ट्रीय चेतना, सांस्कृतिक बोध का प्रबल आधार जिस युग ने दिया उसे 'आधुनिक युग' ही कहा जाना उचित जान पड़ता है।

2.8 आर्थिक परिस्थितियाँ

आर्थिक परिस्थितियां भारत की आर्थिक स्थिति भी अंग्रेज़ों के आगमन के | बाद अत्यंत शोचनीय होती चली गई। भारत मूलतः कृषिप्रधान देश है तथा इसकी अधिकांश जनसंख्या गांव में निवास करती है।

इस तथ्य का उल्लेख चार्ल्स मेटकाफ ने किया है भारत के गांव छोटे-छोटे गणतंत्र थे। उनकी अपनी आवश्यकताएं वहीं पूरी हो जातीं थीं। बाहरी दुनिया से उनका कोई संबंध नहीं था। अनेक उलटफेर हुए, किंतु गांव वैसे के वैसे ही बने रहे। अनेक लोग कृषि पर आश्रित थे, जबकि अन्य लुहार, नाई, धोबी, कुम्हार तथा बढ़ई थे। ग्राम और नगरों का कोई आपसी संबंध नहीं था।

नगरों का रहन-सहन, व्यापार, व्यवसाय बिल्कुल विपरीत थे। नगरों में राजा, नवाब, सामंत, सेठ-साहूकार वर्ग थे। अतः धनी वर्ग में सौंदर्य सामग्री, श्रेष्ठ हस्तशिल्प रत्नजड़ित आभूषण, मीनाकारी, रेशमी वस्त्र आदि वस्तुओं की खपत होती थी। अंग्रेज़ों के लिए भारत तथाकथित 'सोने की चिड़िया' था। अतः अंग्रेज़ भारतीय व्यापार से लाभ उठाते हुए भूमि का दोहन करने लगे। अंग्रेज़ों ने न केवल यहां के शासन को हस्तगत किया वरन् अर्थव्यवस्था को भी चौपट कर दिया। इन विदेशी व्यापारियों ने भारत को अपना हाट बाजार बनाया। यहां के हस्तशिल्प को नष्ट-भ्रष्ट करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। इस स्थिति को देखते हुए भारतेंदु हरिश्चंद्र कह उठे-

भीतर भीतर सब रस चूसै।

हंसि हंसि के तन मन धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज।
क्यों सखि साजन ! नहीं अंग्रेज़।

भारतीय मनीषियों और राजनीतिज्ञों को ब्रिटिश काल में हो रही इस देश की आर्थिक अवनति, स्थानीय उद्योग धंधों के नाश और अपने कला-कौशल के ह्रास से बड़ा धक्का लगा, तब उन्होंने साहित्य के माध्यम से इसे अभिव्यक्त किया। भारतेंदु युग के लेखकों ने इस विदेशी शोषण, करों के असह्य भार, जनता की समस्याओं की उपेक्षा, महामारी व अकाल का उल्लेख किया है, तथा कहा है-

अंगरेज राज सुखसाज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात इंहै अति ख्वारी।।
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई।
हा हा! भारत दुर्दशा देखी न जाई।।

औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप इंग्लैंड में कच्चे माल की मांग बढ़ी। पराधीनता की इस स्थिति में भारत को अपना बहुत-सा कच्चा माल अंग्रेज़ों को देना पड़ता था। इंग्लैंड में उससे उपभोक्ता सामग्री बनने के बाद उसकी खपत के लिए बाजार की आवश्यकता होती थी। वह बाज़ार पराधीन भारत था। यहां यह माल दुगुने-चौगुने मूल्य में बेचा जाता था। इस प्रकार अंग्रेज़ी शासन में सामंतवादी व्यवस्था के बाद उनकी नई पूंजीवादी व्यवस्था में भारत के उद्योग-धंधों के चौपट होने से जो आर्थिक विपन्नता और व्यापक निर्धनता आई, वह अभूतपूर्व थी। सन् 1770 में बंगाल में भीषण अकाल पड़ा। लगभग एक-तिहाई जनता काल-कवलित हो गई, किंतु भूमि के लगान में निरंतर वृद्धि होती गई। ब्रिटिश कंपनी ने व्यापार ही नहीं, भारत में अपने शासन की स्थापना के लिए जो अनेक युद्ध किए, उनसे यहां की अर्थव्यवस्था पर बहुत घातक प्रभाव पड़ा।

किंतु यदि दूसरे पक्ष को देखें तो घेरे में बंधी हुई अर्थव्यवस्था राष्ट्रोन्मुखी हो चली। जो देश केवल धार्मिक एकता में बंधा हुआ था, वह राष्ट्रीय एकता के प्रति भी जागरूक होने लगा। एक नए मध्य वर्ग का उदय हुआ।

2.9 धार्मिक परिस्थितियाँ

धार्मिक अंग्रेजी शासन का आधिपत्य भारत में हिंदू धर्म के ह्रास का कारण भी बना। तत्व ज्ञान की समर्थता का भंडार माना जाने वाला वह हिंदू धर्म जिसके आगे पूरा संसार सर झुकाता था, धीरे-धीरे अपने गौरव को खोने लगा। धर्मवेत्ता-ब्राह्मणों ने तत्व ज्ञान की शिक्षा देने के स्थान पर दान लेने में ही अपने कर्त्तव्य की पूर्ति मान ली थी। अशिक्षित भारतीय जनता अब अंध-परंपराओं के आगे नतमस्तक होने लगी थी। सती प्रथा, बाल-हत्या तथा नर-बलि आदि अब धर्म-सम्मत हो गए थे। अंग्रेजों के साथ ईसाई मिशनरी भी भारत आए थे। अतः सनातन हिंदू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म, इस्लाम धर्म तथा सिक्ख सम्प्रदाय आदि के साथ-साथ अब ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार हेतु भी हर प्रकार के हथकंडे अपनाए जाने लगे थे। हिंदू सनातन धर्म के कर्मकांड से तंग आकर बहुत से हिन्दुओं ने ईसाई धर्म अपनाना प्रारंभ कर दिया था। ईसाई मिशनरियों के धार्मिक प्रचार का लक्ष्य भी हिन्दुओं और मुसलमानों के धर्मों पर आक्रमण करके उनमें हीनता की भावना भरना था। ईसाई मिशनरियों को इसी उद्देश्य के लिए अपार धनराशि भी दी जाती थी।

अंग्रेजी सरकार ऊपर से तो सभी धर्मों को समान अधिकार देने की बात करती रही, परन्तु वास्तविकता यह नहीं थी। जैन तथा बौद्ध धर्म तो यों भी अपना प्रभाव पहले ही कम कर चुके थे। धीरे-धीरे आधुनिक युग में आस्तिकता भी कम होती गई और नास्तिकता की विचारधारा फैलती गई। नीत्शे का यह वाक्य 'ईश्वर मर चुका है' चारों तरफ प्रसार करने लगा था। धर्म के नाम पर साम्प्रदायिकता धीरे-धीरे व्याप्त होने लगी थी। आगे चलकर ब्रहम समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, रामकिशन मिशन तथा थियोसॉफिकल सोसाइटी आदि की धार्मिक एवं

सांस्कृतिक विचारधाराओं, ने आधुनिक साहित्य एवं भाषा को पर्याप्त प्रभावित किया। इनके प्रभाव से ईसाई या मुसलमान बने बहुत से हिन्दु धर्मावलम्बी पुनः हिन्दू धर्म में लौट आए। अब हिन्दु धर्म के पुनरूद्वार की चेष्टाएँ भी होने लगी थीं। तांत्रिक मत की प्रबलता के लिए नरमांस द्वारा हो रही देवी चण्डिका, चामुण्डा या काली की उपासना पर भी रोक लगी। बालकों की बलि को भी रोका गया। कन्या-वध को वर्जित ठहराया गया। स्वयं हिन्दू समाज भी अब धर्मान्धता के लिए छटपटाने लगा था। सन् 1893 में रामकृष्ण परमहंस तथा उनके योग्य शिष्य स्वामी विवेकानन्द विश्व धर्म संसद में भाग लेने के लिए शिकागो (अमेरिका) गए और भारतीय आध्यात्मिकता की धाक पूरे विश्व में जम गई। इस नवजात चेतना के कारण हिन्दू धर्म की उन्नति और उसमें विश्व श्रेष्ठ आत्म-गौरव को पुनर्जीवित करने के अनेक महान व्यक्ति अपने जीवन का उत्सर्ग करने में जुट गए। अतः आधुनिक काल में जो हिंदी साहित्य लिखा गया, उस पर विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदाय का प्रभाव भी काफी रहा। धर्म-दर्शन तथा उनकी चेतना का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव भारतेंदु युग से आज के साहित्य में देखा भी जा सकता है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. आधुनिक युग का प्रारंभ माना जाता है जब भारत में सत्ता _____ से निकलकर अंग्रेजों के हाथ में आ गई।
2. 1757 में _____ के युद्ध में विजय प्राप्त कर अंग्रेजों ने भारत में अपना प्रभाव बढ़ाना शुरू किया।
3. लार्ड डलहौजी ने भारत में _____, तार और डाक व्यवस्था में सुधार कर आधुनिकता की ओर एक महत्वपूर्ण कदम उठाया।
4. सन् 1857 में भारत में हुआ व्यापक विद्रोह _____ के नाम से प्रसिद्ध है।

2.10 सारांश

आधुनिक युग का प्रारंभ भारत में अंग्रेजों के शासन स्थापित होने के साथ हुआ, जो केवल राजनीतिक परिवर्तन नहीं था, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक बदलावों का भी प्रतीक था। अंग्रेजों की नीतियों और पाश्चात्य शिक्षा ने आधुनिकता का मार्ग प्रशस्त किया, जिससे भारतीय समाज में नई चेतना और राष्ट्रभक्ति की भावना विकसित हुई। इस समय ने साहित्य और कला को भी गहराई से प्रभावित किया, जिसमें पाश्चात्य प्रभावों के बीच भारतीय संस्कृति और अध्यात्म की पुनः पहचान हुई। यह युग आधुनिक हिंदी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण रहा।

2.8 मुख्य शब्द

1. **मैकाले की शिक्षा नीति**: - अंग्रेजी भाषा के माध्यम से भारतीयों को शिक्षित कर ब्रिटिश साम्राज्य के लिए अनुकूल क्लर्क तैयार करने की योजना।
2. **सिपाही विद्रोह**: - 1857 में भारत में ब्रिटिश शासन के खिलाफ पहला बड़ा विद्रोह, जिसे स्वतंत्रता संग्राम का प्रारंभ भी माना जाता है।
3. **आधुनिकता**: - पश्चिमीकरण और पाश्चात्य प्रभावों के चलते भारत में विकसित नई सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक दृष्टिकोण।
4. **आत्मसात**: - भारतीय संस्कृति की वह विशेषता, जिसके तहत विभिन्न विदेशी संस्कृतियों को अपनाया और समन्वित किया गया।
5. **एशियाटिक कॉलेज**: कलकत्ता में स्थापित शिक्षा केंद्र, जो भारतीय और पाश्चात्य विद्या के आदान-प्रदान का केंद्र बना।
6. **फोर्टविलियम कॉलेज**: - 1800 में स्थापित एक शैक्षिक संस्थान, जिसका उद्देश्य भारतीय भाषाओं का अध्ययन और विकास करना था।
7. **राष्ट्रीय चेतना**: - अंग्रेजी शासन के दौरान भारतीयों में विकसित वह भावना, जो देश की स्वतंत्रता और सांस्कृतिक महत्ता पर आधारित थी।

2.11 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

उत्तर 1 मुसलमानों

उत्तर 2 प्लासी

उत्तर 3 रेल

उत्तर 4 सिपाही विद्रोह

2.12 संदर्भ ग्रंथ

1. चौधरी, आर. के. (2021). *आधुनिक भारतीय इतिहास: 1707 से वर्तमान तक*. नई दिल्ली: विकास पब्लिशिंग हाउस।
2. शर्मा, पी. (2022). *औपनिवेशिक प्रभाव: भारतीय समाज और संस्कृति पर प्रभाव*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन।
3. सिंह, ए. (2023). *भारत में ब्रिटिश नीतियाँ: सामाजिक-राजनीतिक प्रभाव*. दिल्ली: सेज पब्लिकेशन।
4. वर्मा, के. (2020). *ब्रिटिश शासन के अधीन भारत: एक व्यापक अध्ययन*. मुंबई: हिमालय पब्लिशिंग हाउस।
5. गुप्ता, एस. (2024). *भारत में ऐतिहासिक और राजनीतिक परिवर्तन*. चेन्नई: ओरिएंट ब्लैकस्वान।

2.9 अभ्यास प्रश्न

1. भारत में यूरोपीय शक्तियों के आगमन के प्रमुख कारण क्या थे? इनमें से कौन-सी शक्ति सबसे पहले आई, और उनका उद्देश्य क्या था?
2. प्लासी के युद्ध (1757) और बक्सर के युद्ध (1764) के परिणामों का भारतीय राजनीति और समाज पर क्या प्रभाव पड़ा?

3. लॉर्ड डलहौजी द्वारा लागू 'वलय का सिद्धांत' के मुख्य बिंदु क्या थे, और इसके तहत किन-किन भारतीय रियासतों को अंग्रेजों ने अपने अधीन कर लिया?
4. आधुनिक शिक्षा प्रणाली को स्थापित करने में मैकाले की भूमिका का विश्लेषण कीजिए। इस प्रक्रिया ने भारतीय समाज में कौन-कौन से बदलाव लाए?
5. आधुनिक भारत में सामाजिक और सांस्कृतिक बदलावों के लिए अंग्रेजी शासन की किन नीतियों को उत्तरदायी माना जा सकता है? उनके सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों की चर्चा कीजिए।

इकाई - 3

सन 1857 की राज्य क्रांति एवं पुनर्जागरण

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 सन 1857 की राज्यक्रांति एवं पुनर्जागरण

3.4 राष्ट्रीय चेतना का विकास

3.5 1857 का स्वाधीनता

3.6 सारांश

3.7 मुख्य शब्द

3.8 स्व -प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

3.9 संदर्भ ग्रन्थ

3.10 अभ्यास प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

सन् 1857 की क्रांति भारतीय इतिहास में एक अद्वितीय घटना है, जिसने न केवल स्वाधीनता की पहली चिंगारी प्रज्वलित की, बल्कि राष्ट्रीय चेतना को एक नई दिशा दी। इसे कुछ विद्वानों ने 'प्रथम स्वतंत्रता संग्राम' की संज्ञा दी, जबकि अन्य ने इसे 'सिपाही विद्रोह' माना। परंतु इस ऐतिहासिक घटना के पीछे जनता की सामूहिक आकांक्षा और स्वाधीनता का सपना स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

इस क्रांति ने भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों को एकजुट किया। बहादुरशाह जफर, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, तांत्या टोपे, कुंवर सिंह जैसे वीरों के अदम्य साहस ने यह सिद्ध कर दिया कि राष्ट्रप्रेम का ज्वार किसी भी शक्ति के आगे

झुकने वाला नहीं। इस आंदोलन की प्रेरणा ने न केवल सैनिकों और शासकों को, बल्कि साहित्यकारों और सांस्कृतिक व्यक्तित्वों को भी आंदोलित किया।
हालांकि अंग्रेजों की कूटनीति, अत्याधुनिक हथियारों और फूट डालने की नीति ने इसे कुचल दिया, लेकिन इस क्रांति ने आने वाले स्वतंत्रता संग्रामों की नींव रखी। इस घटना ने राष्ट्रीय चेतना को गहराई दी, जिससे आधुनिक हिंदी साहित्य में भी इसका प्रभाव परिलक्षित हुआ। यह क्रांति न केवल स्वाधीनता के लिए संघर्ष का प्रतीक बनी, बल्कि भारतीय समाज के सांस्कृतिक पुनर्जागरण और राष्ट्रीय एकता की भावना को भी बल प्रदान करती रही।

3.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- सन् 1857 की क्रांति के ऐतिहासिक और सामाजिक कारण।
- क्रांति के प्रमुख नायकों और उनके योगदान का महत्व।
- इस क्रांति के विभिन्न चरण और उसके परिणाम।
- भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में सन् 1857 की भूमिका और उसकी ऐतिहासिक व्याख्याएँ।
- राष्ट्रीय चेतना और साहित्य पर इस क्रांति का प्रभाव।

3.3 सन 1857 की राज्यक्रांति एवं पुनर्जागरण

सन् 1857 की क्रांति को लेकर इतिहासकारों में मतभेद है। कुछ इतिहासकारों ने इसे 'प्रथम स्वतंत्रता संग्राम' की संज्ञा दी है, तो कुछ ने इसे 'सिपाही विद्रोह' कहा। किंतु वास्तव में यह भारतीय जनता की ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त कर स्वाधीनता प्राप्त करने की सुनियोजित जनक्रांति थी, जिसमें दिल्ली के अंतिम मुगल शासक बहादुरशाह जफर, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, कुंवरसिंह, अमरसिंह,

तांत्या टोपे आदि ने अपने प्राणों की आहूति दी। हिंदी भाषी विशाल क्षेत्र में ही यह सबसे व्यापक स्वतंत्रता संग्राम सबसे पहले प्रारंभ हुआ।

इसके प्रेरक नाना साहब थे। इसके लिए कई राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक कारण उत्तरदायी थे। सारे देश में एक साथ सुनियोजित विद्रोह 31 मई, 1857 के दिन निर्धारित हुआ, किंतु कारतूसों में निषिद्ध चर्वी के प्रयोग को लेकर भारतीय सैनिक निश्चित तिथि से दो महीने पहले ही उत्तेजित हो उठे। मंगल पांडे ने 29 मार्च, 1857 को विद्रोह कर दिया। उनकी सैन्य टुकड़ी ने विद्रोह कर दिया, फलस्वरूप सारे देश में विद्रोह की आग लग गई। स्वतंत्रता की ज्वाला शीघ्र ही सारे उत्तर भारत में फैल गई, जो हिंदी का विशाल क्षेत्र है। इस स्वतंत्रता संग्राम ने भारत के सभी प्रांतों के साहित्यकारों को प्रेरणा दी। हिंदी में आधुनिक काल में अनेक साहित्यकारों ने इसे उपन्यास, नाटक और कविता का विषय बनाया। सुभद्राकुमारी चौहान की पंक्तियां-

'खूब लड़ी मरदानी वह तो झांसी वाली रानी थी' इसी से प्रेरित थीं।

इस क्रांति का दमन अंग्रेजों ने कूटनीतिपूर्ण तरीके से किया। अंग्रेजों ने 'फूट डालो राज्य करो की नीति अपनाकर विभिन्न मतों को लड़वाया। क्रांति के नेताओं का क्रूरतापूर्वक दमन कर दिया गया। अंग्रेज़ों ने तांत्या टोपे, लक्ष्मीबाई, नाना साहब, बहादुर शाह जफर का एक-एक करके अपनी कूटनीति से दमन कर दिया।

1857 की क्रांति के विषय में अनेक देशी-विदेशी इतिहासवेत्ताओं ने अपने मत व्यक्त किए हैं। डॉ. ईश्वरी प्रसाद का मत है- "यह एक सुनियोजित क्रांति थी। विद्रोह के नेता बहुत समय से इसको पूरा करने में लगे थे और निःस्वार्थ देशभक्तों का एक समूह देश के कोने-कोने में इसकी अलख जगा रहा था, जिन्हें अपने देश की स्वाधीनता से अधिक प्रिय कुछ न था.।"

डॉ. के.एम. पाणिक्कर ने लिखा "यह आंदोलन इस अर्थ में भी राष्ट्रीय था कि उसने सांप्रदायिक भावना को पार किया। इसमें हिंदू-मुसलमानों ने मिल-जुलकर कार्य किया।"

1857 की यह स्वाधीनता क्रांति निश्चय ही एक व्यापक जन आंदोलन थी, इसका प्रमाण बहादुरशाह का वह महत्वपूर्ण घोषणा-पत्र है जो उस वर्ष 'पयामे आज़ादी' नामक एक समाचार पत्र में छपा था। जब बहादुरशाह को अंग्रेज़ हडसन ने बंदी बना लिया और उससे कहा-

दमदमें में दम नहीं, अब खैर मांगो जान की।
ए 'ज़फर' बस हो चुकी शमशीर हिंदुस्तान की ।।

इस कटु उक्ति को सुनकर कवि हृदय, देशभक्त और स्वाधीनता के लिए बलिदान को उत्सुक बहादुरशाह ने जो उद्‌गार प्रकट किए, वह किसी भी राष्ट्र-प्रेमी को सदैव प्रेरणा देते रहेंगे।

हिन्दियों में बू रहेगी, जब तलक इमान की।
तख्ते लंदन तक चलेगी, तेग हिंदुस्तान की।।

1857 की इस घटना के बाद ब्रिटिश पार्लियामेंट ने 1858 में एक अधिनियम पारित कर भारत के प्रशासन को ईस्ट इंडिया कंपनी से लेकर इंग्लैंड की सरकार को सौंप दिया। तत्कालीन ब्रिटिश साम्राज्ञी विक्टोरिया ने 1858 में एक घोषणा-पत्र द्‌वारा भारतीय जनता के आक्रोश को शांत करने का कूटनीतिक प्रयास किया। ब्रिटिश पार्लियामेंट द्‌वारा भारतीय प्रशासन के लिए इंडियन काउंसिल बनाई गई और भारत सचिव के पद की स्थापना हुई। तत्पश्चात लार्ड मेयो तथा रिपन ने उदार नीति अपनाई। भारतीय जनता में राजनीतिक और राष्ट्रीय चेतना बढ़ती जा रही थी। 1885 ई. में ए. ओ. ह्यूम के प्रयत्न से राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। प्रारंभ में यह राजभक्त संस्था थी, जिसका उद्‌देश्य सामाजिक सुधारों तक सीमित था। किंतु बाद में लार्ड डफरिन की प्रेरणा से इसने राजनीतिक क्षेत्र में भी कार्य करना आरंभ कर दिया। कांग्रेस ने एक ऐसी संस्था के रूप में कार्य किया जिसके द्‌वारा सब वर्गों और धर्मों के भारतीय मिलकर संवैधानिक प्रयासों से सरकार के समक्ष अपनी मांगें रख सकें। तत्पश्चात ब्रिटिश सरकार ने 1892, 1909 के अधिनियम पारित किए, इसी बीच 1905 में कर्जन

ने बंगाल का विभाजन करके भारतीयों को एकजुट होने का अवसर दे दिया। भारतीय मनीषियों राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद के द्वारा भारतीयों में स्वाभिमान, राष्ट्रीयता और स्वाधीनता के भाव जाग्रत किए जा चुके थे।

3.4 राष्ट्रीय चेतना का विकास

आधुनिक युग के दौरान 1857 की क्रांति की चर्चा हम राजनीतिक परिस्थितियों के अंतर्गत कर चुके हैं। किंतु यहाँ आधुनिक युग में प्रचार-प्रसार पा रही राष्ट्रीय चेतना की संक्षिप्त समीक्षा कर लेना भी अनुचित न होगा। इस युग में स्वतंत्रता के लिए तन-मन-धन से समर्पित रहने तथा देश के लिए प्राणोत्सर्ग करने की भावना पूरी तरह जोर पकड़ती जा रही थी। राष्ट्रीय चेतना ने लोगों को इस सीमा तक जागृत कर दिया था कि वे स्वतंत्रता के लिए कुछ भी न्यौछावर करने को तैयार थे। इसी राष्ट्रीय चेतना ने देश को सांस्कृतिक प्रगति की पृष्ठभमि भी प्रदान की। अलग-अलग जाति और धर्म के लोगों ने संकीर्णता से ऊपर उठकर राष्ट्रीय एकता की दिशा में सोचना प्रारंभ कर दिया था। परिणामतः धीरे-धीरे धर्म और जाति गौण होते जा रहे थे तथा राष्ट्रीय हित सर्वोपरि होता जा रहा था। 19वीं शताब्दी के अंतिम भाग तथा 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में पाश्चात्य संस्कृति के प्रति भारतीय जनता का विशेष लगाव था, परन्तु धीरे-धीरे पाश्चात्य संस्कृति, विदेशी भाषा, विदेशी सामग्री आदि के अंधानुकरण के प्रति विचारकों और लेखकों का क्षोभ लक्षित होने लगा था। प्राचीन भारतीय संस्कृति पुनः मुखर होकर साहित्य में स्थान पाने लगी थी।

20वीं शताब्दी के दूसरे दशक से तो राष्ट्रीय भावना में प्रगति और व्यापकता स्पष्टतः देखी जाने लगी। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार होने लगा। राष्ट्रीयता की भावना के आधार पर सांस्कृतिक मनोदृष्टि का नवोन्मेष प्रारंभ हुआ। अपनी संस्कृति के प्रति मोह तथा प्रबल आकर्षण देखने को मिलने लगा और अंग्रेज़ियत का विरोध प्रारंभ हो गया। भारतीय संस्कृ ति के प्रति समादर भाव उभरने लगा।

मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, निराला, महादेवी, दिनकर, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, पंत, रामनरेश त्रिपाठी, बालकृष्ण शर्मा नवीन तथा सोहनलाल द्विवेदी आदि साहित्यकारों के सृजन-संसार में इस चेतना को सहज ही देखा जा सकता है।

आगे चलकर धीरे-धीरे पाश्चात्य संस्कृति के प्रति वैज्ञानिक मनोदृष्टि का उदय और उसके प्रति प्रबल आग्रह भी देखने को मिलने लगा। सांस्कृतिक जागरण तथा वैज्ञानिक प्रबुद्धता का यह अद्भुत मिश्रण स्वाभाविक रूप में सामने आया। आजादी से पहले की चेतना ने राजनीतिक दासता के विरोध में हमें संस्कृति के प्रति उन्मुख किया तो आजादी के बाद की चेतना ने सांस्कृतिक मनोभावों की दिशा बदलने पर वैज्ञानिकता और बौद्धिकता की दिशा में आगे बढ़ाया। बौद्धिकता और वैज्ञानिकता की इसी अतिशमता ने यथार्थवाद, प्रगतिवाद तथा मानवतावाद को पुष्ट किया। पाश्चात्य जीवन प्रणाली का मोह बढ़ने लगा। परिणामतः लक्ष्य रहा समन्वयात्मक वैज्ञानिकता और बौद्धिकता की ओर अग्रसर होने का। पाश्चात्य संस्कृति की अच्छाइयों को अपनाने का। भारतीय संस्कृति एवं स्वाभिमान को तिलांजलि देकर पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण का लक्ष्य कदापि नहीं रहा।

3.5 1857 का स्वाधीनता संग्राम

स्थूल दृष्टि से देखने पर, पाश्चात्य शासकों को यह व्यापक स्वाधीनता संग्राम एक सैनिक विद्रोह मात्र लगा, क्योंकि इसका आरंभ कुछ सिपाहियों के विद्रोह से हुआ था। किन्तु वास्तव में यह भारतीय जनता की ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त कर स्वाधीनता प्राप्त करने की एक सुनियोजित जन-क्रांति थी, जिसमें दिल्ली के अंतिम मुगल शासक बहादुरशाह जफर, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, बिहार के राजा कुंवर सिंह, अमर सिंह, परम देशभक्त तात्या टोपे आदि ने महान् बलिदान करते हुए प्राणों की आहुति दी। किन्तु अन्य अनेक कारणों के साथ मुख्य रूप से उसी धरती में जन्में कुछ कायरों और देशद्रोहियों के कारण अंग्रेजों द्वारा यह क्रांति दबा दी

गई। भारतीयों का यह संग्राम थोड़े दिनों के लिए थम अवश्य गया, किंतु 1857 की यह क्रांति की ज्वाला बुझी नहीं। आधुनिक हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि में 1857 की क्रांति एक बड़ी प्रेरक शक्ति रही। हिंदी भाषी विशाल क्षेत्र में ही यह सबसे व्यापक स्वतंत्रता संग्राम सबसे पहले आरंभ हुआ।

इस स्वाधीनता संग्राम के पहले प्रेरक नाना साहब (धोंडू पन्त) थे। उनके प्रमुख सहायक अज़ीम उल्लाह ने इंग्लैंड जाकर नाना साहब की पेंशन को पुनः प्रारंभ कराने का प्रयत्न किया किन्तु सफलता न मिली। दोनों मित्रों की यह धारणा बनी कि जब तक भारतीय सैनिक और भारतीय राजा नवाब आदि देशी शासक इस क्रांति में भाग नहीं लेंगे तब तक विदेशी साम्राज्य को उखाड़ फेंकना संभव नहीं, क्योंकि अंग्रेजों की राज्य सत्ता मुख्य तौर पर भारतीय सैनिकों और देशी शासकों की सहायता पर ही अवलंबित थी। नाना साहब ने एक तीर्थयात्री के रूप में भारत के अनेक राजाओं से मिलकर मंत्रणा की। सारे देश में एक साथ सुनियोजित विद्रोह के लिए 31 मई, 1857 का दिन निर्धारित हुआ, किन्तु कारतूसों में निषिद्ध चर्बी के प्रयोग को लेकर भारतीय सैनिक निश्चित तिथि से दो महीने पहले ही उत्तेजित हो उठे। 29 मार्च, 1857 को बंगाल में बैरकपुर की पलटन के एक सिपाही मंगल पाण्डे ने अपनी टुकड़ी के साथी सिपाहियों को विद्रोह के लिए प्रेरित करते हुए तीन अंग्रेज सेनाधिकारियों को गोली से उड़ा दिया। मंगल पाण्डे को अंग्रेजों ने फाँसी पर लटका दिया और बैरकपुर की दो भारतीय पलटनों को भंग कर दिया। मंगल पाण्डे के विद्रोह और फाँसी का समाचार सारे देश में दावानल की भांति फैल गया। 10 मई, 1857 को ईस्ट इंडिया कंपनी की मेरठ में तैनात भारतीय पलटनों ने भी खुला विद्रोह कर दिया। भारतीय सैनिकों ने अंग्रेज अफसरों को मार कर अपने साथियों को मुक्त कर लिया। मेरठ से ये सैनिक दिल्ली पहुँचे। दिल्ली के भारतीय सैनिकों ने उनसे मिलकर अंग्रेजों द्वारा अपदस्थ बहादुरशाह को पुनः सम्राट घोषित कर दिया। स्वतंत्रता की ज्वाला शीघ्र ही सारे उत्तर भारत में फैल गई, जो हिंदी का विशाल क्षेत्र है। इस स्वतंत्रता संग्राम ने भारत के सभी प्रांतों के

साहित्यकारों को प्रेरणा दी। हिंदी में आधुनिक काल में अनेक साहित्यकारों ने इसे उपन्यास, नाटक और कविता का विषय बनाया। सुभद्रा कुमारी चौहान की प्रसिद्ध लोकप्रिय कविता 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी' इसी स्वाधीनता संग्राम से प्रेरित है।

इस क्रांति का सूत्रपात निश्चित समय से पूर्व ही हो जाने के कारण यह सुनियोजित नहीं हो सका। अंग्रेज शीघ्र ही सावधान हो गए और उन्होंने अपनी कूटनीति, विकसित शस्त्रास्त्र से सज्जित सेना द्वारा दो वर्षों के भीतर ही अत्यन्त क्रूरता और बर्बरता से इस स्वाधीनता संग्राम को कुचल डाला। इसमें दुर्भाग्य से अनेक देशी शासकों ने भी भय और प्रलोभन से अंग्रेजों का साथ दिया। अंग्रेजों ने 'फूट डालो, राज्य करो' नीति अपनाकर विभिन्न धर्मावलंबियों को परस्पर खूब भड़काया। क्रांति के सारे नेताओं को एक-एक करके मौत के घाट उतार दिया। बहादुरशाह के दो पुत्रों को कैप्टन हडसन ने गोली से उड़ा दिया और उनके सिर काट कर बहादुरशाह के सामने लाकर रख दिया। क्रूरता और बर्बरता की चरम सीमा को पार करते हुए हडसन ने दोनों शहजादों के शवों को एक सार्वजनिक स्थल पर वृक्ष से लटका दिया, जिससे भारत की जनता भयभीत होकर फिर कभी क्रांति का नाम भी न ले। किन्तु भारत का इतिहास साक्षी है कि इस क्रांति के संस्कारों ने ही भारतीयों में निरंतर स्वाधीनता के लिए संघर्ष की शक्ति फूंकी और अंत में ब्रिटिश साम्राज्य की दासता से मुक्ति पाई।

अंग्रेजों का दमन चक्र दो वर्षों तक तीव्रता से घूमता रहा। पंजाब की तीन देशी रियासतों के राजाओं को फांसी दे दी गई। बहादुरशाह को बंदी बनाकर देश से निर्वासित करते हुए आजीवन कारावास के लिए रंगून भेज दिया गया। 1863 में वहीं उसका देहान्त हो गया। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेज जनरल ड्यूरोज का अत्यन्त वीरता से सामना किया, किन्तु किसी विश्वासघाती देशद्रोही ने धन के प्रलोभन से झांसी के दुर्ग का एक द्वार खोलकर अंग्रेजी सेना को प्रवेश दे

दिया। लक्ष्मीबाई लड़ते हुए झांसी से निकलकर कालपी पहुंची। इस स्थल पर अनेक क्रांतिकारी तात्या टोपे, बांदा नरेश, शाहगढ़ नरेश आदि एकत्र थे। ग्वालियर का शासक जयाजी राव सिंधिया अंग्रेजों से मिल गया था। अतः लक्ष्मीबाई ने पहले ग्वालियर पर अधिकार किया। जनरल ह्यूरोज उसका पीछा कर ही रहा था। उसकी विशाल और सुसज्जित सेना से अदम्य साहसपूर्वक लड़ती हुई इस भारतीय वीरांगना ने 18 जून, 1858 को वीरगति प्राप्त की। अब इस संग्राम का अंतिम सिपाही रह गया था तात्या टोपे। किन्तु अंग्रेजी सेना निरंतर उसका भी पीछा कर रही थी। वह किसी प्रकार नर्मदा तट पर, फिर नागपुर और फिर बड़ौदा पहुंचा। कहीं से उसे सहायता नहीं मिली। अंत में, अलवर के निकट ग्वालियर के किसी मानसिंह नामक व्यक्ति ने तात्या टोपे को आधी रात के समय विश्वासघातपूर्वक पकड़ लिया और अंग्रेजों के हवाले कर दिया। अंग्रेजों ने इस महान देशभक्त को 18 अप्रैल, 1859 को फांसी दे दी। इस प्रकार 1857 के स्वाधीनता संग्राम का यह अंतिम दीपक भी बुझ गया, किन्तु उसकी ज्योति अमर रही और भारत के स्वातंत्र्य आंदोलन के मार्ग को आलोकित करती रही।

1857 की इस स्वाधीनता क्रांति के विषय में अनेक प्रसिद्ध देशी-विदेशी इतिहासवेताओं ने अपने मत व्यक्त किए हैं। डॉ. ईश्वरी प्रसाद का मत है, 'यह एक सुनियोजित क्रांति थी। विद्रोह के लिए नेता बहुत समय से इसको पूरा करने में लगे थे, और निःस्वार्थ देशभक्तों का एक समूह देश के कोने-कोने में इसकी अलख जगा रहा था, जिन्हें अपने देश की स्वाधीनता से अधिक प्रिय कुछ न था' डॉ. के.एम. पणिक्कर ने भी बड़े मार्मिक विचार व्यक्त किए हैं 'एक राष्ट्रीय आंदोलन की कसौटी यह है कि उसका उद्देश्य देश की स्वाधीनता प्राप्त करना है या नहीं। विद्रोह का लक्ष्य था कि अंग्रेजों को बाहर निकाला जाए और भारत को पुनः स्वाधीन किया जाए। विद्रोह के नेताओं ने जिस स्वाधीनता की कल्पना की थी चाहे, उससे फूट तथा अराजकता की पुरानी स्थितियाँ उत्पन्न होतीं किन्तु इस तथ्य को नहीं नकारा जा सकता कि यह स्वाधीनता का आंदोलन था और

इस अर्थ में राष्ट्रीय संघर्ष था। यह आंदोलन इस अर्थ में भी राष्ट्रीय था कि उसने साम्प्रदायिक भावना को पार किया। इसमें हिंदु-मुसलमानों ने मिल-जुलकर कार्य किया।' इस विद्रोह को विदेशी विद्वान चार्ल्स बॉल का मत भी एक व्यापक जन-आंदोलन सिद्ध करता है। वे कहते हैं 'विद्रोहियों को जनता की सहानुभूति से अकल्पनीय बल तथा उत्साह की प्राप्ति हुई। वे लोग रसद पहुँचाने वालों के बिना ही आगे कूच कर सकते थे, क्योंकि लोग सदा खिलाते-पिलाते थे। उन्हें अपनी तथा अंग्रेजों की स्थिति की निरंतर जानकारी रहती थी क्योंकि लोग लगातार उन्हें सब सूचनाएँ देते रहते थे।'

1857 की यह स्वाधीनता क्रांति निश्चय ही एक व्यापक जन-आंदोलन था इसका प्रमाण बहादुरशाह का वह महत्वपूर्ण घोषणा-पत्र है जो उस वर्ष 'पयामे आजादी' समाचार-पत्र में दिल्ली में छपा था 'हिन्दुस्तान के हिन्दू और मुसलमान भाइयों उठो, इंसान की जितनी बरकते हैं, उनमें सबसे कीमती बरकत आजादी है, वह ज़ालिम नाकस (अधम, नीच) जिसने गुलामी देकर हमसे यह बरकत छीन ली है, क्या हमेशा के लिए उससे महरूम (वंचित) रख सकता है? नहीं, कभी नहीं। फिरंगियों ने इतने जुल्म (अत्याचार) किए हैं कि उनके गुनाहों का प्याला लबरेज (पूरा भरा हुआ) हो चुका है। खुदा अब नहीं चाहता कि तुम खामोश रहो, क्योंकि उसने हिंदुओं और मुसलमानों के दिलों में अंग्रेजों को अपने मुल्क से बाहर निकालने की ख्वाहिश (आकांक्षा) पैदा कर दी है। खुदा के फ़ज़ल (कृपा) और तुम लोगों की बहादुरी से अंग्रेजों को इतनी कामिल (संपूर्ण) शिकस्त (पराजय) मिलेगी कि हमारे इस मुल्क हिन्दुस्तान में उनका जरा भी निशान नहीं रह जाएगा। इस पाक (पवित्र) जंग (युद्ध) में शरीक (सम्मिलित) होने वाले सब भाई है, उनमें छोटे-बड़े का कोई फर्क नहीं है। मैं अपने तमाम हिन्द के भाइयों से दरख्वास्त (प्रार्थना) करता हूँ कि खुदा के बताए हुए इस पाक फर्ज़ (कर्त्तव्य) को पूरा करने के लिए मैदाने जंग में कूद पड़ें। इससे बढ़कर स्वाधीनता के लिए भारतीय जन-मानस की आकांक्षा की अभिव्यक्ति का और क्या प्रमाण हो सकता है। आगामी

एक शताब्दी का भारतीय लक्ष्य अंग्रेजों के चंगुल से इस देश को मुक्त कराना ही हो गया। जब बहादुरशाह को अंग्रेज हडसन ने बंदी बना लिया और उससे कहा

"दमदमे में दम नहीं, अब खैर मांगो जान की।
ऐ ज़फर ठंडी हुई शमशीर हिन्दुस्तान की।।"

इस कटु उक्ति को सुनकर कवि हृदय, देशभक्त और स्वाधीनता के लिए बलिदान को उत्सुक बहादुरशाह ने जो उद्‌गार प्रकट किया, वह किसी भी राष्ट्र-प्रेमी को सदैव प्रेरणा देता रहेगा :

"ग़ाजियों में बू रहेगी, जब तलक ईमान की।
तख़्ते ऐ लन्दन तक चलेगी, तेग हिन्दुस्तान की।।"

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने भी अपने सैनिकों से विदेशी सत्ता को भारत से उखाड़ फेंकने के लिए प्रतिज्ञा करने को कहा। अतः स्पष्ट है कि इस विद्रोह का लक्ष्य विदेशी शासन का अंत था। स्वतंत्रता सेनानियों का यह लक्ष्य उस समय पूरा नहीं हुआ, यह बात दूसरी है, किन्तु इस क्रांति ने आगामी संघर्ष के लिए आधार भूमि का निर्माण कर दिया।

1857 की इस महान घटना के बाद अंग्रेजों ने अपने शासन को भारत में और भी सुदृढ़ बनाने के लिए अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाए। ब्रिटिश पार्लियामेंट ने 1858 में एक ऐक्ट पास करके भारत के प्रशासन को ईस्ट इंडिया कंपनी से लेकर इंग्लैंड की सरकार को ही सौंप दिया। तत्कालीन ब्रिटिश सम्राज्ञी विक्टोरिया ने 1858 में एक घोषणा-पत्र द्‌वारा भारतीय जनता के आक्रोश को शांत करने का फिर कुटनीतिक प्रयास किया। विक्टोरिया ने कहा था-'ईश्वर की कृपा से जब देश में आंतरिक शांति हो जाएगी तो हमारी इच्छा है कि भारत की सर्वांगीण उन्नति के लिए फिर से यत्न किया जाए। हम अपने साम्राज्य की सीमाएँ और अधिक नहीं बढ़ाना चाहते हैं। किसी व्यक्ति को उसके धर्म के कारण तंग नहीं किया जाएगा और न ही किसी के प्रति पक्षपात किया जाएगा। शासन का संचालन

करते और कानून बनाते समय इस देश के पुराने रीति-रिवाजों और अधिकारों का भी ध्यान रखा जाएगा। अपराधियों को बिना शर्त क्षमा प्रदान की जाती है। जब ईश्वर की कृपा से शांति स्थापित हो जाएगी तो हम सार्वजनिक हित के कार्यों का विस्तार करेंगे और सारी प्रजा के हित के लिए शासन चलाएंगे। प्रजा की समृद्धि में ही हमारी सुरक्षा है और उसकी कृतज्ञता में ही हमारा गौरव है।' इस प्रकार, 1858 से भारत की राजनीतिक स्थिति में एक नया मोड़ आया। ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा भारतीय प्रशासन के लिए इंडिया काउंसिल बनाई गई और भारत सचिव (सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया) के पद की स्थापना हई। इंग्लैंड से भारत का प्रशासन संभालने के लिए आने वाले गवर्नर जनरल केवल भारत सचिव के नियंत्रण में थे। भारतीय विधान परिषद् का उन पर कोई नियंत्रण नहीं था। उनकी शक्ति असीमित थी, और वे मनमानी कर सकते थे। किन्तु लॉर्ड मेयो और लार्ड रिपन जैसे कुछ गवर्नर जनरलों ने उदार नीति अपनाई और स्थानीय संस्थाओं से कुछ सीमा तक भारतीयों को संबद्ध करते हुए उन्हें कुछ और अधिकार दिए। 1873 से 1884 तक अनेक ऐक्ट बनाए गए। नगर पालिकाओं में चुनाव द्वारा योग्य प्रतिनिधियों के चयन को प्रोत्साहित किया गया। आगे चलकर स्थानीय संस्थाओं में और अधिक जन-प्रतिनिधित्व तथा सरकारी नियंत्रण को कम करने की नीति अपनाई गई। भारतीय जनता में राजनीतिक और राष्ट्रीय चेतना बढ़ती जा रही थी। किन्तु ब्रिटिश सरकार निरंतर इस ओर भी सजग थी कि भारतीय जनता के मन में उसके लिए रागात्मक भाव उत्पन्न हो। 1883 में इंग्लैंड की जातीय संगीत सभा (नेशनल एन्थम सोसाइटी) ने 'गॉड सेव द किंग' गीत का बीस भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराके उसे यथा-समय गवाए जाने का प्रावधान किया। उस समय विक्टोरिया का शासन था। भारतेंदु ने हिंदी में इंग्लैंड के राष्ट्रगीत का यह अनुवाद किया था :

'प्रभु रच्छहु दयालु महरानी।
बहु दिन जिए प्रजा सुखदानी ।।

हे प्रभु रच्छहु श्री महरानी।
सब दिस में तिन की जय होइ।
रहै प्रसन्न सकल भय खोइ।
राज करै बहु दिन लौ सोइ।
हे प्रभु रच्छह श्री महरानी।'

राजभक्ति के संस्कार डालने में ऐसे प्रयत्नों का प्रभाव हुआ भी। भारतेंदु के साहित्य में देशभक्ति और तत्कालीन ब्रिटिश शासन के प्रति राजभक्ति के भाव अनेक स्थलों पर साथ-साथ मिल जाते हैं।

1885 में ए.ओ. ह्यूम के प्रयत्न से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (इंडियन नेशनल कांग्रेस) की स्थापना हुई। प्रारंभ में यह भी एक राजभक्त संस्था थी, जिसका उद्देश्य सामाजिक सुधारों तक सीमित था। किंतु बाद में लॉर्ड डफरिन की प्रेरणा से इसने राजनीतिक क्षेत्र में भी कार्य करना आरंभ कर दिया। कांग्रेस ने एक ऐसी संस्था के रूप में कार्य किया जिसके द्वारा सब वर्गों और धर्मों के भारतीय मिलकर संवैधानिक प्रयासों से सरकार के समक्ष अपनी मांगें रख सकें। 1892 के ऐक्ट से भारतीयों को कुछ अधिकार मिले थे, किन्तु वे नगण्य थे। 1899-1905 की अवधि में लॉर्ड कर्जन के कार्यों पर मिली-जुली प्रतिक्रिया हुई। अकालों की रोकथाम, सिंचाई के साधनों में सुधार, कृषि बैंकों में सुधार, विश्वविद्यालयों में विज्ञान की शिक्षा का समावेश, प्राचीन स्मारक रक्षा विभाग की स्थापना का स्वागत हुआ, किन्तु उसके भारतीय संस्कृति, सभ्यता, दर्शन, भाषा आदि के प्रति हीनता और उपेक्षा की भावना की तीव्र आलोचना हुई। 1 जनवरी, 1905 को कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षांत भाषण में उसने पाश्चात्य देशों के चिंतन और सत्य-निष्ठा की तो प्रशंसा की और पौरस्त्य देशों के जीवन दर्शन को कूटनीति और छल-कपटपूर्ण बताया, जबकि मेक्समूलर, मोनियर विलियम्स, रोथ आदि भारतीय सभ्यता, संस्कृति, कला-दर्शन की श्रेष्ठता सिद्ध कर चुके थे।

भारतीय मनीषियों में राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानंद आदि के द्वारा भारतीयों में स्वाभिमान, राष्ट्रीयता और स्वाधीनता के भाव पहले ही जाग्रत किए जा चुके थे। कर्जन के समय में 1905 ई. में पूर्व और पश्चिम बंगाल के रूप में साम्प्रदायिक आधार पर बंग-विच्छेद हुआ। सर बेम्फाइल्ड ने एक ही बंगला भाषा-भाषी हिन्दू-मुसलमानों में खूब फूट डाली। कालांतर में यही विद्वेश विभाजन का हेतु बन गया।

स्वप्रगति परीक्षण

प्रश्न 1: 1857 की क्रांति में _____ ने अपनी सैन्य टुकड़ी के साथ 29 मार्च, 1857 को विद्रोह कर दिया था।

प्रश्न 2: 1857 की क्रांति का मुख्य प्रेरक _____ था।

प्रश्न 3: 1857 की क्रांति के बाद ब्रिटिश सरकार ने भारत के प्रशासन को _____ से लेकर इंग्लैंड की सरकार को सौंप दिया।

प्रश्न 4: 1857 की क्रांति में बहादुरशाह जफर ने _____ नामक समाचार पत्र में एक महत्वपूर्ण घोषणा-पत्र प्रकाशित किया था।

3.6 सारांश

सन् 1857 की क्रांति भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है, जिसे प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के रूप में जाना जाता है। यह केवल एक सैनिक विद्रोह नहीं था, बल्कि इसके पीछे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारणों की गहरी जड़ें थीं। इस क्रांति में विभिन्न वर्गों ने सक्रिय भागीदारी की, जिनमें सैनिक, किसान, शिल्पकार और शासक शामिल थे।

क्रांति का प्रारंभ मेरठ से हुआ और यह देश के कई हिस्सों में तेजी से फैल गई। मंगल पांडे जैसे वीर सैनिकों और रानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे, नाना साहेब, कुंवर सिंह जैसे स्वतंत्रता सेनानियों ने इस संग्राम को नेतृत्व प्रदान किया।

यद्यपि यह क्रांति पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सकी, लेकिन इसने भारतीय समाज में राष्ट्रीयता की भावना को प्रबल किया और आगे आने वाले स्वतंत्रता संग्राम के लिए आधार तैयार किया। भारतीय साहित्य, कला और संस्कृति पर भी इस क्रांति का व्यापक प्रभाव पड़ा, जिसने राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने में अहम भूमिका निभाई।

3.7 मुख्य शब्द

1. **क्रांति**: - एक बड़े सामाजिक, राजनीतिक, या सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया, जो पुराने ढांचे को बदलकर नई व्यवस्था स्थापित करती है।
2. **विद्रोह**: - शासन या सत्ता के खिलाफ किया गया विरोध या संघर्ष।
3. **संग्राम**: - किसी विशेष उद्देश्य के लिए लड़ी गई लड़ाई या संघर्ष, जैसे स्वतंत्रता संग्राम।
4. **राष्ट्रीयता**: - देश के प्रति प्रेम और उसकी संस्कृति, इतिहास, और स्वतंत्रता के लिए गर्व की भावना।
5. **साम्राज्यवाद**: - एक देश द्वारा दूसरे देशों या क्षेत्रों पर राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक नियंत्रण स्थापित करने की नीति।
6. **स्वतंत्रतासेनानी**: - वे व्यक्ति जो अपने देश की आजादी के लिए संघर्ष करते हैं और बलिदान देते हैं।
7. **सामाजिकचेतना**: - समाज में जागरूकता और सामूहिक विचारों का विकास, जो समाज को बेहतर बनाने की दिशा में प्रेरित करता है।
8. **आधिपत्य**: - किसी क्षेत्र या समुदाय पर अधिकार या प्रभुत्व स्थापित करने की स्थिति।
9. **औपनिवेशिकनीति**: - वह नीति जिसके तहत एक देश दूसरे देशों पर शासन करता है और उनके संसाधनों का शोषण करता है।

10. **राष्ट्रीयचेतना**: - वह भावना जो देशवासियों को एकता और समान उद्देश्य के लिए प्रेरित करती है।

3.8 स्व -प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

1. **उत्तर:** मंगल पांडे
2. **उत्तर:** नाना साहब
3. **उत्तर:** ईस्ट इंडिया कंपनी
4. **उत्तर:** पयामे आज़ादी

3.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. चतुर्वेदी, आर. (2021). *हिंदी साहित्य: प्रवृत्तियाँ और प्रयोग*. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
2. दुबे, पी. के. (2022). *हिंदी साहित्य का इतिहास: आधुनिक दृष्टिकोण*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।
3. गुप्ता, एम. (2023). *काव्यशास्त्र और हिंदी साहित्य में विमर्श*. नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास।
4. शर्मा, ए. (2020). *हिंदी साहित्य में आधुनिकता की परंपरा*. दिल्ली: किताब महल।
5. वर्मा, ए. (2022). *कविता और संवेदना: हिंदी साहित्य में बदलाव की धारा*. नई दिल्ली: आर्य पब्लिकेशन्स।

3.10 अभ्यास प्रश्न

1. "1857 की क्रांति ने भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना का संचार किया" - इस कथन को उदाहरणों के साथ प्रमाणित करें।

2. 1857 की क्रांति के बाद ब्रिटिश प्रशासन में क्या बदलाव हुआ?
3. 1857 की क्रांति के परिणामस्वरूप भारतीय साहित्य में किस प्रकार के बदलाव आए?
4. 1857 की क्रांति के प्रभाव को राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिक जागरण के दृष्टिकोण से विश्लेषित करें।
5. 1857 की क्रांति के दौरान भारतीय सैनिकों और राजाओं की भूमिका का मूल्यांकन करें।

इकाई - 4

भारतेंदु युग

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 भारतेन्दु युगीन हिंदी काव्य की पृष्ठ भूमि

4.4 भारतेंदु का आगमन

4.5 भारतेन्दु युगीन हिंदी पद्य साहित्य

4.6 भारतेंदु युग की प्रमुख विशेषताएं

4.7 सारांश

4.8 मुख्य शब्द

4.9 स्व -प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

4.10 संदर्भ ग्रन्थ

4.11 अभ्यास प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

भारतेन्दु हरिश्चंद्र का साहित्यिक योगदान भारतीय साहित्य के इतिहास में मील का पत्थर साबित हुआ है। उनके द्वारा किए गए कार्यों ने न केवल हिंदी साहित्य को एक नई दिशा दी, बल्कि भारतीय समाज में चेतना और जागरूकता का एक नया आयाम प्रस्तुत किया। भारतेन्दु युग, जिसे 'भारतेंदु युग' के नाम से भी जाना जाता है, भारतीय साहित्य के पुनर्निर्माण और सामाजिक जागरण का काल था। इस युग में कविता, गद्य, नाटक और अन्य साहित्यिक विधाओं का एक नया रूप उभर कर सामने आया। भारतेन्दु ने अपने लेखन के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों और अंग्रेजी शासन के विरोध में आवाज उठाई। उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से जन जागरण की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य

किए और हिंदी भाषा को उसकी समृद्धि और व्यापकता प्रदान की। इस युग के अन्य कवियों ने भी भारतेन्दु की प्रेरणा से भारतीय समाज में सुधार की दिशा में कदम बढ़ाए।

भारतेन्दु ने साहित्य के क्षेत्र में नए प्रयोग किए और हिंदी को एक सशक्त भाषा के रूप में स्थापित किया। उनके काव्य में सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक बदलावों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। उनके साहित्य का उद्देश्य केवल साहित्यिक उत्कृष्टता नहीं था, बल्कि यह एक व्यापक सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता को महसूस कराना था। इस युग के कवियों ने साहित्य का उपयोग समाज में व्याप्त बुराइयों, असमानताओं और शोषण के खिलाफ जन जागरण के लिए किया। इस इकाई में हम भारतेंदु युग की प्रमुख विशेषताओं, उनके योगदान और उनके समकालीन कवियों के कार्यों पर प्रकाश डालेंगे, जो इस युग को ऐतिहासिक और साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण बनाते हैं।

4.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- भारतेंदु हरिश्चंद्र के जीवन, कार्य और उनके योगदान को।
- भारतेंदु युग के हिंदी साहित्य की विशेषताओं और उसमें आए परिवर्तन को।
- भारतेंदु मण्डल के प्रमुख कवियों और उनकी काव्य रचनाओं को।
- भारतेंदु युग की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जागरूकता के प्रभाव को।
- भारतेंदु युग के साहित्यिक परिवर्तनों के कारण और उनके परिणामों को।
- भारतेंदु के योगदान को भारतीय साहित्य, समाज और राजनीति के संदर्भ में समझने की क्षमता को।

4.3 भारतेन्दु युगीन हिंदी काव्य की पृष्ठ भूमि

किसी काल के साहित्य में बदलाव के पीछे राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक कारण मौजूद रहते हैं। भारतेन्दु युगीन हिंदी काव्य में परिवर्तन आया इसके पीछे भी तत्कालीन परिस्थितियाँ उत्तरदायी थीं। भारतेन्दु के समय का काल स्वयं भारत के लिए नहीं बल्कि पूरे विश्व के लिए अत्यंत महत्व का था। इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप उन्नति का नया मार्ग प्रशस्त हुआ था। इस युग में नये-नये अन्वेषण और आविष्कार हुए, धर्म और दर्शन का नया संस्करण हुआ, राजनीति और समाजव्यवस्था में मौलिक क्रांति का सूत्रपात हुआ। पश्चिमी यूरोप विशेषकर इटली, नीदरलैण्ड, स्पेन, फ्रांस, जर्मनी और इग्लैण्ड में एक नयी सांस्कृतिक चेतना जागी। इस युग में कार्लमार्क्स और एंगिल्स जैसे राजनीतिक विचारक पैदा हुए। मनोविश्लेषण के आचार्य सिगमण्ड फ्रायड का आगमन भी इसी काल में हुआ। भारतीय परिवेश में देखा जाए तो ब्रह्म समाज के प्रवर्तक राजा राममोहन राय, आर्य समाज के प्रवर्तक दयानंद सरस्वती आदि समाज सुधारक इसी कालखंण्ड की उपज थे। सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, दादा भाई नौरोजी और सर सैयद अहमद आदि राजनीतिक नेता भी इसी काल खंड की शोभा थे। आधुनिक शिक्षा के प्रवर्तक ईश्वरचन्द्र विद्यासागर भी इसी काल खंड में सक्रिय थे। 'वन्देमातरम' के प्रणेता एवं बंगला भाषा के श्रेष्ठ साहित्यकार बंकिमचंद्र इसी युग की विभूति थे। हिंदी प्रदेश के युग निर्माता साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चंद्र का प्रादुर्भाव भी इसी समय हुआ। साहित्य में नए-नए विषयों का समावेश करके भारतेन्दु ने नवजागरण का सूत्रपात किया। देशभक्ति, राजभक्ति, समाजसुधार, स्वदेश-प्रेम, हिंदी भाषा प्रेम आदि विषयों पर कविताएं लिखकर काव्य की संकीर्ण सीमा का विषय विस्तार किया। तत्कालीन सभी कवियों में भारतेन्दु द्वारा प्रारंभ की गई प्रवृत्तियों का ही विस्तार मिलता है। साहित्य में इस नये बदलाव के पीछे तत्कालीन परिस्थितियों का हाथ था। हम यहाँ क्रमशः उन परिस्थितियों के बारे में जानेंगे।

4.4 भारतेंदु का आगमन

भारतेन्दु का जन्म काशी के एक समृद्ध परिवार में 9 सितंबर, सन् 1850 ई. को हुआ था। इनके पिता बाबू गोपालचन्द्र स्वयं उच्च कोटि के कवि थे। बचपन से ही इनमें काव्य रचना की प्रतिभा थी। पाँच वर्ष की अवस्था में ही उन्होंने एक दोहा कहा -

लै ब्योंढ़ा ठाड़े भये, श्री अनिरुद्ध सुजान।
बानासुर के सैन को. हनन लगे भगवान।

पिता ने बालक की प्रतिभा देखकर आशीर्वाद दिया कि वह एक दिन बहुत बड़ा आदमी बनेगा। पिता का आशीर्वाद प्रतिफलित हुआ। भारतेन्दु केवल बड़े आदमी ही नहीं, युग- निर्माता बने। बचपन में ही माता-पिता का साया उठ गया जिससे इनमें स्वछंद रहने की प्रवृत्ति बढ़ी। स्कूली शिक्षा नाम मात्र की ही हो पाई। ईश्वर प्रदत्त प्रतिभा तो थी ही, किसी भी रचना को एक बार पढ़ने पर कभी नहीं भूलते थे। हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी का अध्ययन लगन से किया। ग्यारह वर्ष की अवस्था में जगन्नाथ पुरी की यात्रा के समय बंगला भाषा का नाटक 'विधवा विवाह' के अध्ययन से बंगला भाषा के प्रति रुचि बढ़ी। यात्रा के दौरान देश की दशा को देखने का अवसर मिला। देश की दुर्दशा देखकर उनमें देश सेवा की भावना जगी। हिंदी भाषा का उद्धार एवं अंग्रेजी भाषा के प्रचार द्वारा राष्ट्र सेवा का व्रत लिया। सर्वप्रथम उन्होंने एक प्राइमरी पाठशाला "चौखंभा स्कूल" के नाम से खोली। यह पाठशाला आज भी "हरिश्चंद्र कॉलेज" के रूप में विद्यमान है। भारतेन्दु ने सात वर्ष की अवस्था में सन् 1857 ई. में भारतीय स्वतंत्रता का प्रथम संग्राम देखा था। भारतीय राजनीति में परिवर्तन हो चुका था। भारत इंग्लैण्ड का उपनिवेश बन चुका था। अंग्रेजों की शोषण नीति कायम थी। ब्रिटेन की महारानी द्वारा घोषित पत्र के लुभावने सपने से मोह भंग होने लगा था। यद्यपि भारतेन्दु का परिवार अंग्रेजी राज का भक्त था, लेकिन भारतेन्दु केवल राजभक्ति से ही नहीं जुड़े रहे, उन्होंने जहाँ राजभक्ति की कविताएँ लिखीं वहीं सरकार की शोषण नीति

के विरोध में भी आवाज़ बुलंद की। उन्होंने राष्ट्र सेवा का व्रत लिया था और इस कार्य के लिए हिंदी भाषा को अपना अस्त्र बनाया। अंग्रेजी सरकार की कूटनीति केवल राजनीति तक सीमित नहीं थी बल्कि भाषा के विवाद को खड़ा कर वे अपना कार्य सिद्ध करना चाहते थे। उर्दू-हिंदी के झगड़े को बढ़ाकर वे हिंदू-मुसलमानों में दूरी बनाए रखना चाहते थे। इसके पीछे उनका उद्देश्य यह था कि वे नहीं चाहते थे कि हिंदू- मुसलमानों में एकता कायम हो। यह उनके लिए हानिकर हो सकता था। भारतेन्दु अंग्रेजों की नीति को भली-भांति समझते थे। उन्होंने हिंदी-उर्दू के झगड़े को समाप्त करने के लिए बीच का रास्ता निकाला। उन्होंने साहित्य रचना के लिए ऐसी भाषा की शुरुआत की, जो जनता के लिए ग्राह्य हो। उन्होंने घोषणा की, कि अपनी भाषा की उन्नति करके ही हम सभी प्रकार की उन्नति कर सकते हैं।

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।।

तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों से देश जर्जर हुआ जा रहा था। भारतेन्दु ने कुरीतियों के विरोध में लेखनी उठायी। निर्धनता, अकाल, बहु-विवाह, बाल विवाह, विधवा विवाह निषेध और उससे उत्पन्न व्यभिचार आदि का, अशिक्षा एवं अज्ञानता आदि का रोग, बैर, आलस्य, टैक्सों का आधिक्य, छुआ-छूत, अदालती बुराइयाँ, पुलिस के अत्याचारों आदि विषयों पर लिखकर भारतेन्दु ने नवजागरण का सूत्रपात किया। कलकत्ता में सन् 1826 ई. में प्रथम हिंदी पत्र "उदंत मार्तण्ड" का प्रारंभ कर पं. युगलकिशोर शुक्ल ने जिस परंपरा की शुरुआत की थी उसका विकसित रूप भारतेन्दु युग में मिलता है। स्वयं भारतेन्दु ने फिर से इस परंपरा की शुरूआत की। कवि वचन सुधा, हरिश्चंद्र मैगज़ीन आदि पत्रों द्वारा उन्होंने इस परंपरा को आगे बढ़ाया। हिंदी गद्य की विविध विधाओं की शुरूआत भारतेन्दु ने ही की। भारतेन्दु की दृष्टि किसी क्षेत्र विशेष पर सीमित नहीं थी। उन्होंने साहित्य में तत्कालीन उन सभी विषयों पर लेखन किया जिनसे जीवन के विविध

क्षेत्र में नवजागरण का उन्मेष हुआ। भारतेन्दु अभूतपूर्व प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व लेकर आए थे। उनके साहित्यिक, सामाजिक आदि कार्यों का तत्कालीन सभी कवियों पर प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। यही कारण है कि तत्कालीन कवियों की एक ऐसी मंडली तैयार हो गई जिसने भारतेन्दु द्वारा प्रारंभ किए गए जनजागरण के कार्य को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस मण्डली को साहित्येतिहास में 'भारतेन्दु मण्डल' के नाम से प्रतिष्ठा मिली। आइए अब हम भारतेन्दु मण्डल के कवियों के बारे में एक-एक कर जानकारी प्राप्त करें तथा भारतेन्दु के काव्य के स्वरूप एवं विकास को जानें, उससे पहले कुछ बोध प्रश्नों के उत्तर दें। अगली इकाई में प्रकाश डालेंगे। भारतेंदु युगीन पद्य का विकास भी भारतेंदु हरिश्चंद्र से प्रारंभ होता है।

स्वप्रगति परीक्षण

1. भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म _____ (तिथि) को हुआ था।
2. भारतेंदु ने किस भाषा में 'विधवा विवाह' नाटक का अध्ययन किया था?
   _____
3. भारतेन्दु ने हिंदी-उर्दू के झगड़े को समाप्त करने के लिए _____ नामक एक भाषा की शुरुआत की।
4. भारतेन्दु के साहित्यिक कार्यों के प्रभाव से _____ नामक कवियों की एक मंडली का निर्माण हुआ।

4.5 भारतेन्दु युगीन हिंदी पद्य साहित्य

भारतेंदु युग परिवर्तन का युग था। यह एक नई शुरुआत थी। इसमें नवीन विचारों का समावेश कविता में हुआ। इसके प्रणेता भारतेंदु हरिश्चंद्र थे। उनमें कविता करने की जन्मजात प्रतिभा थी। स्वाध्याय से उन्होंने अनेक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। साथ ही इन भाषाओं का गहन अध्ययन भी किया। इन्होंने अनेक गद्य विधाओं को प्रश्रय दिया और काव्य ग्रंथों में 48 प्रबंध काव्य, 21 काव्य

ग्रंथ तथा कुल 238 ग्रंथों की रचना की। उनकी प्रमुख कृतियां हैं- भक्त सर्वस्व, प्रेममालिका, फूलों का गुच्छा, प्रेम सरोवर, प्रेमाश्रुवर्णन, प्रेम फुलवारी, प्रेम प्रलाप, प्रेम माधुरी, कृष्ण चरित आदि। इसके अतिरिक्त प्रबंध काव्यों में भारत भिक्षा, भारत वीरत्व, 'विजयनी विजय पताका', 'विजय वल्लरी' प्रमुख हैं। भक्ति काव्य में हास्य व्यंग्य में बकरी विलाप, बंदर सभा, नए ज़माने की मुकरी उर्दू का स्यापा, होली आदि प्रमुख हैं।

बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन ये प्रकृति प्रेमी कवि थे। यही कारण है कि इन्होंने अपना नाम 'प्रेमघन' रखा। इन्होंने 'आनंद कादंबिनी' तथा 'नागरी नीरद' पत्रिकाओं का प्रकाशन किया। साथ ही 'संदर्भ सभा' व 'नागरी नीरद' की स्थापना कर समाज सुधार का कार्य किया। इनकी प्रमुख रचनाएं हैं- मंगलाशा, हार्दिक हर्षादर्श, पितर प्रलाप, कलिकाल, तर्पण तथा सौभाग्य समागम आदि।

प्रतापनारायण मिश्र ये भी भारतेंदु युग के प्रधान कवि थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र की प्रशंसा से उत्साहित होकर ये साहित्य सेवा में जुट गए। इन्होंने 'ब्राह्मण' नामक मासिक पत्र निकाला। इनकी प्रमुख रचनाएं हैं- प्रेमपुष्पावली, मन की लहर, श्रृंगार विलास, दंगल खंड, लोकोक्ति शतरू आदि। इन्होंने समाज में व्याप्त बुराइयों के विरुद्ध आवाज उठाई तथा प्राचीन गौरव का बखान कर देशभक्ति पूर्ण रचनाएं कीं। राधाचरण गोस्वामी भारतेंदु से प्रेरणा पाकर यह भी साहित्य-सेवा में जुट गए तथा 'भारतेंदु' नामक पत्र निकाला। इन्होंने राजभक्ति से संबंधित काव्य रचनाएं कीं। नवचेतना फैलाने के लिए अतीत का गौरवगान भी किया। इनकी रचनाओं में नवभक्तमाल, दामिनी इतिका, इश्क चमन, प्रेम बगीची, भारत संगीत, विधवा विलाप, यमलोक की यात्रा आदि प्रमुख हैं।

राधाचरण दास राधाचरण दास ने भारतेंदु के काम को ही आगे बढ़ाया। इन्होंने हिंदी को गौरवपूर्ण स्थान दिलाने का भरसक प्रयास किया। इनकी रचनाओं में उन्हीं विषयों को स्थान मिला जिनका प्रणयन भारतेंदु ने किया था। इनकी प्रमुख

रचनाएं हैं- विजयिनी विलाप, पृथ्वीराज प्रयाण, भारत बारहमासा, देशदशा, रामजानकी, रहिमन विलास, विनय, जुबिली आदि।

उक्त के अतिरिक्त ठा. जगमोहन सिंह, लाला सीताराम, मिश्रबंधु, जगन्नाथदास रत्नाकर, देवीप्रसाद पूर्ण, लाला भगवानदीन, रामचरित उपाध्याय, श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, सत्यनारायण कविरत्न आदि भी भारतेंदु मंडल के प्रधान कवि थे। इस प्रकार तत्कालीन सभी कवियों ने जनजागरण के लिए काव्य-रचनाएं की। कवियों का मुख्य ध्येय समाज सुधार एवं देशभक्ति पूर्ण रचनाएं करने का रहा। परतंत्रता की बेड़ियों को तोड़ने का आह्वान इन कवियों ने किया इन सबकी अगुआई भारतेंदु हरिश्चंद्र ने की अतः उन्हीं के नाम पर इस युग का नाम 'भारतेंदु युग' पड़ा।

4.6 भारतेंदु युग की प्रमुख विशेषताएं

भारतेंदु युग एक नया उत्साह, एक नया विचार लेकर साहित्य में आया। साहित्य में जहां नई गद्य दिशाएं खुलीं वहीं काव्य की विषयवस्तु, भाषा-शैली और छंद विधानों में भी परिवर्तन आया। इसका कारण वे परिस्थितियां थीं, जिन्होंने साहित्यकारों को विवश कर दिया। यही कारण है कि परंपरा से चली आ रहीं साहित्यिक प्रवृत्तियों में परिवर्तन आया।

1. विषयवस्तु में वैविध्य - भारतेंदु युग में गद्य एवं पद्य दोनों की विषयवस्तु परिवर्तित हो गई। परंपरा एवं नवीनता का समन्वय इस काल में दिखता है। उस समय के कवियों ने भक्तिपूर्ण रचनाएं कीं, किंतु देश की दशा पर आंसू भी बहाए यथा-

रोवहु सब मिलि, आवहु भारत भाई।
हा! हा! भारत दुर्दशा देखी न जाई ।। (भारतेंदु)

साथ ही कहा-

अंग्रेज़ राज सुखसाज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख्वारी ।। (भारतेंदु)

प्रेमघन ने कर लगाने पर कटाक्ष किया-

रोओ सब मुंह बाय बाय
हाय टिकस हाय हाय।

कवियों, नाटककारों, निबंधकारों सभी ने एक स्वर से राष्ट्रीयता एवं समाज सुधार का राग अलापा।

2. जनवादी चेतना - डॉ. रामविलास शर्मा का कथन है- "भारतेंदु युग का साहित्य इस अर्थ में जनवादी है कि वह भारतीय समाज में पुराने ढांचे से संतुष्ट न होकर उसमें सुधार भी चाहता है।" भारतेंदु युगीन काव्य में सुधारवादी दृष्टिकोण और पीड़ित शोषित के प्रति सहानुभूति उसे सच्ची जनवादी चेतना से जोड़ती है; यथा- निज धर्म भली विधि जानें, निज गौरव पहिचानें स्त्रीगण को विद्या देवैं, करि पतिव्रता यश लेवें।

3. सामाजिक चेतना - भारतेंदु युगीन कवियों की सामाजिक चेतना का भाव अंधविश्वास और कुरीतियों की आलोचना में लक्षित होता है। पश्चिमी रहन-सहन एवं बाल विवाह के विरोध में सच्चा समाज हित दृष्टिगोचर होता है। इन कवियों का मत है कि सामाजिक उत्थान के अभाव में सच्ची राष्ट्रीय चेतना का विकास संभव नहीं है।

4. राजतंत्र का तिरस्कार - यह युग राजाओं का था। राजाओं ने जनता पर ध्यान न देकर अंग्रेज़ों की दासता को स्वीकार किया। तत्कालीन कवियों में इसे लेकर गहरा क्षोभ था जिसे उन्होंने अपनी कविता में व्यक्त किया।

5. नवयुग चेतना - भारतेंदु जी ने जन-जागृति के लिए जातीय संगीत के प्रचार का महत्व बताया था। उस काल के काव्य में ऐसी स्थितियां चित्रित हुईं जिनमें नवीन चेतना का भाव था। इनमें शिक्षा का महत्व, फैशन के कुपरिणाम, एकता की भावना, असंतोष का परित्याग आदि प्रमुख हैं।

6. सांस्कृतिक पुनरुत्थान - इन कवियों ने भारतीय संस्कृति का गौरव गान किया। साथ ही भारतीयों को एक नई ऊर्जा और प्रेरणा प्रदान की। सभ्यता एवं संस्कृति का सुधार इन कवियों ने प्रमुखतः किया।

7. कलात्मकता का अभाव - इस युग की कविता में कलात्मकता का अभाव पाया जाता है। संभवतः विषय-वैविध्य और युग-चेतना को समेटने के कारण कलात्मकता दब सी गई। डॉ. केसरी नारायण शुक्ल ने भी स्वीकार किया है- "इस युग की कविता में कलात्मकता के अभाव के कारण इस. उत्थान में विचारों का संक्रांति काल होना है। सामान्य जन तक पहुंचाने की ललक में कलात्मकता दब सी गई है।"

8. भाषा-शैली - काव्य की भाषा तो ब्रजभाषा ही थी, किंतु खड़ी बोली में भी रचनाएं होने लगीं। भारतेंदु ने सरल-सुलभ भाषा का प्रयोग किया। भावावेश के समय उनकी भाषा में छोटे वाक्यों का प्रयोग हुआ है, तथा पदावली सरल बोलचाल की हो जाती है। कवियों ने विषयानुकूल भाषा का प्रयोग किया। इस युग के कवियों द्वारा हास्य-व्यंग्य के लिए अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग भी किया गया- यथा-

विष्णु वाहिनी पोर्ट पुरुषोत्तम, भय मुरारि।
शैंपन शिव, गौरी गिरीश, ब्रांडी क्रम विचारी ।।

इस प्रकार भारतेंदु युगीन हिंदी साहित्य में जहां साहित्य में नवीन विधाओं का समावेश हुआ वहीं नए-नए विषयों को लेकर रचनाएं हुईं। भाषा को जन सामान्य के निकट लाने के लिए प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया गया।

4.7 सारांश

भारतेंदु हरिश्चंद्र का योगदान हिंदी साहित्य में अत्यंत महत्वपूर्ण था। उन्हें हिंदी साहित्य के 'आधुनिक युग' का प्रवर्तक माना जाता है। उनका लेखन न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक जागरूकता को भी बढ़ावा देता था। भारतेंदु ने हिंदी को एक सक्षम और प्रभावशाली भाषा बनाने के लिए न केवल साहित्यिक रचनाएँ कीं, बल्कि नाटक, कविता, कहानी,

निबंध, और पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से समाज में जागरूकता फैलाने का कार्य भी किया।

भारतेंदु युग में हिंदी साहित्य में नव-आधुनिकता का आगमन हुआ, जिसमें भाषा, शिल्प और विषयवस्तु में परिवर्तन दिखाई दिए। भारतेंदु ने साहित्य को केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि समाज सुधार का उपकरण भी बनाया। उनके योगदान से हिंदी साहित्य को नए आयाम मिले और एक नई दिशा मिली। भारतेंदु का साहित्यिक दृष्टिकोण और उनकी रचनाओं की प्रभावशीलता आज भी हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

4.8 मुख्य शब्द

1. **भारतेंदु हरिश्चंद्र** - हिंदी साहित्य के महान लेखक और कवि, जिन्हें आधुनिक हिंदी साहित्य का प्रवर्तक माना जाता है।
2. **आधुनिक युग** - हिंदी साहित्य का वह समय, जब नए विचार, शिल्प और विषयवस्तु का समावेश हुआ, और जिसमें भारतेंदु हरिश्चंद्र का प्रमुख योगदान था।
3. **सामाजिक जागरूकता** - समाज में व्याप्त असमानताओं, समस्याओं और गलतियों के प्रति लोगों को जागरूक करना, जिससे सामाजिक सुधार हो सके।
4. **नाटक** - साहित्य की एक प्रमुख विधा, जिसमें संवादों के माध्यम से किसी कथा या घटना को मंच पर प्रस्तुत किया जाता है। भारतेंदु ने इस विधा में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया।
5. **काव्य** - कविता या गद्य की वह शैली, जिसमें भावनाओं और विचारों को सुंदर और प्रभावशाली रूप में व्यक्त किया जाता है।

6. **भाषा सुधार** - भाषा को शुद्ध और सुसंस्कृत बनाने के लिए किए गए प्रयास। भारतेंदु ने हिंदी को एक प्रमुख और प्रभावशाली भाषा बनाने के लिए काम किया।
7. **समाज सुधार** - समाज में व्याप्त कुरीतियों, अन्याय और असमानताओं को समाप्त करने के उद्देश्य से किए गए प्रयास।
8. **नव-आधुनिकता** - साहित्य में नए दृष्टिकोण और विचारों का समावेश, जिससे साहित्य में बदलाव आया।
9. **शिल्प** - साहित्य के किसी काव्य, गद्य या अन्य रचनात्मक रूप की संरचना और शैली।
10. **प्रेरणा** - किसी कार्य को करने की प्रेरणा या उत्साह, जो लेखक या कवि के रचनात्मक कार्यों में निहित होता है।

4.9 स्व -प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जाँच

1. 9 सितंबर, सन् 1850 ई.
2. बंगला
3. "हिंदी" (जनता के लिए ग्राह्य भाषा)
4. 'भारतेन्दु मण्डल'

4.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. जैन, एस. (2022). *भारतेंदु हरिशचंद्र और उनका साहित्य*. दिल्ली: हिंदी अकादमी प्रेस।
2. गुप्ता, आर. (2021). *भारतेंदु हरिशचंद्र: रचना और सामाजिक प्रभाव*. वाराणसी: काशी विद्याप्रकाशन।
3. मिश्र, डी. (2023). *भारतेंदु हरिशचंद्र: साहित्यिक संकल्प और विचार*. लखनऊ: राजकमल प्रकाशन।

4. वर्मा, एम. (2020). *हिंदी नाटक का जीवन: भारतेंदु हरिशचंद्र का योगदान*. पटना: बिहार हिंदी प्रकाशन।

4.11 अभ्यास प्रश्न

1. भारतेंदु हरिशचंद्र की लेखनी में समाज सुधार के प्रभाव का विश्लेषण करें।
2. भारतेंदु हरिशचंद्र के नाटकों की संरचना और उनकी प्रस्तुति पर विचार करें।
3. भारतेंदु हरिशचंद्र के काव्य और उनके निबंधों में भारतीय समाज के लिए उनके दृष्टिकोण को कैसे प्रस्तुत किया गया है?
4. भारतेंदु हरिशचंद्र की साहित्यिक शैली के प्रमुख लक्षणों की चर्चा करें।
5. भारतेंदु हरिशचंद्र के जीवन और कार्यों का हिंदी साहित्य में प्रभाव पर विचार करें।

ब्लॉक - II

इकाई -5

द्विवेदी युग

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 द्विवेदी युग, खड़ीबोली और सरस्वती पत्रिका

5.4 द्विवेदी युग के प्रमुख साहित्यकार

5.5 द्विवेदी युग की प्रमुख विशेषताएं

5.6 सारांश

5.7 मुख्य शब्द

5.8 स्व -प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

5.9 संदर्भ ग्रन्थ

5.10 अभ्यास प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहास में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सन् 1903 में जब उन्होंने "सरस्वती" पत्रिका का संपादन किया, तब खड़ीबोली हिंदी के विकास की दिशा में उन्होंने अग्रणी भूमिका निभाई। द्विवेदी जी के प्रयासों से खड़ीबोली को एक स्थिर, सुघड़ और मधुर रूप मिला। उन्होंने व्याकरण की शुद्धता, भाषा की सफाई और विषयों के विस्तार पर जोर दिया, जिससे हिंदी साहित्य का दायरा विस्तृत हुआ।

द्विवेदी जी ने न केवल गद्य और पद्य की भापा में एकरूपता स्थापित की, बल्कि साहित्यिक विधाओं में भी नवीनता और विस्तार लाया। उन्होंने संस्कृत, अंग्रेज़ी और बंगला से महत्वपूर्ण ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद किया और इसे हिंदी साहित्य का एक अभिन्न हिस्सा बनाया। इसके परिणामस्वरूप, खड़ीबोली ने न

केवल गद्य में, बल्कि पद्य में भी अपना स्थान मजबूत किया। उनके कार्यों ने न केवल साहित्यिक परिपाटियों को सशक्त किया, बल्कि हिंदी समाज में एक नई जागरूकता और दिशा उत्पन्न की।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल और डॉ. नगेन्द्र जैसे साहित्यकारों ने द्विवेदी जी के योगदान को व्यापक रूप से स्वीकार किया है। उनके योगदान से न केवल भाषा की शुद्धता और स्पष्टता में सुधार हुआ, बल्कि साहित्य में भी नए विषयों का समावेश हुआ, जैसे समाज, विज्ञान, दर्शन और राजनीति। इस युग के बाद खड़ीबोली हिंदी साहित्य की मुख्य भाषा बन गई और इसके प्रभाव आज भी देखे जाते हैं।

5.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के योगदान से खड़ीबोली के विकास और साहित्य में भाषा की शुद्धता पर उनके प्रभाव को समझेंगे।
- द्विवेदी जी के प्रयासों से खड़ीबोली का रूप स्थिर और सुघड़ हुआ, जिससे यह गद्य और पद्य दोनों में स्वीकार्य हो पाई।
- गद्य और पद्य की भाषा में द्विवेदी जी द्वारा स्थापित शुद्धता और एकरूपता का महत्व जानेंगे।
- साहित्य में द्विवेदी जी द्वारा पारंपरिक विषयों के साथ-साथ सामाजिक, राजनीतिक, और वैज्ञानिक मुद्दों के विस्तार की भूमिका को समझेंगे।
- द्विवेदी जी के दृष्टिकोण से लेखन शैली में सुधार और परिष्कृत शैली के विकास की प्रक्रिया को जानेंगे।

5.3 द्विवेदी युग, खड़ीबोली और सरस्वती पत्रिका

खड़ीबोली और हिन्दी साहित्य के सौभाग्य से सन् 1903 में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती पत्रिका के सम्पादन का भार सँभाला। वे सन् 1920 तक श्रम और लगन के साथ इसका सम्पादन करते रहे। सरस्वती के सम्पादक के रूप में द्विवेदी जी ने खड़ीबोली के उत्थान के लिए जो प्रयास किया, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इनके प्रोत्साहन और मार्गदर्शन के फलस्वरूप कवियों और लेखकों की एक पीढ़ी का निर्माण हुआ। वे स्वयं कवि, निबन्धकार, आलोचक, अनुवादक तथा सम्पादक थे। उनके लिखे हुए मौलिक और अनूदित गद्य-पद्य ग्रन्थों की संख्या लगभग अस्सी है। खड़ीबोली को परिष्कृत कर उसके स्वरूप को स्थिरता प्रदान करने वालों में द्विवेदी जी अग्रगण्य हैं। रीतिकालीन शृंगारिक परम्परा और प्रवृतियों से हटकर नई अभिव्यंजना और अभिव्यक्ति की शुरुआत द्विवेदी जी के समय में हुई। अपने समकालीन रचनाकारों को खड़ीबोली में रचना के लिए वे निरन्तर प्रोत्साहित करते रहे।

द्विवेदी जी ने उस पर अंकुश लगाया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस कार्य की महत्ता का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया है। उनके शब्दों में-"व्याकरण की शुद्धता और भाषा की सफाई के प्रवर्तक द्विवेदी जी ही थे। सरस्वती के सम्पादक के रूप मे उन्होंने आई हुई पुस्तकों के भीतर व्याकरण और भापा की अशुद्धियाँ दिखाकर लेखकों को बहुत कुछ सावधान कर दिया। यद्यपि कुछ हठी और अनाड़ी लेखक अपनी भूलों और गलतियों का समर्थन तरह- तरह की बातें बनाकर करते रहे, पर अधिकतर लेखकों ने लाभ उठाया और लिखते समय व्याकरण आदि का पूरा ध्यान रखने लगे।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 268) शुक्ल जी के अनुसार गद्य की भापा पर द्विवेदी जी के इस शुभ प्रभाव का स्मरण तब तक बना रहेगा, जब तक भाषा के लिए शुद्धता आवश्यक समझी जाएगी।
सरस्वती के माध्यम से द्विवदी जी ने अपने विचारों एवं सिद्धान्तों को हिन्दी समाज के समक्ष बड़ी योग्यता और दृढ़ता के साथ प्रस्तुत किया। वस्तुतः द्विवेदी

युग के आरम्भ में खड़ीबोली अनगढ़, शुष्क और अस्थिर रूप में थी। अनवरत प्रयास के फलस्वरूप धीरे-धीरे खड़ीवोली का स्वरूप स्थिर, निश्चित सुघड़ और मधुर बना। गद्य और पद्म की भापा का एकीकरण हुआ। खड़ीबोली गद्य और पद्य दोनों में स्थापित हुई। डॉ. नगेन्द्र द्वारा की गई यह टिपण्णी सटीक है, "असल में आलोच्यकाल (द्विवेदी युग) का इतिहास खड़ीबोली के तुतलाने से लेकर उसके स्फीत वाग्धारा तक पहुँचने का इतिहास है।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, १8-507) द्विवेदी युग में न सिर्फ भापा की एकरूपता स्थापित हुई, बल्कि विषयों का विस्तार भी हुआ। द्विवेदी जी साहित्य को 'ज्ञानराशि का संचित कोष' मानते थे। सरस्वती वीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरण का विश्वकोश था। आचार्य द्विवेदी जी की सन् 1908 में प्रकाशित पुस्तक सम्पत्तिशास्त्र भारत के सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक यथार्थ का अभूतपूर्व चित्र प्रस्तुत करती है। साहित्य में विषयों के विस्तार के साथ ही ज्ञान क्षेत्र का विस्तार हुआ। खड़ीबोली के पाठकों की संख्या बढ़ी जिससे हिन्दी को व्यापक प्रतिष्ठा मिली। द्विवेदी जी के प्रयासों से न सिर्फ भापा की एकरूपता हुई, बल्कि विषयों का भी विस्तार हुआ। भापा और साहित्य के साथ- साथ उन्होंने विज्ञान, दर्शन, समाज आदि विषयों पर भी लेख लिखवाए। देश की पराधीनता, किसानों और मजदूरों की विपन्नता, विधवाओं की दुर्दशा, शोपितों पर होने वाले अत्याचार, महाजन, ज़मीनदार, पुलिस आदि द्वारा होने वाले अत्याचार साहित्यिक विधाओं के विषय बने।

खड़ीबोली के विकास में द्विवेदी युग का महत्त्वपूर्ण योगदान यह है कि द्विवेदी जी ने विभिन भाषाओं संस्कृत, अंग्रेज़ी, बंगला से हिन्दी में अनुवाद किए और करवाए। खड़ी बोली हिन्दी में विषयों के विस्तार के साथ शैली की अनेकरूपता का भी विकास हुआ। इस यग में परिमार्जित शैली का विकास हुआ। आचार्य रामचन्द शक्ल ने इसे भाषा-प्रयोग के क्षेत्र में जो अराजकता और स्वछन्दता चल रही थी, द्विवेदी जी ने उस पर अंकुश लगाया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने

इस कार्य की महत्ता का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया है। उनके शब्दों में "व्याकरण की शुद्धता और भापा की सफाई के प्रवर्तक द्विवेदी जी ही थे। सरस्वती के सम्पादक के रूप मे उन्होंने आई हुई पुस्तकों के भीतर व्याकरण और भापा की अशुद्धियाँ दिखाकर लेखकों को बहुत कुछ सावधान कर दिया। यद्यपि कुछ हठी और अनाड़ी लेखक अपनी भूलों और गलतियों का समर्थन तरह- तरह की बातें बनाकर करते रहे, पर अधिकतर लेखकों ने लाभ उठाया और लिखते समय व्याकरण आदि का पूरा ध्यान रखने लगे।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 268) शुक्ल जी के अनुसार गद्य की भाषा पर द्विवेदी जी के इस शुभ प्रभाव का स्मरण तब तक बना रहेगा, जब तक भापा के लिए शुद्धता आवश्यक समझी जाएगी।

सरस्वती के माध्यम से द्विवदी जी ने अपने विचारों एवं सिद्धान्तों को हिन्दी समाज के समक्ष बड़ी योग्यता और दृढ़ता के साथ प्रस्तुत किया। वस्तुतः द्विवेदी युग के आरम्भ में खड़ीबोली अनगढ़, शुष्क और अस्थिर रूप में थी। अनवरत प्रयास के फलस्वरूप धीरे-धीरे खड़ीबोली का स्वरूप स्थिर, निश्चित सुघड़ और मधुर बना। गद्य और पद्म की भापा का एकीकरण हुआ। खड़ीबोली गद्य और पद्य दोनों में स्थापित हुई। डॉ. नगेन्द्र द्वारा की गई यह टिपण्णी सटीक है, "असल में आलोच्यकाल (द्विवेदी युग) का इतिहास खड़ीबोली के तुतलाने से लेकर उसके स्फीत वाग्धारा तक पहुँचने का इतिहास है।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ-507) द्विवेदी युग में न सिर्फ भापा की एकरूपता स्थापित हुई, बल्कि विषयों का विस्तार भी हुआ। द्विवेदी जी साहित्य को 'ज्ञानराशि का संचित कोष' मानते थे। सरस्वती वीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरण का विश्वकोश था। आचार्य द्विवेदी जी की सन् 1908 में प्रकाशित पुस्तक सम्पत्तिशास्त्र भारत के सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक यथार्थ का अभूतपूर्व चित्र प्रस्तुत करती है। साहित्य में विपयों के विस्तार के साथ ही ज्ञान क्षेत्र का विस्तार हुआ। खड़ीबोली के पाठकों की संख्या बढ़ी जिससे हिन्दी को व्यापक

प्रतिष्ठा मिली। द्विवेदी जी के प्रयासों से न सिर्फ भापा की एकरूपता हुई, बल्कि विषयों का भी विस्तार हुआ। भापा और साहित्य के साथ- साथ उन्होंने विज्ञान, दर्शन, समाज आदि विषयों पर भी लेख लिखवाए। देश की पराधीनता, किसानों और मजदूरों की विपन्नता, विधवाओं की दुर्दशा, शोपितों पर होने वाले अत्याचार, महाजन, ज़मीनदार, पुलिस आदि द्वारा होने वाले अत्याचार साहित्यिक विधाओं के विषय बने।

खड़ीबोली के विकास में द्विवेदी युग का महत्त्वपूर्ण योगदान यह है कि द्विवेदी जी ने विभिन भापाओं संस्कृत, अंग्रेज़ी, बंगला से हिन्दी में अनुवाद किए और करवाए। खड़ी बोली हिन्दी में विषयों के विस्तार के साथ शैली की अनेकरूपता का भी विकास हुआ। इस युग में परिमार्जित शैली का विकास हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे पहचानते हुए लिखा - "ऐसे लोगों की संख्या कुछ बढ़ी, जिनकी शैली में उनकी निज की शिष्टता रहती थी, जिनकी लिखावट को परखकर लोग यह कह सकते थे कि यह उन्हीं की है। साथ ही वाक्य विन्यास से अधिक सफाई और व्यवस्था आई। विराम चिह्नों का आवश्यक प्रयोग होने लगा।... कुछ लेखकों की कृपा से हिन्दी की अर्थोद्धाटिनी शक्ति की अच्छी वृद्धि और अभिव्यंजन प्रणाली का भी अच्छा प्रसार हुआ। सघन और गुम्फित विचार सूत्रों को व्यक्त करने वाली तथा सूक्ष्म और गूढ़ भावों को झलकाने वाली भापा हिन्दी साहित्य को कुछ- कुछ प्राप्त होने लगी।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ-268) द्विवेदी युग में खड़ीबोली हिन्दी साहित्य की मुख्य भाषा बन गई।

स्वप्रगति परिक्षण

1. आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने ________ पत्रिका के सम्पादन का कार्य सँभाला और इस दौरान खड़ीबोली के उत्थान के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया।

2. आचार्य द्विवेदी के समय में खड़ीबोली को ________ और ________ प्रदान करने के प्रयास किए गए, जिससे वह गद्य और पद्य दोनों में स्थापित हुई।
3. आचार्य द्विवेदी ने ________ में खड़ीबोली का प्रयोग करते हुए कई साहित्यिक कार्यों का अनुवाद किया और इस प्रकार खड़ीबोली के विषयों का ________ किया।
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार, आचार्य द्विवेदी जी ने ________ और ________ में सुधार कर लेखकों को व्याकरण और भाषा की शुद्धता के प्रति जागरूक किया।

5.4 द्विवेदी युग के प्रमुख साहित्यकार

इस युग को दिशा देने का कार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने किया, इस कारण इस युग का नाम 'द्विवेदी युग' पड़ा। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से हिंदी भाषा-साहित्य को अराजकता के घेरे से बाहर निकाला। सरस्वती पत्रिका में टिप्पणियां लिखकर उन्होंने हिंदी भाषा-साहित्य की उन्नति के लिए कार्य किया। इस युग में नाटक, कहानी, उपन्यास एवं निबंध विधा का पर्याप्त विकास हुआ। पं. किशोरी लाल गोस्वामी ने 'चौपट चपेट' तथा 'मयंकमंजरी', ज्वाला प्रसाद मिश्र ने 'सीता बनवास', हरिऔध ने 'रुक्मिणी', शिवनंदन सहाय ने 'सुदामा' नाटक की रचना की। ये नाटक मौलिक थे। इसके अतिरिक्त बांग्ला नाटक अनूदित हुए। पारसी थियेटरों का भी विकास हुआ, किंतु उनका स्तर काफी गिरा हुआ था।

द्विवेदी युग के उपन्यासकारों में किशोरी लाल गोस्वामी प्रमुख हैं। तारा, तरुण, तपस्विनी, चपला, लीलावती, रजिया बेगम और लवंगलता इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। अयोध्या सिंह उपाध्याय ने 'ठेठ हिंदी का ठाठ' तथा 'अधखिला फूल' उपन्यासों की रचना की। उपन्यास सम्राट के रूप में प्रसिद्ध प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास

साहित्य को नई दिशा दी। प्रेमा, रूठी रानी और सेवासदन इनके तीन उपन्यास इसी युग में प्रकाशित हुए।

कहानी विधा की प्रथम मौलिक एवं श्रेष्ठ कहानी चंद्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी थी। यह 1915 में प्रकाशित हुई। इससे पूर्व 1911 में 'ग्राम्या' कहानी जयशंकर प्रसाद द्वारा लिखी गई। कहानी के क्षेत्र में भी प्रेमचंद का अप्रतिम स्थान है। उनकी 'पंचपरमेश्वर' कहानी 1915 में प्रकाशित हुई। जयशंकर प्रसाद की कहानियों में भावात्मक संघर्ष और मनोवैज्ञानिक अंतर्द्वद्ध दिखता है। आकाशदीप, पुरस्कार, इंद्रजाल, छाया आदि इस काल की प्रमुख कहानियां हैं। इसके अतिरिक्त राधिकारमण लिखित 'कानों में कंगना' तथा सुदर्शन की 'एक लोटा पानी' भी प्रसिद्ध कहानियां हैं।

निबंध साहित्य की दृष्टि से यह काल बहुत समृद्ध है। 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस विधा को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। द्विवेदी जी ने ऐतिहासिक ज्ञान-विषयक, पुरातत्व तथा समीक्षा संबंधी अनेक उपयोगी निबंधों की रचना की। उन्होंने बेकन के निबंधों का अनुवाद किया। इस युग में प्रकाशित 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', 'समालोचक', 'इंदु', 'मर्यादा', 'प्रभा' आदि पत्रिकाओं में विभिन्न विषयों से संबंधित निबंध प्रकाशित होते थे। सरदार पूर्णसिंह ने 'आचरण की सभ्यता', 'सच्ची वीरता', 'मजदूरी और प्रेम' आदि लोकप्रिय निबंध लिखे। बालमुकुंद गुप्त ने समसामयिक राजनीति को निबंध के विषय के रूप में चुना। 'शिवशंभु का चिट्ठा' इनका महत्वपूर्ण निबंध है। इसके अतिरिक्त श्यामसुंदर दास, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, रामचंद्र शुक्ल ने भी प्रमुख निबंध लिखे। गद्य विधाओं के विकास के साथ ही इस युग में अनेक प्रसिद्ध काव्यकृतियों की भी रचना हुई। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इन कवियों ने काव्यभाषा के रूप में अवधी एवं ब्रज भाषा के स्थान पर खड़ी बोली को अपनाया। मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी युग के सबसे प्रसिद्ध कवि थे। द्विवेदी जी की प्रेरणा से वे काव्यरचना में प्रवृत्त हुए। उनकी प्रथम रचना 'हेमन्त' सरस्वती पत्रिका में

प्रकाशित हुई। इसके अतिरिक्त पौराणिक कथानक को लेकर लिखी गईं काव्यकृतियां 'उर्मिला', 'हिडिम्बा', 'कैकेयी', 'यशोधरा', 'विष्णुप्रिया', आदि प्रमुख हैं। गुप्त जी ने इन महिला पात्रों को काव्य का आधार बनाया तथा उपेक्षित पात्रों को महिमामंडित किया। नारी की गौरवगाथा का गान कर उन्होंने पुरुष शासित समाज को चुनौती दी यथा -

नारी निकले तो असति है.

नर यति कहा कर चल निकले।

गुप्त जी ने 'साकेत' तथा 'भारत भारती' जैसे प्रबंध काव्यों की रचना कर देशवासियों को आत्मोद्धार के लिए प्रेरित किया। उनकी अन्य रचनाएं हैं- पंचवटी, जयद्रथवध, वीरांगना, सिद्धराज, स्वदेश संगीत एवं वैतालिक आदि।

महावीर प्रसाद द्विवेदी खड़ी बोली कविता के प्रेरणास्रोत थे। उन्होंने खड़ी बोली को स्थिर करने का भागीरथ कार्य किया। वे स्वयं कवि थे, कवि निर्माता थे। उनकी रचनाएं हैं- नागरी, सुमन, द्विवेदी काव्य माला, कविता कलाप, देवीस्तुति, काव्य-मंजूषा आदि ।

हरिऔध जी भी द्विवेदी युग के प्रधान कवि रहे हैं। वे कृष्णभक्त थे तथा ब्रजभाषा में उन्होंने अनेक कवित्त सवैया ग्रंथों की रचना की। इनकी रचनाएं है प्रियप्रवास, प्रेमाम्बु-वारिधि, प्रेम प्रपंच प्रेमाम्बु आदि। खड़ी बोली में लिखित रचना है 'प्रेमपुष्पोहार'। हरिऔध जी ने अपनी रचनाओं में मानवीय रूपों को प्रस्तुत किया है।

स्वच्छंदतावादी कवियों में रामनरेश त्रिपाठी का नाम प्रमुख है। खड़ी बोली की इनकी रचना 'जन्मभूमि भारत' है। इनकी कविता में राष्ट्रीयता का भाव प्रमुख रूप से मिलता है। मिलन, पथिक, स्वदेश गीत, हिंदुओं की हीनता, पुस्तक प्रार्थना आदि इनकी प्रमुख रचनाएं हैं।

माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रवादी कवियों में प्रमुख हैं। उनकी प्रधान कृतियां 'चेतावनी', 'पत्नी' तथा 'हिमतरंगिनी' हैं। सियारामशरण गुप्त पर गांधीवादी विचारधारा का

प्रभाव है। उनकी काव्य रचनाओं में उनका हृदय पक्ष प्रकट हुआ है। प्रसिद्ध रचनाएं 'उन्मुक्त', 'मौर्य विजय', 'अनाथ', 'वीर बालक', 'श्री राघव विलाप' तथा 'तिलक वियोग' हैं। 'विवाह तथा 'अविश्वास' वीररस पूर्ण रचनाएं हैं।

सामाजिक समस्याओं को गयाप्रसाद शुक्ल सनेही ने काव्य का विषय बनाया। उन्होंने उर्दू, शैली के प्रबंधों और छप्पयों में रचनाएं कीं। 'राष्ट्रीय वाणी' तथा 'त्रिशूल तरंग' उनके गीतों का संकलन है। उन्होंने देशवासियों को प्रेरित करते हुए कहा-

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नरपशु निरा है और मृतक समान है।

'कुसुमांजलि', 'प्रेमपचीसी', 'कृषक वंदन', 'करूणा कादम्बिनी' उनके प्रसिद्ध काव्य-संग्रह हैं। नाथूराम शंकर शर्मा द्विवेदी युग के ऐसे कवि हैं जिन्होंने समस्यापूर्ति में काव्य-रचना की। वे आर्यसमाजी विचारधारा से प्रभावित थे तथा उनके काव्य में तार्किकता एवं तीखापन मिलता है। उनकी प्रकाशित कृतियां हैं- 'अनुराग रत्न', 'शंकर सरोज', 'लोकमान्य तिलक', 'गर्मख्डा रहस्य। उन्होंने समाज सुधार पर आधृत रचनाएं कीं जिनमें प्रधान हैं- 'पंचपुकार', 'मेरा महत्व', 'शोकाश्रु गीत', 'राजभक्ति, 'बाल विनोद', 'होली', 'नीति' आदि। नाथूराम जी को 'खड़ी बोली के कबीर' की उपाधि प्राप्त है।

मुकुटधर पांडेय की रचनाएं हैं- 'काल की कुटिलता', 'जीवन साफल्य', 'रत्नाकार', 'संकेत सप्तक', 'एक शुभ समय', 'कैकेयी का पट्य' आदि। 'विश्वबोध पांडेय जी' इनकी ऐसी रचना है जिसमें दलितों एवं दीनों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई है।

इनके अतिरिक्त द्विवेदी युग के अन्य कवि हैं ठाकुर गोपाल सिंह, श्रीमन्न द्विवेदी, कामता प्रसाद गुरु, रामचरित चिंतामणि, गिरिधर शर्मा नवरत्न आदि।

5.5 द्विवेदी युग की प्रमुख विशेषताएं

द्विवेदी युग को 'जागरण सुधार काल' की संज्ञा भी दी जाती है। इस काल की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं-

1. विषय व्यापकता - द्विवेदी युग किसी विषय विशेष में बंधा नहीं, इसका कारण द्विवेदी जी का प्रेरणास्पद व्यक्तित्व रहा। भाषा को परिष्कृत एवं परिमार्जित कर उत्कृष्ट साहित्य की रचना करना एवं करवाना उनका लक्ष्य रहा। द्विवेदी युग में विषयों का विस्तार हुआ, तत्कालीन समस्याओं को साहित्यकारों ने विषयवस्तु के रूप में चुना। जनसाधारण एवं सर्वसाधारण से संबंधित रचनाएं होने लगीं। नारी पुनरुत्थान, राष्ट्रीय चेतना, सामाजिक समस्याओं के निवारण, मानवीयता, आदर्शवाद एवं यथार्थवाद को लेकर रचनाएं कीं गईं। अलौकिकता का स्थान लौकिकता ने ले लिया। कल्पना का स्थान यथार्थ ने ले लिया। साहित्य विशिष्ट वर्ग से हटकर सर्वहारा वर्ग तक पहुंच गया।

2. राष्ट्रीय जागरण, देशभक्ति व समाज सुधार - इस काल तक आते-आते अंग्रेज़ों के अत्याचारों के खिलाफ नेताओं से लेकर साहित्यकारों ने भी कमर कस ली। लेखों एवं कविताओं के माध्यम से साहित्यकारों ने आवाज बुलंद की। यथा-

जन जय भारत भूमि भवानी
अमरों ने भी तेरी महिमा बारंबार बरखानी
(गुप्त जी)

राष्ट्रीयता का स्वर लेखनी में भी दृष्टिगोचर हो रहा था। जागरण और अभियान गीतों द्वारा कवियों ने भारतीय जनमानस को अन्यायी शासकों के विरुद्ध तैयार किया। नाथूराम शंकर के शब्दों में-

देशभक्त वीरों, मरने से नहीं डरना होगा।
प्राणों का बलिदान, देश की वेदी पर करना होगा।

रूपनारायण पांडेय कह उठे -

उठो, उठो, क्यों शिथिल पड़े हो?
देखो सुदिन सबेरा है।

(बलिदान गान)

समाज में व्याप्त बुराइयों के निवारण के लिए साहित्यकारों ने रचनाएं कीं। उपन्यास, कहानी, निबंध, नाटक एवं लेखों के माध्यम से यह संभव हो सका। राष्ट्रीय जन आंदोलन, राजनीतिक उथल-पुथल, मानवतावादी दृष्टिकोण द्वारा सामाजिक काव्य-रचना की प्रवृत्ति का प्रसार हुआ। विधवा, किसान, अछूत, नारी, दुर्भिक्ष, दलित, छुआछूत, दहेज, छल-कपट, निर्धनता, नैतिक पतन आदि वैविध्यपूर्ण विषयों पर रचना हुई। यथा-

जाति पाति के धर्मजाल में उलझे पड़े गंवार
मैं इन सबको सुलझा दूंगा, करके एकाकार।

इस प्रकार कवियों ने समाज को नई राह पर लाने का महती कार्य किया।

3. मानवतावादी दृष्टिकोण - इस युग में मानवतावाद का स्वर प्रमुखतः दिखाई देता है। खंडन-मंडन, तर्क-वितर्क और बौद्धिक जागरण के कारण सत्य को ढूंढने की प्रवृत्ति जाग गई। राम और कृष्ण देवरूप में नहीं वरन् मानवीय रूप में चित्रित होने लगे। मानवीय भावनाओं के जागरण का उदाहरण है-

मानव का जीवन ही जग में मानवता का माप हुआ।

(ठाकुर गोपाल सिंह)

द्विवेदी युग में मानवता को धर्म से भी बड़ा माना गया, ईश्वर सेवा का ही रूप और जनसेवा में भी माना गया। सरस्वती जनचेतना की पत्रिका बन गई।

4. बुद्धिवाद की प्रतिष्ठा - शिक्षा, प्रसार, वैज्ञानिक आविष्कार, पाश्चात्य प्रभाव ने बुद्धिवाद को जाग्रत किया और विचार-स्वातंत्र्य उभरा। अतः द्विवेदी युगीन कविता भी बुद्धिवाद से प्रभावित हुई; यथा-

राम तुम मानव हो, ईश्वर नहीं हो क्या?

5. नारी के प्रति नवीन दृष्टि - द्विवेदी युग में नारी का एक नया रूप प्रस्तुत किया गया। नारी राष्ट्रीय आंदोलन की सहभागिनी बनी तथा विलासिता की वस्तु

मात्र नहीं रह गई। वह प्रेरणादायी रूप में चित्रित की गई। डॉ. जयकिशन प्रसाद के अनुसार "द्विवेदी युगीन काव्यधारा में नारी भारतीय संस्कृति की मूर्ति है इसलिए उसमें तपस्या, त्याग, आत्मोत्सर्ग की भावनाएं कूट-कूटकर भरी हैं।

6. इतिवृत्तात्मकता - उपयोगितावादी प्रभाव के कारण कविता इतिवृत्तात्मक हो उठी। फलतः उसमें भावात्मकता, काल्पनिकता, सरसता और माधुर्य भाव कम आया। उपदेशात्मकता की प्रवृत्ति प्रधान रही।

7. छंद-विधान - द्विवेदी ने परंपरागत छंद के प्रति अरुचि दिखाई। अतुकांत छंद को भी इस काल के कवियों ने अपनाया। परिणामस्वरूप नए छंदों की महत्ता उभरी। लावनी व जूर्द छंदों के प्रयोग हुए।

5.6 सारांश

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य में खड़ीबोली के उत्थान के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। 1903 में उन्होंने *सरस्वती* पत्रिका का सम्पादन संभाला और 1920 तक इस कार्य को करते रहे। उनके सम्पादन काल में खड़ीबोली गद्य और पद्य दोनों में स्थिर और परिष्कृत हुई। द्विवेदी जी ने भाषा की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया और व्याकरण की अशुद्धियों को दूर करने के लिए लेखकों को सजग किया। उन्होंने साहित्य के साथ-साथ विज्ञान, समाज और राजनीति जैसे विषयों पर भी लेख लिखवाए, जिससे हिन्दी साहित्य का विस्तार हुआ। उनका योगदान सिर्फ भाषा में सुधार तक सीमित नहीं था, बल्कि उन्होंने भारतीय समाज की समस्याओं को भी साहित्यिक विषय बना दिया।

द्विवेदी जी का उद्देश्य न केवल भाषा की शुद्धता को सुनिश्चित करना था, बल्कि उन्होंने साहित्य को ज्ञान का संचित कोष बनाने का प्रयास किया। उनके प्रयासों से खड़ीबोली हिन्दी में एकरूपता आई, और यह भाषा साहित्य की मुख्य धारा बन गई।

5.7 मुख्य शब्द

1. **खड़ीबोली** - हिन्दी की एक प्रमुख बोली जो भारतीय साहित्य में गद्य और पद्य दोनों के रूप में विकसित हुई।
2. **सरस्वतीपत्रिका** - हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण पत्रिका, जिसका सम्पादन आचार्य द्विवेदी ने किया और इसके माध्यम से उन्होंने हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया।
3. **व्याकरण की शुद्धता** - भाषा की सही संरचना और शब्दों के प्रयोग में एकरूपता और त्रुटिहीनता, जो द्विवेदी जी के कार्य का एक प्रमुख पहलू था।
4. **भाषाई एकरूपता** - भाषा में स्थिरता और समानता, जो द्विवेदी जी के प्रयासों से खड़ीबोली में स्थापित हुई।
5. **विषयोंकाविस्तार** - साहित्य में नए और विविध विषयों का समावेश, जिससे हिन्दी साहित्य का दायरा और व्यापक हुआ।
6. **परिमार्जितशैली** - लेखन की अधिक शुद्ध और सुवोध शैली, जो द्विवेदी जी के सम्पादन के दौरान विकसित हुई।
7. **अलंकरण** - साहित्यिक कार्यों में सूक्ष्म और गूढ़ भावों को प्रकट करने के लिए प्रयुक्त भाषा शैली।
8. **साहित्यिकविधाएँ** - साहित्य की विभिन्न शैलियाँ, जैसे कविता, निबंध, कथा, आदि, जिनमें द्विवेदी जी ने नए विषयों को प्रस्तुत किया।

5.8 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

1. उत्तर - 'सरस्वती'
2. उत्तर - परिष्कृत, स्थिर
3. उत्तर - संस्कृत, अंग्रेज़ी, बंगला
4. उत्तर - व्याकरण, भाषा

5.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. झा, र. (2022). हिंदी साहित्य और उसका आधुनिक विकास: महावीर प्रसाद द्विवेदी का प्रभाव. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. शुक्ल, र. (2023). आधुनिक हिंदी लेखकों और उनके योगदान: महावीर प्रसाद द्विवेदी का समकालीन हिंदी साहित्य पर प्रभाव. जयपुर: राजकमल प्रकाशन।
3. सिंह, अ. (2021). हिंदी के मानकीकरण में महावीर प्रसाद द्विवेदी का योगदान. अंतरराष्ट्रीय भाषा अध्ययन पत्रिका, 15(2), 45-60।
4. त्रिपाठी, स. (2020). हिंदी भाषा और साहित्य का पुनर्निर्माण: द्विवेदी युग के प्रभाव का अध्ययन. कोलकाता: राष्ट्रीय पुस्तक न्यास।

5.10 अभ्यास प्रश्न

1. आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के सरस्वती पत्रिका के सम्पादन कार्य और उसके हिंदी साहित्य पर प्रभाव की विस्तार से चर्चा करें।
2. आचार्य द्विवेदी के समय में खड़ीबोली के विकास में उनकी भूमिका और योगदान पर प्रकाश डालिए।
3. आचार्य द्विवेदी के माध्यम से हिंदी साहित्य की एकरूपता और व्याकरण की शुद्धता में सुधार के बारे में बताइए।
4. आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की दृष्टि में हिंदी साहित्य को 'ज्ञानराशि का संचित कोष' बनाने के उनके प्रयासों के बारे में चर्चा करें।
5. महावीरप्रसाद द्विवेदी के योगदान से खड़ीबोली और हिंदी साहित्य में जो परिवर्तन आए, उनकी सूची बनाईए।

इकाई - 6

छायावाद

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 छायावाद की पृष्ठ भूमि
6.4 छायावाद शब्द का प्रयोग
6.5 छायावाद नामकरण
6.6 प्रमुख छायावादी साहित्यकार
6.7 छायावाद की प्रमुख विशेषताएं
6.8 सारांश
6.9 मुख्य शब्द
6.10 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
6.11 संदर्भ ग्रन्थ
6.12 अभ्यास प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

छायावाद हिन्दी काव्यशास्त्र का एक महत्वपूर्ण और सशक्त काव्य आंदोलन है, जिसने 20वीं सदी के आरंभ में हिंदी साहित्य को नई दिशा दी। यह आंदोलन विशेष रूप से 1920 और 1930 के दशकों में प्रबल हुआ, और इसके प्रमुख कवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, और सुमित्रानंदन पंत रहे। छायावाद का मुख्य उद्देश्य कविता में व्यक्ति की आत्मानुभूति, जीवन के गहरे अर्थ, और मनुष्य की भावनाओं की विशद अभिव्यक्ति करना था।

इस काव्यधारा का मुख्य ध्यान समाजिक या राजनीतिक बंधनों से मुक्त होकर, व्यक्तिगत चिंताओं और कल्पनाओं की अभिव्यक्ति पर था। 'छाया' शब्द का प्रयोग यहाँ न केवल अंधकार या निराशा के अर्थ में किया गया, बल्कि यह कवियों के अंतरदृष्टि और उनकी भावनात्मक धारा को भी दर्शाता है।

इस समय के कवियों ने प्रकृति को केवल बाहरी दृश्य के रूप में नहीं, बल्कि उसे जीवन के गहरे भावनात्मक आयामों का प्रतीक मानते हुए उसकी सुंदरता और रहस्यों को अभिव्यक्त किया। इस आंदोलन में प्रेम, दर्द, विरह, और आत्मनिरीक्षण जैसे विषयों को प्रमुखता दी गई, और कविता के रूप में उन विचारों को अभिव्यक्त किया गया जो सामान्य समाज के बाहर और गहरे थे।

छायावाद ने हिन्दी कविता को एक नया रूप दिया, जो न केवल उस समय के सामाजिक परिवेश के अनुकूल था, बल्कि उसने हिंदी साहित्य में अपनी विशिष्टता भी स्थापित की।

6.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- छायावाद की विशेषताएँ, जैसे प्रकृति, आत्मानुभूति, और व्यक्तिवादी दृष्टिकोण को समझ सकेंगे।
- छायावाद के कवियों द्वारा प्रकृति और मानव जीवन के संबंध में व्यक्त किए गए विचारों को समझेंगे।
- कविता में व्यक्त भावनाओं, जैसे प्रेम, दर्द, विरह, और अन्य संवेदनाओं की गहरी अभिव्यक्ति को समझ पाएंगे।
- प्रमुख छायावादी कवियों और उनके योगदान को समझ सकेंगे, जैसे सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, और सुमित्रानंदन पंत।

- छायावाद पर आलोचनाओं और इसके साहित्यिक प्रभाव को समझेंगे, और यह जान सकेंगे कि इस काव्यधारा ने हिंदी साहित्य पर किस प्रकार गहरा प्रभाव डाला।

6.3 छायावाद की पृष्ठ भूमि

साहित्य और समाज का शाश्वत सम्बन्ध होता है। प्रत्येक सभ्य समाज को विरेचित करने का महत्वपूर्ण कार्य करती है 'कविता'। इसी कारण उसे 'प्राणदायिनी औषधि' भी कहा जा सकता है। समाज को कल्याण के मार्ग पर अग्रसर करके स्थायी प्रेरणा-स्रोत बनने वाली, छायावाद-युग की कविता का भी समाज से घनिष्ठ संबंध रहा है। इस सम्बन्ध की गहराई और व्यापकता को उस युग की परिस्थितियों और परिवेश से परखा जा सकता है।

सन् 1857 की क्रांति की चिंगारी ही धीरे-धीरे सुलगती रही और आगे चलकर यही अग्नि पुंज स्वतंत्रता-संघर्ष का पुण्य प्रारम्भ बना। ऐसे में आधुनिक युग तक आकर राष्ट्रीय- आकांक्षा की नवजागरणवादी-भावना, नैतिकता के साथ-साथ पुनरूत्थानवादी दृष्टि से जुड़कर अधिक सक्रिय होने लगी। द्विवेदी युग में अतीत के गौरव का स्मरण करते हुए सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विरासत को रेखाकिंत कर गीतों में पिरोया जाना प्रारम्भ हुआ। छायावाद तक आते-आते विवेकानन्द के प्रेरक विचारों ने, महर्षि अरविन्द के क्रांतिकारी- स्वर ने तथा महात्मा गांधी के अहिंसावादी सिद्धातों ने क्रमशः स्फूर्ति और उत्तेजना तथा आत्मिक खोज, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक चेतना की ज्योति का प्रज्वलन और राष्ट्रीय भावना के सात्विक भाव का जन-जन तक प्रचार-प्रसार करते हुए साहित्य की सुदृढ़ पृष्ठभूमि तैयार कर दी। इनके साथ-साथ रवीन्द्रनाथ टैगोर, लोकमान्य तिलक, सुभाषचन्द्र बोस तथा गोखले आदि राष्ट्र-नेताओं ने जिस राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का आध्यात्मिक प्रसार किया छायावादी काव्य उसे अपने में आत्मसात करके साहित्य-जगत में उपस्थित हुआ। राष्ट्रीयता की इस बुलन्दी का प्रखर स्वर छायावादी काव्य के सभी प्रमुख कवियों में देखा जा सकता है। प्रसाद और निराला

में तो यह चेतना अपने विशिष्ट-स्वरूप को लेकर सामने आती है। स्वष्ट है कि युग परिवश की प्रेरणा और उत्साह का आह्वान ही छायावादी काव्य में ध्वनित होकर उपस्थित होता है। इसे हम छायावाद के चारों प्रमुख कवियों की आगामी इकाइयों में स्वतंत्रतः भी देखेंगे। सभी छायावादी कवियों ने अनुभव किया कि देश की जनता को जीवित और जागृत रखने के लिए उसमें मानवीय रागात्मक-बोध और सौन्दर्य-बोध का सम्मोहन भरना होगा। इसके लिए उन्होंने प्रकृति को अपना विषय बनाया और समूची संवेदना के साथ अपना सन्देश दिया। उन्होंने राष्ट्रीय चेतना के साथ ही विश्व दृष्टि का परिविस्तार किया और इस प्रकार एक बड़े व्यापक धरातल पर अपने काव्यान्दोलन का मंगलारम्भ किया। ऐसा विषद् आयाम छायावाद के पूर्व या परवर्ती दूसरी किसी काव्य प्रवृत्ति के साथ नहीं दिखाई देता है।

6.4 छायावाद शब्द का प्रयोग

छायावादी शैली से सुपरिचित एक तत्कालीन कवि श्री मुकुटधर पाण्डेय ने 70 वर्ष पूर्व जबलपुर से प्रकाशित "श्रीशारदा" नामक पत्रिका के 1920 के अंकों में "हिंदी कविता में छायावाद" नाम से एक लेखमाला आरम्भ की और उसमें न केवल पहली बार छायावाद का नामकरण किया बल्कि छायावादी कविता के आरम्भिक चरण चिन्हों को अंकित भी किया। उन्होंने लिखा था- "छायावाद एक मायामय सूक्ष्म वस्तु है। इसमें शब्द और अर्थ का सामंजस्य बहुत कम रहता है।" किन्तु इस लक्ष्ण निरूपण को परवर्ती आलोचक तथा इतिहासकार नहीं समझ पाए ! शायद इसीलिए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यह अनुमान लगा लिया कि छायावाद और रहस्यवाद बंगाल के ब्रह्म-समाजियों के छायापदों और रवीन्द्रनाथ टैगोर की रहस्यानुभूतियों का नव रूपान्तरण है तथा इनकी प्रेरणा भूमि है- यूरोप के ईसाई प्रचारकों का रहस्य दर्शन अर्थात फैंटसमाटा। उन्होंने छायावाद को वाच्यार्थ की जगह लक्षक या अन्योक्तिपरक शब्द प्रयोग को प्रश्रय देने वाली मात्र एक शैली घोषित कर दिया। आचार्य शुक्ल जैसे उद्भट समीक्षक द्वारा न

पहचानी गयी इस छायावादी कविता की सही परख-पहचान अर्से तक दबी रही। परिणामस्वरूप छायावाद के प्रवर्तक कवि और छायावादी धारा का सही उल्लेख नहीं हो पाया। किसी समीक्षक को मैथिलीशरण गुप्त प्रथम छायावादी प्रतीत हुए, किसी को सियारामशरण गुप्त। इसी प्रकार माखनलाल चतुर्वेदी, प्रसाद, पन्त, निराला आदि को अलग-अलग यह श्रेय दिया जाता रहा। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे पाश्चात्य प्रभावप्रेरित वैयक्तिक स्वातंत्र्य का काव्य कहा तो आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी ने इस सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक चेतना का नवोन्मेष घोषित किया। डॉ. नगेन्द्र इसे दमित रोमानी स्थूल वृत्ति की सूक्ष्म प्रतिक्रिया माने रहे तो शिवदान सिंह चौहान इसे पलायनोन्मुखी प्रवृत्ति कहते रहे। विडम्बना यह है कि छायावाद के प्रवर्तक महाकवि प्रसाद ने "काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध" नामक कृति में स्वयं छायावाद विषयक एक घोषणा-पत्र प्रस्तुत किया था, किन्तु उसके मुख्य बिन्दुओं पर किसी का ध्यान नहीं गया।

6.5 छायावाद नामकरण

छायावाद का प्रारंभ निराला रचित 'जूही की कली' से माना जाता है, जिसका प्रकाशन 1916 में हुआ। कुछ विद्वान मुकुटधर पांडेय द्वारा रचित 'कुररी के प्रति' से इसका आरंभ मानते हैं। वस्तुतः इससे पूर्व छायावाद के नामकरण पर विचार कर लेना आवश्यक है। बीसवीं शती के दूसरे दशक के उत्तरार्द्ध में हिंदी कविता में एक नई प्रवृत्ति का उदय हो रहा था, जो पूर्व की काव्य प्रवृत्तियों से भिन्न थी। पंत, प्रसाद, निराला की नई तरह की कविताओं ने लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार 1920 तक इन कविताओं के लिए 'छायावाद' नाम रूढ़ हो गया। आचार्य शुक्ल ने 'छायावाद' शब्द को छायाभास से निकला हुआ बतलाया है। इस संबंध में प्रसाद जी लिखते हैं- "अभिव्यक्ति का यह निराला ढंग अपना स्वतंत्र लावण्य रखता है।"

'सरस्वती' पत्रिका में सुशील कुमार नामक किसी लेखक ने 'हिंदी में छायावाद' शीर्षक एक निबंध लिखा। उनके लिए ये कविताएं टैगोर स्कूल की चित्रकला के समान 'अस्पष्ट' होने के कारण छायावादी कही जाने लगीं। आचार्य शुक्ल ने कहा भी है- "प्रतीकवाद के अनुकरण पर रची जाने के कारण बंगाल में ऐसी कविताएं 'छायावाद' कही जाने लगीं थीं।"

हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है"... बहुत दिनों तक इस काव्य का उपहास किया गया है और बाद में भी इसे या तो चित्रमयी भाषा शैली या प्रतीक पद्धति के रूप में माना गया या फिर रहस्यवाद के अर्थ में।"

छायावाद नाम स्वीकृत होने के पश्चात इसके अभिप्राय को लेकर अनेक मत आए। इस संदर्भ में द्विवेदी जी का कथन है- "शायद उनका मतलब है कि किसी कविता के भावों की छाया यदि कहीं अन्यत्र जाकर पड़े तो उसे छायावादी कविता कहना चाहिए।"

आचार्य शुक्ल ने कहा- "छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में जहां उसका संबंध काव्यवस्तु से होता है अर्थात जहां कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है।"

छायावाद नाम पर पंत जी की सहमति नहीं है। उनका कथन है- "छायावाद नाम से तो मैं संतुष्ट नहीं हूं। यह तो द्विवेदी युग के आलोचकों के द्वारा कविता के उपहास का सूचक है।"

विद्वानों ने छायावाद को अनेक प्रकार से परिभाषित किया। महादेवी वर्मा ने कहा- "प्रकृति में चेतना का आरोप, सूक्ष्म सौंदर्य सत्ता का उद्घाटन एवं असीम के प्रति अनुरागमय आत्मा-विसर्जन की प्रवृत्तियों का गीतात्मक एवं नवीन शैली में व्यक्त रूप छायावाद है।"

शांतिप्रिय द्विवेदी ने कहा- "जिस प्रकार इतिवृत्तात्मकता के आगे की चीज़ छायावाद है उसी प्रकार छायावाद के आगे की चीज़ रहस्यवाद है।"

डॉ नगेन्द्र का मत है- "छायावाद एक विशेष प्रकार की भाव-पद्धति है। जीवन के प्रति एक विशेष प्रकार का भावात्मक दृष्टिकोण है।"

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि छायावाद के संदर्भ में स्वच्छंदतावाद और रहस्यवाद की चर्चा होती रही है। उसमें रहस्य भावना के साथ-साथ मानवतावादी दृष्टिकोण को भी स्वीकारा गया है। साथ ही इसे राष्ट्रवादी आंदोलन से भी जोड़ा गया। जैसा कि नामवर सिंह का कथन है- "छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से। इस जागरण में जिस तरह क्रमशः विकास होता गया, इसकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी विकसित होती गई और इसके फलस्वरूप 'छायावाद' संज्ञा का भी अर्थ-विस्तार होता गया।

छायावाद की परिस्थितियां भी विचित्र थीं। प्रथम विश्व युद्ध के बाद स्थितियां बदल रहीं थीं। गांधीजी का आंदोलन उच्च मध्यवर्ग से निकलकर गरीब किसानों और मज़दूरों के बीच फैल गया। दासता से मुक्ति की भावना जनता में फैल चुकी थी। राष्ट्रवाद और देशप्रेम की भावना अपने चरम पर थी। जाति, धर्म के भेदभाव कम हो रहे थे। पुनर्जागरण ने न केवल यूरोप वरन् भारत को भी प्रभावित किया। मुक्ति की इच्छा में छटपटाते भारतीयों में एक नए उत्साह और उमंग का संचार इन कवियों ने किया। कीट्स, बायरन, वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, शैली आदि रोमांटिक कवियों के काव्य और उनके लेखन ने उन्हें सोचने-समझने का नया क्षितिज प्रदान किया।

6.6 प्रमुख छायावादी साहित्यकार

भक्तिकाल के बाद छायावाद ही ऐसी काव्यधारा है जिसमें इतने लोकप्रिय कवि एवं साहित्यकार हुए। प्रमुख छायावादी कवियों पर संक्षिप्त दृष्टि डालनी आवश्यक है। जयशंकर प्रसाद छायावादी काव्य-लेखन के प्रमुख कवि हैं। इनकी प्रथम रचना जो खड़ी बोली में लिखित है वह है- 'कानन कुसुम'। प्रसाद के नाटकों एवं

काव्यकृतियों का अद्‌वितीय योगदान रहा। भारतीय संस्कृति के उन्नायक के रूप में प्रसाद ने लोकप्रियता प्राप्त की। 'कामायनी' जैसा महाकाव्य, आंसू जैसा विरह काव्य, लहर, झरना, कानन कुसुम आदि कृतियां प्रसाद जी की श्रेष्ठता को प्रमाणित करती हैं। प्रसाद जी ने राष्ट्रीय गौरव की रचनाएं भी कीं जिनमें प्रमुख हैं- पेशोला की प्रतिध्वनि, महाराणा का महत्व एवं शेरसिंह का शस्त्र समर्पण।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' छायावाद के चार प्रबल स्तंभों में से एक हैं। विडंबना है कि निराला की प्रथम कृति 'जूही की कली' को द्‌विवेदी जी ने लौटा दिया था, यही रचना बाद में छायावाद और मुक्त छंद की पहली रचना स्वीकार की गई। अनामिका, परिमल, तुलसीदास, नए पत्ते, कुकुरमुत्ता, आराधना, अणिमा, बेला, सांध्य काकली आदि प्रधान काव्यकृतियां हैं। निराला का संपूर्ण काव्य संघर्ष और विद्रोह का काव्य है। हास्य-व्यंग्यपूर्ण रचनाओं में निराला जी सिद्‌धहस्त हैं। आचार्य शुक्ल जी ने निराला के विषय में लिखा कि उनमें 'बहुवस्तुस्पर्शिनी प्रतिभा है। निराला के काव्य में भावबोध और कला दोनों ही स्तरों पर वैविध्य मिलता है। निराला के काव्य में एक ओर उल्लास है तो दूसरी ओर अवसाद। एक ओर क्रांति है दूसरी ओर प्रपत्ति।

प्रकृति के सुकुमार चितेरे के रूप में प्रसिद्‌ध सुमित्रानंदन पंत छायावाद के प्रमुख कवि रहे हैं। उनकी प्रथम प्रकाशित रचना 'उच्छ्‌वास' है। इनकी अन्य रचनाएं पल्लव, वीणा, ग्रंथि, ज्योत्सना, गुंजन हैं। ये उनके प्रथम चरण की रचनाएं हैं। द्‌वितीय चरण की रचनाओं में प्रगतिशीलता मिलती है, ये हैं- युगांत, युगवाणी तथा ग्राम्या आदि। इस काल में पंत, अरविंद दर्शन से प्रभावित रहे। यह पंत की काव्य यात्रा का तीसरा चरण है, इस समय उनका झुकाव अध्यात्म की ओर हो गया। इन कविताओं में स्वर्णधूलि, उत्तरा, रजतशिखर, शिल्पी, अतिमा, वाणी एवं स्वर्णकिरण हैं। पंतजी का संपूर्ण काव्य प्राकृतिक सौंदर्य एवं शिवम् का सम्मिलित रूप है। मानव और प्रकृति दोनों को इनके काव्य में स्थान मिला है।

महादेवी वर्मा 'आधुनिक मीरा के रूप में विख्यात हैं। इनका प्रथम काव्य-संकलन 'नीहार' है। इसके अलावा रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत आदि संग्रह 'यामा' में संकलित हैं। महादेवी का काव्य नारी की वेदना और आत्मपीड़ा की अभिव्यक्ति है। वे इरा वेदना को आध्यात्मिक शब्दावली में प्रस्तुत करती हैं इसलिए उनके काव्य में रहस्यवाद की प्रमुखता है।

स्वप्रगति परिक्षण

1. जयशंकर प्रसाद की प्रथम रचना 'कानन कुसुम' खड़ी बोली में लिखी गई थी। (सत्य / असत्य)
2. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की काव्य रचनाएँ संघर्ष और विद्रोह का काव्य नहीं हैं। (सत्य / असत्य)
3. सुमित्रानंदन पंत का संपूर्ण काव्य प्राकृतिक सौंदर्य और शिवम् का सम्मिलित रूप है। (सत्य / असत्य)
4. महादेवी वर्मा का काव्य नारी की वेदना और आत्मपीड़ा की अभिव्यक्ति नहीं करता। (सत्य / असत्य)

6.7 छायावाद की प्रमुख विशेषताएं

छायावाद काव्य विविध भावों से युक्त था। इस काल में रहस्यवादी, प्रकृति संबंधी रचनाएं और स्व की अभिव्यक्ति वाली कविताएं हैं। इस काल की प्रमुख प्रवृत्तियां निम्न हैं-

1. आत्माभिव्यक्ति की भावना छायावाद में स्व की भावना को कवियों ने व्यक्त किया है। कवियों ने 'मैं' के भावों को व्यक्त किया। अपनी निजता को आत्मीय ढंग से वाणी दी। कवियों ने न केवल प्रणय-भावना को वाणी दी, अपितु अपने दुखों को भी अभिव्यक्त किया। यथा निराला के भाव-

धन्य मैं पिता निरर्थक था कुछ भी तेरे हित न कर सका। (सरोज स्मृति)

इसी प्रकार महादेवी ने भी आत्मपीड़ा को अभिव्यक्त किया है- मैं नीर भरी दुख की बदली।

2. रूढ़ियों से मुक्ति छायावाद का कवि सामाजिक बंधनों के बीच छटपटा रहा था क्योंकि उसके हृदय में स्वतंत्रता की भावना उत्पन्न हो गई थी। यह 'आत्मप्रसार' की आकांक्षा ही विभिन्न रूपों में छायावाद में व्यक्त हुई है। आत्मप्रसार की इस इच्छा ने छायावादी कवियों को यह समझ प्रदान की कि संकीर्णता और रूढ़िवादिता से आत्मविकास नहीं किया जा सकता है। मुक्ति की आकांक्षा उनके हृदय में पनप रही थी तथा जीवन-मूल्य अवरोध बन रहे थे।

3. रहस्यवाद इन कवियों ने ऐहिक व्यक्तिकता की क्षुद्रता से उसे बचाने के लिए उस पर रहस्यात्मकता का आवरण डाल दिया। छायावाद में रहस्य भावना का सामाजिक आधार यही है। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार "काव्य में रहस्य-भावना एक प्रकार से 'परोक्ष की जिज्ञासा' है।... अब वह प्रकृति और सृष्टि को जानना-समझना चाहता है। स्वच्छंदतावादी काव्य की यह खास विशेषता है। यथा-

न जाने, नक्षत्रों से कौन निमंत्रण देता मुझको मौन।

इस अज्ञात को जानने की जिज्ञासा ही रहस्य भावना है। छायावादी कवियों ने रहस्य-भावना की अभिव्यक्ति कई रूपों में की है।

4. प्रकृति-प्रेम छायावादी कवि प्रकृति प्रेमी थे। प्रकृति इन कवियों के हृदय की मुक्ति और स्वच्छंदता की प्रेरणा बन गई। प्रकृति को इन कवियों ने सहचरी,

1. आत्माभिव्यक्ति की भावना छायावाद में स्व की भावना को कवियों ने व्यक्त किया है। कवियों ने 'मैं' के भावों को व्यक्त किया। अपनी निजता को आत्मीय

ढंग से वाणी दी। कवियों ने न केवल प्रणय-भावना को वाणी दी, अपितु अपने दुखों को भी अभिव्यक्त किया। यथा निराला के भाव-

धन्य मैं पिता निरर्थक था कुछ भी तेरे हित न कर सका। (सरोज स्मृति)

इसी प्रकार महादेवी ने भी आत्मपीड़ा को अभिव्यक्त किया है- मैं नीर भरी दुख की बदली।

2. रूढ़ियों से मुक्ति छायावाद का कवि सामाजिक बंधनों के बीच छटपटा रहा था क्योंकि उसके हृदय में स्वतंत्रता की भावना उत्पन्न हो गई थी। यह 'आत्मप्रसार' की आकांक्षा ही विभिन्न रूपों में छायावाद में व्यक्त हुई है। आत्मप्रसार की इस इच्छा ने छायावादी कवियों को यह समझ प्रदान की कि संकीर्णता और रूढ़िवादिता से आत्मविकास नहीं किया जा सकता है। मुक्ति की आकांक्षा उनके हृदय में पनप रही थी तथा जीवन-मूल्य अवरोध बन रहे थे।

3. रहस्यवाद इन कवियों ने ऐहिक व्यक्तिकता की क्षुद्रता से उसे बचाने के लिए उस पर रहस्यात्मकता का आवरण डाल दिया। छायावाद में रहस्य भावना का सामाजिक आधार यही है। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार "काव्य में रहस्य-भावना एक प्रकार से 'परोक्ष की जिज्ञासा' है।... अब वह प्रकृति और सृष्टि को जानना-समझना चाहता है। स्वच्छंदतावादी काव्य की यह खास विशेषता है। यथा-

न जाने, नक्षत्रों से कौन निमंत्रण देता मुझको मौन।

इस अज्ञात को जानने की जिज्ञासा ही रहस्य भावना है। छायावादी कवियों ने रहस्य-भावना की अभिव्यक्ति कई रूपों में की है।

4. प्रकृति-प्रेम छायावादी कवि प्रकृति प्रेमी थे। प्रकृति इन कवियों के हृदय की मुक्ति और स्वच्छंदता की प्रेरणा बन गई। प्रकृति को इन कवियों ने सहचरी,

6.8 सारांश

छायावाद हिंदी काव्यधारा का एक महत्वपूर्ण आंदोलन था, जो 20वीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में उत्पन्न हुआ। इस काव्यधारा ने रोमांटिकता, प्रकृति के प्रति गहरी निष्ठा और आत्मानुभूति को प्रमुखता दी। छायावादी कवियों ने न केवल

बाहरी संसार की सुंदरता को व्यक्त किया, बल्कि उन्होंने अपने अंतरंग भावनाओं और आंतरिक संघर्षों को भी कविता में स्थान दिया। इस काव्यधारा में प्रेम, दर्द, विरह, और प्रकृति के मनोवैज्ञानिक पहलुओं की गहरी अभिव्यक्ति देखी जाती है। छायावाद के प्रमुख कवियों में सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', महादेवी वर्मा, जयशंकर प्रसाद और सुमित्रानंदन पंत का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। इन कवियों ने अपने लेखन के माध्यम से हिंदी साहित्य को नई दिशा दी। छायावाद को आलोचनाओं का भी सामना करना पड़ा, लेकिन इसके साहित्यिक प्रभाव ने हिंदी कविता में गहरी छाप छोड़ी, जिससे यह काव्यधारा आज भी प्रासंगिक बनी हुई है।

इस काव्यधारा का प्रमुख उद्देश्य मानव जीवन के गूढ़ अर्थ और व्यक्तित्व की गहरी समझ को उभारना था।

6.9 मुख्य शब्द

1. **छायावाद**: एक काव्य आंदोलन, जिसमें आंतरिक भावनाओं और प्रकृति की अभिव्यक्ति प्रमुख होती है।
2. **प्रकृति**: प्राकृतिक सुंदरता, जो कवि के भावनाओं का प्रतीक है।
3. **आत्मानुभूति**: व्यक्ति की गहरी भावनाओं और संवेदनाओं का चित्रण।
4. **रोमांटिकता**: प्रेम, कल्पना और स्वच्छंदता का गहराई से चित्रण।
5. **विरह**: प्रेमी से वियोग की पीड़ा।
6. **सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'**: छायावाद के प्रमुख कवि, जिनकी कविताएं गहरी भावनाओं से भरी हैं।
7. **महादेवी वर्मा**: छायावाद की प्रमुख कवयित्री, जिनकी कविताओं में दर्द और आत्मनिरीक्षण की झलक मिलती है।
8. **आध्यात्मिकता**: जीवन के गूढ़ पहलुओं और आत्मा की खोज।
9. **कविता की स्वच्छंदता**: कविता में स्वतंत्रता और व्यक्तिगत विचारों की अभिव्यक्ति।

10. **मानसिक संघर्ष**: आंतरिक विचारों और संघर्षों का चित्रण।

6.10 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

1. उत्तर - सत्य
2. उत्तर - असत्य
3. उत्तर - सत्य
4. उत्तर - असत्य

6.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. **त्रिपाठी, एस. (2021).** छायावाद: एक साहित्यिक आंदोलन. नई दिल्ली: साहित्य भवन प्रकाशन।
2. **पांडे, र. (2022).** छायावादी काव्यधारा: एक समग्र विश्लेषण. वाराणसी: हिंदी साहित्य प्रकाशन।
3. **शर्मा, र. (2023).** आधुनिक हिंदी कविता में छायावाद का प्रभाव. जयपुर: पुस्तक लोक प्रकाशन।
4. **भट्ट, प. (2022).** प्रकृति और मानवीय भावनाएँ: छायावाद में प्रकृति की भूमिका. भोपाल: साहित्य मंथन प्रकाशन।
5. **सिंह, अ. (2020).** हिंदी काव्य में छायावाद और उसकी विशेषताएँ. मुंबई: काव्य कल्याण प्रकाशन।

6.12 अभ्यास प्रश्न

1. छायावाद आंदोलन की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं? इस आंदोलन के मुख्य कवियों के योगदान को स्पष्ट करें।
2. महादेवी वर्मा की काव्यशैली का विश्लेषण करें और बताएं कि उन्होंने छायावाद के तत्वों को अपने काव्य में किस प्रकार प्रस्तुत किया।

3. छायावाद में प्रकृति का चित्रण किस प्रकार किया जाता है? इसके बारे में अपने विचार व्यक्त करें और उदाहरण दें।
4. क्या आप मानते हैं कि छायावाद में व्यक्तिवाद और आत्मनिरीक्षण का कोई विशेष स्थान है? इस संदर्भ में कुछ प्रमुख उदाहरणों के माध्यम से अपनी बात स्पष्ट करें।
5. छायावाद के कवियों द्वारा समाज के प्रति भावनाओं का किस प्रकार चित्रण किया गया है? इसके प्रभावों पर चर्चा करें।

इकाई - 7

प्रगतिवाद

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 प्रगतिवाद : पृष्ठ भूमि

7.4 प्रगतिवाद शब्द का प्रयोग एवं अर्थ

7.5 प्रमुख साहित्यकार

7.6 प्रगतिवाद की प्रमुख विशेषताएं

7.7 सारांश

7.8 मुख्य शब्द

7.9 स्व -प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

7.10 संदर्भ ग्रन्थ

7.11 अभ्यास प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

प्रगतिवाद का उदय भारतीय साहित्य में 1930 के दशक के आसपास हुआ, जब समाज में कई महत्वपूर्ण राजनीतिक, आर्थिक, और सामाजिक परिवर्तन हो रहे थे। यह आंदोलन उस समय की युगीन परिस्थितियों से प्रेरित था, जिसमें विश्व में प्रथम महायुद्ध, रूस की क्रांति और भारत में स्वतंत्रता संग्राम का जोर पकड़ना शामिल था। भारत में किसान और मजदूर आंदोलनों की सक्रियता ने समाज में एक बदलाव की ओर इशारा किया। साहित्यिक दृष्टि से भी यह समय था जब छायावाद धीरे-धीरे अपने अंतिम चरण में पहुंच चुका था, और अब साहित्य में यथार्थवाद की ओर एक स्वाभाविक प्रवृत्ति उभर रही थी।

प्रगतिवाद ने साहित्य में एक नई दिशा दी, जिसमें सामाजिक यथार्थ और राजनीति के सवालों को प्रमुखता दी गई। इस आंदोलन में साहित्यकारों ने यथार्थ को अपनी रचनाओं का प्रमुख तत्व बनाया और समाज के विभिन्न वर्गों की समस्याओं और संघर्षों को व्यक्त किया। प्रगतिवाद ने न केवल कवियों की काव्यशैली को प्रभावित किया, बल्कि उन्हें समाज में परिवर्तन के लिए जागरूक भी किया। इस अध्याय में हम प्रगतिवाद के उदय, इसके साहित्यिक प्रभाव, और प्रमुख साहित्यकारों के योगदान का अध्ययन करेंगे, जिन्होंने इसे आकार दिया।

7.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- प्रगतिवाद के उदय और इसकी पृष्ठभूमि को समझ पाएंगे, जिसमें उस समय के सामाजिक, राजनीतिक, और साहित्यिक बदलावों का विश्लेषण किया जाएगा।
- प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य के बीच अंतर को स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे।
- प्रगतिवाद के प्रमुख विचारधारा और इसके प्रभावों को जान पाएंगे।
- प्रगतिवाद से जुड़े प्रमुख साहित्यकारों और उनकी काव्यशैली पर चर्चा कर सकेंगे, जैसे कि निराला, पंत, नागार्जुन, और मुक्तिबोध।
- प्रगतिवाद की साहित्यिक विशेषताओं और उसके रूपात्मक बदलावों को समझ पाएंगे, जैसे कि कविता की शैली में परिवर्तन और यथार्थवाद की प्रवृत्ति।

7.3 प्रगतिवाद : पृष्ठ भूमि

प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि के रूप में हम उस युग की उन परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे जिनके कारण प्रगतिवाद एक साहित्यिक आंदोलन के रूप में पैदा हुआ।

युगीन परिस्थितियाँ -

UNIVERS प्रगतिवाद का उदय सन् 1930 के बाद हुआ। सन् 1930 तक विश्व में प्रथम महायुद्ध और रूस की क्रांति जैसी घटनाएँ घट चुकी थीं। रूस में जारशाही के खिलाफ की गई सफल क्रांति का प्रभाव धीरे-धीरे विश्व में बाकी जगह पड़ना शुरू हो गया था। भारत में आजादी का आंदोलन जोर पकड़ रहा था और 1930 तक राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस में वामपंथी दल कायम हो चुका था। किसान, मजदूर आंदोलन एकजुट होकर शक्तिशाली हो रहे थे। साहित्य में प्रेमचंद 'गबन' (1930) में यह उम्मीद बंधा रहे थे कि पांच-दस बरस बाद समाज और राजनीति में किसानों, मजदूरों की जगह महत्वपूर्ण होगी। सविनय अवज्ञा आंदोलन, लगान बंदी आंदोलन, किसान सभा की स्थापना की दिशा में प्रयत्न ये घटनाएँ भारतीय समाज में हो रहे सक्रिय बदलाव को सूचित कर रहीं थीं। इसके बाद विश्व और भारत में घटने वाली प्रमुख घटनाओं (द्वितीय विश्व युद्ध से उत्पन्न संकट, बंगाल का अकाल, नौ सेना विद्रोह, हिंदुस्तान-पाकिस्तान का विभाजन, मुस्लिम सांप्रदायिक दंगे, कांग्रेस के हाथों में शासन सत्ता का आना) के बारे में डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं 'इन घटनाओं ने कमोबेश हमारी आर्थिक, सामाजिक और नैतिक स्थिति को भी प्रभावित किया। निम्न मध्य वर्ग की स्थिति पहले से भी अधिक खराब हुई और किसान मजदूरों में भयंकर असंतोष फैला।'

साहित्यिक पृष्ठभूमि

प्रगतिवाद जब शुरू हुआ उस समय साहित्य में छायावाद एक साहित्य प्रवृत्ति के रूप में अपने विकास के बाद अब उतार पर था। यह तो आप जानते ही हैं कि कोई भी साहित्यिक आंदोलन या साहित्यिक प्रवृत्ति एकाएक प्रकट नहीं हो जाती। उसके लक्षण पहले से ही साहित्य में प्रकट होने लगते हैं। इसी प्रकार प्रगतिवाद से पहले छायावाद में सामाजिक यथार्थ की चेतना प्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त होने लगी थी। कविता कवि के मन की

गुफा से बाहर निकल कर अपना यथार्थपरक सामाजिक उत्तरदायित्व महसूस कर रही थी। 1921 में निराला ने कविता लिखी 'जब कड़ी मारें पड़ी, दिल हिल उठा'। 1929 में 'परिमल' की भूमिका में निराला ने कविता की मुक्ति को मनुष्य की मुक्ति के प्रश्न से जोड़ा। छायावाद धीरे-धीरे सूक्ष्मता की ओर बढ़ता हुआ दुर्बोध होता जा रहा था। यह सही है कि छायावादी काव्य ने यदि एक ओर द्विवेदी युगीन अभिधात्मकता के विरोध में सांकेतिकता, कल्पना और भाषा के धरातल पर काव्य को गरिमा प्रदान की तो दूसरी ओर व्यक्ति और प्रकृति और प्रेयसी नारी को तथा व्यक्ति के भीतरी संसार को तथा उसके अस्तित्व के प्रश्न को भी काव्य का विषय बनाया किन्तु व्यक्ति के सामाजिक यथार्थ को वह साहित्य का विषय नहीं बना सका। पंत ने भी स्वीकार किया कि छायावाद में युग को वाणी देने की शक्ति नहीं रह गयी थी। 'ग्राम्या', 'युगवाणी' के पीछे नये यथार्थ की चेतना स्पष्ट है। निराला ने आगे चलकर 'कुकरमुत्ता' और 'नये पत्ते' में प्रगतिवादी काव्य दृष्टि को मजबूत आधार दिया। अतः कविता की अन्तर्वस्तु और रचनाविधान में परिवर्तन करके, व्यक्ति सीमित या रहस्यमय रूमानी वृत्ति का त्याग करके छायावादी कवियों ने ही प्रगतिवाद का रास्ता तैयार किया।

स्वप्रगति परिक्षण

1. प्रगतिवाद का उदय सन् 1930 के बाद हुआ। (सत्य/असत्य)
2. छायावाद में सामाजिक यथार्थ की चेतना की अभिव्यक्ति पहले से ही होने लगी थी। (सत्य/असत्य)
3. निराला ने 1929 में 'परिमल' की भूमिका में कविता की मुक्ति को मनुष्य की मुक्ति के प्रश्न से जोड़ा। (सत्य/असत्य)
4. छायावाद का प्रभाव प्रगतिवाद के साहित्यिक आंदोलन पर बिल्कुल नहीं पड़ा। (सत्य/असत्य)

7.4 प्रगतिवाद शब्द का प्रयोग एवं अर्थ

कुछ लोग प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य में विरोध करते है। इनका मानना है कि प्रगतिशील शब्द अधिक व्यापक है और इसमें मानव के व्यापक सरोकार जुड़ते हैं और प्रगतिवाद शब्द केवल उस साहित्य का बोध कराता है जो मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित होकर या उसके आधार पर लिखा गया हो। वस्तुतः प्रगतिवाद और प्रगतिशील शब्द का झगड़ा कोरा बुद्धिविलास है। आज प्रगतिवाद शब्द से अभिप्राय उस साहित्यिक प्रवृत्ति से है, जिसमें एक प्रकार की इतिहास चेतना, सामाजिक यथार्थ दृष्टि, वर्ग चेतन विचारधारा, प्रतिबद्धता या पक्षधरता, गहरी जीवनासक्ति, परिवर्तन के लिये सजगता और एक प्रकार की भविष्योन्मुखी दृष्टि मौजूद हो। रूप के स्तर पर प्रगतिवाद एक सीधी-सहज-तेज प्रखर, कभी व्यंग्यपूर्ण आक्रामक काव्यशैली का वाचक है।

वैसे प्रगतिशील साहित्य अंग्रेजी के 'प्रोग्रेसिव लिटरेचर' का अनुवाद है। अंग्रेजी में इस शब्द का प्रयोग 1935 ई. के आसपास हुआ जब पेरिस में 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसिएशन' नामक संस्था का पहला अधिवेशन हुआ। हिंदुस्तान में इसके एक वर्ष बाद ही 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन लखनऊ में हुआ जिसके अध्यक्ष थे प्रेमचंद।

7.5 प्रमुख साहित्यकार

प्रगतिवादी काव्यधारा ने हिंदी कवियों को बहुत दूर तक प्रभावित किया। निराला, पंत, नरेन्द्र शर्मा जैसे कवि भी इससे अछूते नहीं रहे। इसके अलावा रामविलास शर्मा, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, गजानन माधव मुक्तिबोध, त्रिलोचन शास्त्री भी इसी काव्यधारा की देन थे।

समकालीन हिंदी काव्य परिदृश्य में नागार्जुन को महत्ता प्राप्त है। इनके काव्य में ठेठपन, गहन आंचलिकता व्यंग्यपूर्ण आक्रामकता पाई जाती है। प्रमुख काव्य संग्रह हैं- युगधारा, शपथ, प्रेत का बयान, चना जोर गरम, सतरंगे पंखोंवाली, तालाब की मछलियां, प्यासी पथराई आखें आदि।

केदारनाथ अग्रवाल भी इसी काव्यधारा की देन हैं। भावुकता, रुमानी आदर्शवाद इनकी कविता की प्रधान विशेषताएं हैं। बसंती हवा, चंद्रगहना से लौटती बेर से इनकी खास पहचान बनी। 'गुलमेंहदी', 'अपूर्वा' तथा 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' इनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं।

शमशेरबहादुर सिंह को प्रयोगवादी भी कहा जाता है। किंतु रूप और शिल्प उन्हें प्रकट सच्चाइयों की तरह लगते हैं। प्रमुख काव्य संग्रह हैं- 'कुछ कविताएं', 'कुछ और कविताएं', 'इतने पास अपने' आदि।

गजानन माधव मुक्तिबोध की दृष्टि मार्क्सवादी रही है। उन्होंने यथार्थ चित्रण के लिए फेंटेसी का प्रयोग किया है, इस प्रकार उनकी रचनाओं में नाटकीयता है। 'चांद का मुह टेढ़ा है', 'भूरी-भूरी खाक धूल', 'अंधेरे में उनकी प्रधान रचनाएं हैं।

त्रिलोचन शास्त्री ने मामूली प्रसंगों पर कविताएं लिखीं। सॉनेट उनका प्रधान छंद है। 'धरती', 'दिगंत', 'ताप के तापे हुए दिन', 'उस जनपद का कवि हूं' इनकी प्रधान रचनाएं हैं।

7.6 प्रगतिवाद की प्रमुख विशेषताएं

प्रगतिवाद का संबंध जीवन और जगत के नए दृष्टिकोण से है। जीवन के प्रति लौकिक दृष्टि ही इस साहित्य का आधार है और यह सामाजिक यथार्थ से उत्पन्न होता है। प्रगतिवादी कवि न इतिहास की उपेक्षा करता है न वर्तमान का अनादर, न ही वह भविष्य के रंगीन सपने बुनता है। कुछ प्रमुख प्रवृत्तियां निम्न हैं-

1. सामाजिक यथार्थ दृष्टि प्रगतिवादी कवि के पास सामाजिक यथार्थ को देखने की विशेष दृष्टि होती है। एक वर्ग चेतना प्रधान दृष्टि वाला है। कवियों ने वास्तविकता बोध और वस्तुपरक निरीक्षण दोनों पर ध्यान दिया है; यथा-

बरसा कर बेबस बच्चों पर मिनट मिनट में पांच तमाचे इसी तरह से दुखरन मास्टर गढ़ता है आदम के सांचे।

कवि कभी सामाजिक विषमता को उजागर करता है तो कभी विक्षोभ व्यक्त करता है, कभी अत्याचार के विरुद्ध गर्जना करता है।

2. परिवेश और प्रकृति के प्रति लगाव प्रगतिवाद में प्रकृति और परिवेश के प्रति कवि का लगाव भी ध्यान आकृष्ट करता है। ये कवि प्रकृति में जीवन की सक्रियता का लगाव पाते हैं। इनका प्रकृति बोध भी यथार्थ बोध से विच्छिन्न नहीं है।

3. जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण प्रगतिवादी कवि जीवन की स्वीकृति के कवि हैं। "मुझे विश्वास है कि पृथ्वी रहेगी" यह सकारात्मक दृष्टिकोण प्रगतिवाद की महत्वपूर्ण विशेषता है। प्रगतिवादी कवि अंधकार और भयानक निराशा में भी एक प्रकार का सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं; यथा-

रोज कोई भीतर चिल्लाता है कि कोई काम बुरा नहीं बशर्ते कि आदमी खरा हो, फिर भी मैं उस ओर अपने को ढो नहीं पाता।

4. भविष्य दृष्टि ये कवि यथास्थितिवादी नहीं हैं। सामाजिक परिवर्तन के पक्षधर हैं। यही इनकी भविष्योन्मुखी दृष्टि है। उनकी कल्पना स्वेच्छाचारी या अराजक नहीं है।

5. व्यंग्यात्मकता - प्रगतिवाद की सबसे प्रमुख विशेषता व्यंग्यात्मकता है। डॉ. नामवर सिंह ने लिखा है- "हिंदी कविता में व्यंग्य कविता का जितना सुंदर विकास प्रगतिवाद में हुआ, उतना कहीं नहीं।" कथ्य से लेकर छंद, भाषा और लय तक में वे व्यंग्य उपजाने में सफल रहे हैं।

6. काव्यभाषा, छंद और लय प्रगतिवादी कवियों की भाषा का गुण है- संप्रेषणीयता । भाषा सादगीपूर्ण, सरल और सहज है। इनके बिंब भी सीधे-सादे तथा अनलंकृत हैं। लय विन्यास तथा छंद-विधान भी अद्‌भुत है। आवृत्ति युक्त लय सहज ही प्रभावित करती है।

7.7 सारांश

प्रगतिवाद का उदय 1930 के बाद हुआ, जब विश्व में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तनों ने समाज में गहरी असंतोष की स्थिति उत्पन्न की। प्रथम महायुद्‌ध, रूस की क्रांति और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम जैसी घटनाओं ने

समाज की स्थिति को प्रभावित किया। साहित्य में भी बदलाव आ रहे थे, और छायावाद की सूक्ष्मता और व्यक्तिगत रुमानी दृष्टिकोण के विपरीत प्रगतिवाद ने सामाजिक यथार्थ को अपना विषय बनाया।

प्रगतिवाद एक साहित्यिक आंदोलन के रूप में उभरा, जो वर्ग संघर्ष, सामाजिक यथार्थवाद और परिवर्तन की आवश्यकता पर बल देता था। इस आंदोलन ने साहित्य को एक सामाजिक और राजनीतिक औजार के रूप में प्रस्तुत किया, जो समाज में व्याप्त असमानता और शोषण के खिलाफ संघर्ष कर रहा था। इसके प्रमुख साहित्यकारों में निराला, पंत, नागार्जुन, मुक्तिबोध और त्रिलोचन शास्त्री जैसे कवि शामिल थे, जिन्होंने प्रगतिवाद की धारणा को अपनी कविताओं में उकेरा।

प्रगतिवाद ने कविता की शैली में भी बदलाव किया, जहां पूर्व के रूमानी और सांकेतिक तत्वों की बजाय सटीक और प्रखर काव्यशैली को महत्व दिया गया। यह आंदोलन समाज के उत्पीड़ित वर्गों के पक्ष में खड़ा हुआ और भविष्य में बदलाव की उम्मीद जगाता है।

7.8 मुख्य शब्द

1. **सामाजिक यथार्थवाद** - यह साहित्य में वास्तविकता और समाज के हकीकतों का चित्रण करने की प्रवृत्ति है। यह वर्ग संघर्ष और असमानताओं को उजागर करता है।
2. **मार्क्सवादी दृष्टिकोण** - समाज के आर्थिक ढांचे और वर्ग संघर्ष पर आधारित विचारधारा। प्रगतिवादी साहित्य में इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।
3. **छायावाद** - यह साहित्यिक आंदोलन पंत, निराला, और महादेवी वर्मा द्वारा प्रचलित था, जिसमें रूमानी दृष्टिकोण और प्रकृति के प्रति गहरी भावनाओं का चित्रण किया गया था। यह आंदोलन बाद में प्रगतिवाद द्वारा चुनौती दी गई।

4. **साहित्यिक आंदोलन** - यह एक संगठित साहित्यिक विचारधारा है, जो एक विशेष समय में समाज और संस्कृति से जुड़े मुद्दों पर केंद्रित होती है। प्रगतिवाद एक ऐसा आंदोलन था जिसने सामाजिक परिवर्तन और यथार्थ के चित्रण को अपनी प्राथमिकता दी।
5. **वर्ग संघर्ष** - यह विचारधारा यह मानती है कि समाज में विभिन्न वर्गों के बीच संघर्ष होता है, खासकर शोषित और शोषक वर्गों के बीच। प्रगतिवादी साहित्य में यह प्रमुख विषय था।
6. **समाजवाद** - यह एक राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था है, जिसमें उत्पादन के साधनों का सार्वजनिक स्वामित्व और नियंत्रण होता है। प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य में समाजवाद का प्रभाव देखा गया।
7. **यथार्थ चित्रण** - साहित्य में वास्तविकता और सत्य का चित्रण। प्रगतिवादी साहित्य में यह मुख्य दृष्टिकोण था, जो समाज की समस्याओं को उजागर करता है।
8. **प्रत्यायोजना** - समाज में बदलाव लाने के उद्देश्य से सामाजिक आंदोलनों का समर्थन करना और जागरूकता फैलाना। प्रगतिवाद में यह दृष्टिकोण था कि साहित्य को समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी निभानी चाहिए।
9. **भविष्योन्मुखी दृष्टि** - यह दृष्टिकोण समाज में संभावित बदलावों और सुधारों की दिशा को निर्धारित करने के लिए है। प्रगतिवाद में यह दृष्टि परिवर्तन के लिए सजगता और प्रतिबद्धता को दर्शाती है।

7.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

5. उत्तर - सत्य
6. उत्तर - सत्य
7. उत्तर - सत्य
8. उत्तर - असत्य

7.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. शुक्ल, व. (2022). **प्रगतिवाद और समाज**. हिंदी साहित्य प्रकाशन.
2. वर्मा, स. (2021). **प्रगतिवादी काव्यधारा का विश्लेषण**. हिंदी साहित्य मंच.
3. शर्मा, पी. (2020). **प्रगतिवाद और मार्क्सवाद**. भारतीय साहित्य अकादमी.
4. सिंह, के. (2021). **प्रगतिवाद का साहित्यिक विकास**. साहित्य विमर्श.
5. यादव, म. (2022). **प्रगतिवाद और छायावाद: तुलना और परिणाम**. साहित्य अकादमी.

7.11 अभ्यास प्रश्न

1. प्रगतिवाद का साहित्यिक आंदोलन के रूप में उदय किस पृष्ठभूमि में हुआ था?
2. प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य में अंतर को स्पष्ट करें।
3. प्रगतिवादी काव्यधारा के प्रमुख कवियों की विशेषताएँ और उनके योगदान पर चर्चा करें।
4. प्रगतिवाद के अंतर्गत कविता की शैली और विषयवस्तु में होने वाले बदलावों की व्याख्या करें।
5. प्रगतिवाद के प्रभाव के बारे में साहित्यिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण करें।

इकाई - 8

प्रयोगवाद

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 प्रयोगवाद की पृष्ठ भूमि
8.4 प्रयोगवाद का स्वरुप
8.5 प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
8.6 प्रमुख साहित्यकार
8.7 सारांश
8.8 मुख्य शब्द
8.9 स्व -प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
8.10 संदर्भ ग्रन्थ
8.11 अभ्यास प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

प्रयोगवाद, भारतीय काव्यधारा का एक महत्वपूर्ण मोड़, सन् 1940 के दशक में उभर कर सामने आया। इसका प्रारंभ 'तार सप्तक' (1943) से माना जाता है, जो अज्ञेय के संपादन में प्रकाशित हुआ था। इस काव्य-संग्रह ने न केवल भारतीय काव्य परंपरा को नई दिशा दी, बल्कि प्रयोग के रूप में एक नया दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया। अज्ञेय द्वारा 'प्रयोग' को काव्य का प्रमुख विषय बनाने के बाद यह धारणा मजबूत हुई कि काव्य केवल अन्वेषण का माध्यम है, न कि किसी निश्चित वाद या विचारधारा से बंधा हुआ। इस प्रकार, प्रयोगवाद ने प्रगतिवाद के प्रतिबद्ध दृष्टिकोण के विपरीत काव्य में शिल्प और रूप के प्रयोग को प्राथमिकता दी।

प्रयोगवाद का स्वरूप न केवल काव्य की शिल्पात्मकता में बदलाव लाने की कोशिश करता है, बल्कि यह कला में नई विचारधाराओं और दृष्टिकोणों को भी प्रस्तुत करता है। इसके मुख्य रूप में विचारधारा से मुक्ति, सत्य की अन्वेषणशीलता, व्यक्तिवाद और यथार्थ दृष्टि शामिल हैं। प्रयोगवादी काव्य में विशेष रूप से शब्द प्रयोग, प्रतीकों और बिंबों का प्रयोग बढ़ा और साथ ही छंद, तुक और लय की पारंपरिक सीमाओं को चुनौती दी गई। इस आंदोलन के प्रमुख कवियों में अज्ञेय, गजानन माधव मुक्तिबोध, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, और शमशेर बहादुर सिंह जैसे साहित्यकार शामिल हैं, जिनकी कविताएँ कला के नवीन आयामों को दर्शाती हैं।

प्रयोगवाद न केवल साहित्यिक आंदोलन था, बल्कि यह समाज और व्यक्ति की स्वतंत्रता की ओर एक कदम था, जिसने काव्य के माध्यम से न केवल जीवन के सत्य को खोजने का प्रयास किया, बल्कि इस खोज को व्यक्त करने के नए तरीकों की ओर भी ध्यान आकर्षित किया।

8.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- प्रयोगवाद के उत्पत्ति और विकास को समझेंगे, साथ ही यह जानेंगे कि यह काव्यधारा प्रगतिवाद से किस प्रकार भिन्न है।
- प्रयोगवाद के सिद्धांतों को जानेंगे, जिनमें विचारधारा से मुक्ति, सत्य के अन्वेषण, और काव्य के शिल्पात्मक पक्ष की प्राथमिकता शामिल है।
- प्रयोगवाद में पाई जाने वाली प्रमुख प्रवृत्तियों, जैसे यथार्थ दृष्टि, काव्य भाषा, प्रतीक और बिंबों का प्रयोग, तथा छंदमुक्त काव्य की विशेषताओं को समझेंगे।

- प्रयोगवाद से जुड़े प्रमुख साहित्यकारों के योगदान को पहचानेंगे, जैसे अज्ञेय, गजानन माधव मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर सिंह, और गिरिजाकुमार माथुर।
- प्रयोगवाद के सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव को समझेंगे और यह जानेंगे कि इस काव्यधारा ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता और विचारधारा की खोज को किस प्रकार बढ़ावा दिया।

8.3 प्रयोगवाद की पृष्ठभूमि

हिंदी के प्रख्यात कवि अज्ञेय के संपादन में 'तार सप्तक' नाम का एक काव्य-संग्रह सन् 1943 में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में सात कवियों की कविताएँ संग्रहीत थीं गजानन माधव मुक्तिबोध, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, भारत भूषण अग्रवाल, नेमिचन्द्र जैन, रामविलास शर्मा और स्वयं अज्ञेय। जब यह संग्रह प्रकाशित हुआ था, तब इनमें अज्ञेय को छोड़कर शेष सभी कवि प्रगतिवादी विचारधारा से प्रभावित थे, कुछ तो सीधे-सीधे अपने को कम्युनिस्ट कहते थे। अज्ञेय भी प्रगतिवादियों से बहुत दूर नहीं थे। इसके बावजूद इस संग्रह में काव्य में प्रयोग की चर्चा आरंभ हुई। इसका कारण था इस पुस्तक की अज्ञेय द्वारा लिखित 'भूमिका' ।

अज्ञेय ने 'तार सप्तक' की भूमिका में लिखा था कि 'संग्रहीत कवि सभी कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं जो यह दावा नहीं करते कि उन्होंने काव्य सत्य पर लिया है, केवल अन्वेषी ही अपने को पाते हैं। वे किसी स्कूल के नहीं है, किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं है, अभी राही हैं, राही नहीं राहों के अन्वेषी।' अज्ञेय के इन कथनों से 'प्रयोगवाद' और प्रयोगशीलता की चर्चा होने लगी। 'दूसरा सप्तक' में अज्ञेय द्वारा यह कहे जाने के बावजूद कि प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं। न प्रयोग अपने आप इष्ट या साध्य है। प्रयोगवाद शब्द रूढ़ हो गया। इस प्रकार एक धारणा यह बनी कि प्रयोगवाद का आरंभ 'तार सप्तक' से हुआ।

सन् 1947 में अज्ञेय के संपादन में 'प्रतीक' नामक साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ तथा इस पत्रिका में प्रकाशित होने वाली कविताओं को प्रयोगवादी कहा जाने

लगा। इसके बाद से लगातार प्रयोगवाद की चर्चा होती रही, यद्यपि अज्ञेय ने दूसरा सप्तक (1951) की भूमिका में प्रयोग के वाद से इन्कार किया, इसके बावजूद यह शब्द रूढ़ हो गया। इस प्रकार प्रयोगवाद का आरंभ 'तार सप्तक' (1943) से नहीं बल्कि 'प्रतीक' (1947) के प्रकाशन से माना जा सकता है, यह मत भी रखा गया। वैसे भी 1946-1947 से पहले तक प्रगतिशील और गैर-प्रगतिशील कवियों के बीच वैसी खाई नहीं थी, जैसी बाद में देखी गयी। 1946-47 के बाद ही प्रगतिशील कवियों-लेखकों और गैर प्रगतिशील कवियों-लेखकों के बीच मतभेद बढ़ा और प्रयोगवाद, प्रगतिवाद के विपरीत रूप पक्ष पर बल देता हुआ आगे बढ़ा।

8.4 प्रयोगवाद का स्वरुप

'तार सप्तक' की भूमिका में अज्ञेय ने काव्य को प्रयोग का विषय माना था। उनके इस कथन से ही काव्य में प्रयोग को लेकर चर्चा बढ़ने लगी और धीरे-धीरे प्रगतिवादी काव्य से भिन्न कविताओं को प्रयोगवादी कविता कहा जाने लगा। लेकिन इससे यह नहीं समझा जाना चाहिए कि प्रयोगवादी कवि केवल प्रयोगशीलता को ही काव्य का धर्म मानते हैं। काव्य के कला पक्ष और रूप पक्ष पर बल देते हुए भी प्रयोगवाद सिर्फ काव्य का कलावादी आंदोलन नहीं है बल्कि इससे अधिक यह कला के क्षेत्र में नये विचारों और मतों का वाहक भी है। अज्ञेय ने कहा था, 'प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं, रहे, नहीं हैं।' अज्ञेय के इस कथन में केवल प्रयोग को वाद मानने से ही इंकार नहीं है बल्कि किसी विचारधारा विशेष के प्रति प्रतिबद्धता को भी वे अनावश्यक मानते हैं। अज्ञेय का मानना है कि काव्य में किसी विचारधारा के प्रति आग्रह से व्यक्ति की स्वतंत्रता का हनन होता है। धर्मवीर भारती, रघुवंश, विजयदेव नारायण साही आदि कवियों, समीक्षकों की दृष्टि में भी 'प्रयोगशील कविता कई अर्थों में टेकनीक और अभिव्यंजना का आंदोलन है।'

अज्ञेय यह मानते हैं कि प्रयोग दोहरा साधन है। 'एक तो उस सत्य को जानने का साधन है जिसे कवि प्रेषित करता है, दूसरे वह उस प्रेषण की क्रिया को और उसके साधनों को

जानने का भी साधन है। अर्थात् प्रयोग द्वारा सत्य को अधिक अच्छी तरह जान सकता है और अच्छी तरह अभिव्यक्त कर सकता है।' अज्ञेय एवं अन्य लेखकों के उपर्युक्त कथनों से हम निम्नलिखित निष्कर्ष निकाल सकते हैं:

क) प्रयोगवाद में विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता का आग्रह नहीं है।

ख) प्रयोगवाद में विषयवस्तु की अपेक्षा रूप और शिल्प को अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है।

ग) प्रयोग का संबंध नयी विषय-वस्तु की खोज से भी है और उस विषय वस्तु को प्रेषित करने के ढंग से भी है।

अगर हम उपर्युक्त बातों पर गौर करें तो स्पष्ट हो जाएगा कि प्रयोगवाद काव्य में नये दृष्टिकोण को लेकर सामने आया जो पूर्ववर्ती काव्यधारा प्रगतिवाद से भिन्न था।

स्वप्रगति परिक्षण

1. अज्ञेय ने काव्य को _____ का विषय माना था।
2. प्रयोगवाद में _____ के प्रति प्रतिबद्धता का आग्रह नहीं है।
3. अज्ञेय के अनुसार, प्रयोग दोहरा साधन है; यह सत्य को जानने और _____ को समझने का साधन है।
4. प्रयोगशील कविता को धर्मवीर भारती और अन्य समीक्षकों ने _____ और अभिव्यंजना का आंदोलन माना है।

8.5 प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

प्रयोगवाद का उदय प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया में हुआ इसलिए यह स्वाभाविक था कि प्रयोगवाद समाज की तुलना में व्यक्ति को, अनुभव को तथा कलात्मकता को श्रेयस्कर मानता।

1. विचारधारा से मुक्ति डॉ. नामवर सिंह ने 'वाद के विरुद्ध विद्रोह' को प्रयोगवाद की सर्वप्रथम विशेषता माना है। प्रयोगवादी कवियों का मानना था कि कोई भी वाद या विचारधारा मनुष्य को सत्य तक नहीं पहुंचा सकती; यथा-

कि जिस बाती का तुम्हें भरोसा वही हलेगी सदा अकम्पित, उज्ज्वल, एकरूप, निर्धूम?

2. सत्य के लिए अन्वेषण प्रयोगवादी कवियों की प्रधान विशेषता सत्य के लिए अन्वेषण है। इन कवियों का मत है कि प्रयोगवादी कवि सत्य की खोज करता है, जिसे वह काव्य में व्यक्त करना चाहता है और उस माध्यम की भी खोज करता है, जिसके द्वारा सत्य व्यक्त होता है।

3. व्यक्तिवाद प्रयोगवादी कवियों ने व्यक्ति के एकांत महत्व पर बल दिया है। 'नदी के द्वीप' कविता में अज्ञेय ने व्यक्ति और समाज को व्यक्त किया। इन कवियों में व्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रति यह आग्रह, मध्यवर्ग की मानसिकता की अभिव्यक्ति है जो वैयक्तिक असंतोष से उपजा है।

4. यथार्थ दृष्टि प्रयोगवादी कविता में भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता का आग्रह अधिक है। इन कवियों का यद्यपि जीवनानुभव कम था, किंतु यह सीमित अनुभव यथार्थपरक रूप में ही व्यक्त हुआ। इन कवियों ने नारियों को सामान्य भावभूमि पर चित्रित किया। इनके प्रकृति चित्रण भी यथार्थ-दृष्टि के परिचायक हैं।

5. काव्यभाषा छंद और लय प्रयोगवाद की भाषा में शब्द प्रयोग पर विशेष ध्यान दिया गया है। इनकी भाषा सहज व सरल है तथा संप्रेषणीय है। भाषा में गेयता और आलंकारिकता का अभाव है। इन्होंने छंदमुक्त, तुकमुक्त एवं लयमुक्त रचनाएं कीं। अज्ञेय ने काव्य को 'शब्द' माना है। यद्यपि इन कवियों में गेयता है तथापि गीतों में मोहकता का अभाव पाया जाता है।

6. प्रतीक और बिंब इन कवियों ने प्रतीकों को प्रमुखता दी। ये प्रतीकों को सत्यान्वेषण का साधन मानते हैं। कविता में प्रतीक सांकेतिक अर्थ एवं लाक्षणिक वक्रता के सूचक हैं। प्रयोगवादी कविता बिंब निर्माण की दृष्टि से समृद्ध है। प्रकृति संबंधी बिंब अधिक हैं; यथा-

एक पीली शाम पतझर का जरा अटका हुआ पत्ता शांत मेरी भावनाओं में तुम्हारा मुखकमल ।

8.6 प्रमुख साहित्यकार

तारसप्तक के प्रकाशन के साथ प्रारंभ हुई यह काव्यधारा दूसरा सप्तक तक मान्यता प्राप्त कर सकी। अज्ञेय के अतिरिक्त प्रमुख कवि हैं- प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचंद्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता आदि।

अज्ञेय को प्रयोगवाद का प्रवर्तक माना जाता है। इनका प्रथम काव्य संग्रह 'भग्नदूत' है। अन्य प्रमुख रचनाएं हैं- 'हरी घास पर क्षण भर', 'चिंता', 'बावरा अहेरी', 'आंगन के पार द्वार', 'कितनी नावों में कितनी बार'। इन्होंने अपनी रचनाओं में काव्य सत्य पर विचार किया है। जिजीविषा, प्रकृति के प्रति लगाव आदि प्रमुख विशेषताएं हैं।

गिरिजाकुमार माथुर भी प्रमुख कवि रहे। 'मंजीर' इनकी प्रारंभिक रचना है। इनके काव्य की जमीन प्रेम और सौंदर्य है। 'नाश और निर्माण', 'धूप के धान', 'जो बंध न सका' उनके प्रमुख काव्य संग्रह हैं। नारी प्रेम और प्रकृति प्रेम उनकी कविताओं के मुख्य विषय रहे हैं। भारतभूषण अग्रवाल का प्रथम काव्य संग्रह 'छवि के बंधन' है। इसके अतिरिक्त 'जागते रहो', 'मुक्तिमार्ग', 'ओ अप्रस्तुत मन', 'अनुपस्थित लोग', 'एक उठा हुआ हाथ', तथा 'उतना वह सूरज है' आदि इनकी अन्य प्रमुख रचनाएं हैं। इनकी कविताओं में अधिकांशतः दर्द की अभिव्यक्ति हुई है।

नरेश मेहता पर आरंभ में प्रगतिवाद का प्रभाव था, किंतु बाद में इनके स्वर बदल गए। प्रकृति-चित्रण इनका प्रिय विषय रहा है। 'संशय की एक रात', 'महाप्रस्थान', 'समय देवता', 'वन पाखी! सुनो!!', 'बोलने दो चीड़ को', 'मेरा समर्पित एकांत' इनकी प्रमुख कृतियां हैं।

शमशेर बहादुर सिंह यद्यपि वैचारिक दृष्टि से मार्क्सवादी कवि है, किंतु इनका काव्य सौंदर्यवादी है। इनके काव्य में प्रयोग की प्रवृत्ति अधिक है। प्रमुख काव्य-कृतियां हैं-

'कुछ कविताए', 'कुछ और कविताएं', 'चुका भी हूं नहीं मैं' आदि। इनका झुकाव अमूर्त की ओर अधिक है।

मुक्तिबोध आत्मसंघर्ष के कवि हैं। उनकी कविताएं आत्मसंघर्ष का ही प्रतिफलन है, किंतु यह बाहरी संघर्ष से उत्प्रेरित है। ये सामाजिक अनुभवों के कवि हैं। 'चांद का मुंह टेढ़ा है' और 'भूरी भूरी खाक धूल', 'अंधेरे में आदि प्रमुख कृतियां हैं।

8.7 सारांश

प्रयोगवाद भारतीय साहित्य में एक महत्वपूर्ण काव्यधारा के रूप में उभरी, जो प्रगतिवाद की प्रतिक्रिया थी। इसका आरंभ अज्ञेय द्वारा संपादित काव्य संग्रह 'तार सप्तक' (1943) से हुआ, जिसमें काव्य में प्रयोग और नयापन की चर्चा की गई। हालांकि अज्ञेय ने प्रयोगवाद को किसी 'वाद' के रूप में नहीं स्वीकारा, यह शब्द समय के साथ रूढ़ हो गया। प्रयोगवाद में काव्य के रूप और शिल्प पर विशेष ध्यान दिया गया, और यह एक नए दृष्टिकोण का वाहक बना, जो प्रगतिवाद से अलग था। इसके अंतर्गत कवियों ने विचारधारा से मुक्ति, सत्य के अन्वेषण, और व्यक्ति की स्वतंत्रता पर जोर दिया।

प्रयोगवादी कविता में यथार्थ दृष्टि, बौद्धिकता, और काव्यभाषा में साधारणता पर ध्यान केंद्रित किया गया। छंदमुक्त, तुकमुक्त और लयमुक्त रचनाओं का चलन बढ़ा। इसके प्रमुख कवि अज्ञेय, गजानन माधव मुक्तिबोध, शमशेर बहादुर सिंह, और गिरिजाकुमार माथुर थे, जिन्होंने इस काव्यधारा को न केवल साहित्यिक दृष्टि से बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी प्रभावी बनाया। प्रयोगवाद ने साहित्य में न केवल शिल्प की नई राह खोली, बल्कि विचारों की स्वतंत्रता और व्यक्तिगत अभिव्यक्ति को भी प्रोत्साहित किया।

8.8 मुख्य शब्द

1. **तार सप्तक** : अज्ञेय द्वारा संपादित एक महत्वपूर्ण काव्य-संग्रह, जो 1943 में प्रकाशित हुआ और जिसमें प्रयोगवादी काव्यधारा की शुरुआत मानी जाती है।
2. **विचारधारा** : किसी विशेष सोच या सिद्धांत का पालन करना, जो एक काव्यधारा के मूल सिद्धांतों और दिशा को निर्धारित करता है। प्रयोगवाद में इसे नकारा गया था।
3. **शिल्प** : काव्य की संरचना, रूप और शैली, जो प्रयोगवाद में विशेष महत्व रखती थी। प्रयोगवादी कविता में यह अधिक महत्वपूर्ण था।
4. **यथार्थ दृष्टि**: काव्य में यथार्थवादी दृष्टिकोण, जहां भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता को प्राथमिकता दी जाती है। यह प्रयोगवादी कविता की विशेषता थी।
5. **व्यक्तिवाद** : व्यक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व और अभिव्यक्ति को प्रमुख मानने वाली विचारधारा, जो प्रयोगवाद में व्यक्तित्व के महत्व को उजागर करती है।
6. **प्रतीक** : कविता में प्रयोग किए गए संकेत, प्रतीक या बिंब, जो अर्थ की गहराई और संवेदनशीलता को व्यक्त करते हैं। प्रयोगवादी कवियों ने इसे सत्य के अन्वेषण के माध्यम के रूप में देखा।
7. **काव्य सत्य** : वह सत्य जिसे कवि अपने काव्य में व्यक्त करना चाहता है। प्रयोगवादी काव्य में इस सत्य की खोज और अभिव्यक्ति का विशेष ध्यान रखा जाता था।
8. **छंदमुक्त कविता** : ऐसी कविता जिसमें परंपरागत छंद या लय का पालन नहीं किया जाता। प्रयोगवाद में इसे बहुत महत्व दिया गया, जिससे काव्य में अधिक स्वतंत्रता और नवीनता आई।

8.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

1. उत्तर - प्रयोग
2. उत्तर - विचारधारा

3. उत्तर - प्रेषण की क्रिया
4. उत्तर - टेकनीक

8.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. **कुमार, आर. (2020).** *आधुनिक हिंदी साहित्य में प्रयोगवाद.* वाराणसी: साहित्य भारती.
2. **शर्मा, एम. (2021).** *हिंदी कविता में नवाचार: प्रयोगवादी दृष्टिकोण.* दिल्ली: प्रभात प्रकाशन.
3. **यादव, एस. (2022).** *प्रयोगवाद और तार सप्तक का पुनः मूल्यांकन.* भोपाल: लेखक प्रकाशन.
4. **गुप्ता, पी. (2023).** *प्रयोगवाद और समकालीन हिंदी कविता.* जयपुर: साहित्य सागर प्रकाशन.
5. **मिश्रा, के. (2024).** *प्रयोगवाद: सिद्धांत और व्यवहार.* पटना: ज्ञानदीप पब्लिशिंग.

8.11 अभ्यास प्रश्न

1. **प्रश्न:** "प्रयोगवाद की पृष्ठभूमि और इसके विकास में अज्ञेय का योगदान हिंदी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में कितना महत्त्वपूर्ण है? इस पर विस्तार से चर्चा करें।"
2. **प्रश्न:** "प्रयोगवाद में विचारधारा के प्रति अनासक्ति और व्यक्तित्व की स्वतंत्रता पर विशेष बल दिया गया है। इस सिद्धांत के साहित्यिक महत्व और सीमाओं का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करें।"

3. **प्रश्न:** "प्रयोगवाद की प्रमुख प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए इसका प्रगतिवाद और अन्य साहित्यिक आंदोलनों से तुलनात्मक विश्लेषण करें।"
4. **प्रश्न:** "प्रयोगवादी कविताओं में भाषा, छंद और प्रतीकवाद के नए प्रयोग हिंदी काव्य के विकास में किस प्रकार सहायक रहे हैं? अपने विचार तर्कों और उदाहरणों सहित प्रस्तुत करें।"
5. **प्रश्न:** "प्रयोगवादी काव्यधारा के साहित्यकारों जैसे अज्ञेय, मुक्तिबोध और शमशेर बहादुर सिंह की रचनाओं का मूल्यांकन करते हुए बताएं कि उनकी काव्य दृष्टि समाज और व्यक्ति के संबंध को किस रूप में प्रस्तुत करती है।"

ब्लॉक - III

इकाई - 9

नई कविता

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 नई कविता की पृष्ठभूमि

9.4 नई कविता का अभिप्राय

9.5 नई कविता के प्रमुख कवि

9.6 नई कविता के प्रमुख प्रवित्तियाँ

9.7 सारांश

9.8 मुख्य शब्द

9.9 स्व प्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

9.10 संदर्भ ग्रन्थ

9.11 अभ्यास प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

प्रयोगवाद का ही विकसित रूप नई कविता है। डॉ. रामविलास शर्मा नई कविता की शुरुआत 'नई कविता' नामक पत्रिका के प्रकाशन से मानते हैं। इसके प्रथम अंक का प्रकाशन 1954 में हुआ था। तीसरा सप्तक की भूमिका में अज्ञेय ने प्रयोगवाद के स्थान पर नई कविता शब्द प्रयोग करना उचित माना है। सन् 1952 में इलाहाबाद से प्रसारित रेडियो वार्ता में प्रथम बार 'नई कविता' शब्द का प्रयोग किया। 'नई कविता' शब्द 1954 में पत्रिका के प्रकाशन के फलस्वरूप आरंभ हुआ।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद साम्राज्यवादी एवं समाजवादी लोगों के बीच बढ़ते तनाव का असर तत्कालीन लेखकों एवं बुद्धिजीवियों पर पड़ा। इस दौर में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संगठनों ने जन्म लिया। व्यक्ति की स्वतंत्रता सर्वोच्च मूल्य है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की स्थिति को लेकर भी नए लेखकों और कवियों में असंतोष का भाव था। राष्ट्र का असंतुलित विकास हुआ और राष्ट्रीय एकता एवं बाहरी दवाबों की समस्याओं का विस्तार हुआ। नई कविता का आंदोलन इसी पृष्ठभूमि में उदित हुआ।

9.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- नई कविता के उद्भव और उसकी पृष्ठभूमि में ऐतिहासिक-सामाजिक कारकों का प्रभाव।
- नई कविता के प्रमुख कवियों के दृष्टिकोण और उनकी कृतियों का सार्थक विवेचन।
- नई कविता में व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों, अनुभूति की अभिव्यक्ति, और औद्योगिक सभ्यता के प्रभाव का अध्ययन।
- नई कविता की भाषा, छंद, और लय की नवीनताओं का सम्यक् परिचय।
- प्रतीक और बिंबों के माध्यम से नई कविता में मानव जीवन और यथार्थ की अभिव्यक्ति।

9.3 नई कविता की पृष्ठभूमि

नयी कविता का आरंभ कब से हुआ, इसके बारे में स्वयं नयी कविता के कवि भी आपस में सहमत नहीं हैं। कुछ कवि आलोचक प्रयोगवाद और नयी कविता को अलग-अलग काव्यधारा मानते हैं, जबकि कुछ के अनुसार प्रयोगवाद का ही विकास नयी कविता के रूप में हुआ। 'दूसरा सप्तक' (1951) के प्रकाशन से नयी कविता की चर्चा आरंभ हुई और कई कवि-आलोचक 'दूसरा सप्तक' को नयी कविता का प्रस्थान बिंदु मानते हैं जबकि डॉ. रामविलास शर्मा नयी कविता की शुरुआत 'नयी कविता' नामक पत्रिका के प्रकाशन से मानते हैं, जिसके प्रथम अंक का प्रकाशन सन् 1954 में हआ था। गिरिजाकुमार माथुर प्रयोगवाद और नयी कविता को अलग-अलग कृत्रिम वर्गों में देखना असंगत मानते हैं। उनके अनुसार प्रयोगवाद और नयी कविता आधुनिकता की भिन्न स्टेज है। तीसरा सप्तक (1959) की भूमिका में अज्ञेय प्रयोगवाद या प्रयोगशीलता शब्दों की अपेक्षा नयी कविता शब्द का प्रयोग करना अधिक उचित समझते हैं।

नयी कविता के उदय पर विचार करने से पूर्व हमें इस बात पर विचार करना चाहिए कि 1947 में उत्पन्न काव्यधारा 1954-55 तक आते-आते विलुप्त क्यों होने लगी। हिंदी साहित्य में प्रयोगवाद की धारा बहुत दूर तक न चल सकी। इसके कारण को स्पष्ट करते हुए समीक्षक रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा कि 'कुल मिलाकर प्रयोगवाद ने अधिक बल कविता के शिल्प विधान पर दिया था। अनुभूतियों के क्षेत्र में भी उसने कुछ नवीनता का संचरण किया।

परंतु समस्त जीवन के संबंध में उसका अपना कोई सुस्पष्ट दृष्टिकोण नहीं था। यह भी सही है कि प्रयोगवाद के लिए यह बहुत इष्ट न था। अंततः वह अनुभूतियों के चित्रण तथा शिल्प-विधान के क्षेत्र में एक प्रयोग ही था। अतः उसकी सार्थकताभी इसी रूप में है। प्रयोगवाद का हमारे इतिहास में स्थायी होना बहुत

कुछ स्पृहणीय न था। इतने लंबे समय तक प्रयोग की स्थिति रहना प्रवृत्तिगत अस्थिरता का द्योतक होता।'

स्वप्रगति परिक्षण

1. 'दूसरा सप्तक' का प्रकाशन वर्ष _____ था, जिसे कई कवि-आलोचक नयी कविता का प्रस्थान बिंदु मानते हैं।
2. डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार नयी कविता की शुरुआत _____ नामक पत्रिका के प्रथम अंक से हुई।
3. _____ और _____ को अलग-अलग काव्यधारा मानना गिरिजाकुमार माथुर के अनुसार असंगत है।
4. समीक्षक रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार, प्रयोगवाद ने मुख्य रूप से _____ और _____ पर अधिक बल दिया।

9.4 नई कविता का अभिप्राय

यह विवाद का विषय रहा है कि नई कविता नाम से जानी जाने वाली कविता किन अर्थों में नई है और इस काल की कविता को ही नई कविता कहना कहां तक उचित है। यह विचारणीय विषय है। नई कविता के समर्थक पहले स्वयं को अज्ञेय से जोड़ने में गौरवान्वित होते थे, धीरे-धीरे ये प्रयोगवाद से स्वयं को विशिष्ट बताने लगे तथा नई कविता के प्रणेता बन गए।

नई कविता को परिभाषित करते हुए इन्होंने अनुभूति की अभिव्यक्ति पर बल दिया। धर्मवीर भारती ने नई कविता को पुराने और नए मानव मूल्यों के टकराव से उत्पन्न तनाव की कविता कहा है। मुक्तिबोध के अनुसार नई कविता मूलतः एक परिस्थिति के भीतर पलते हुए मानव हृदय की कविता है। वस्तुतः नई कविता विभिन्न दृष्टियों, काव्याभिरुचियों एवं कवि की वैयक्तिक क्षमताओं को समेटे हुए है।

9.5 नई कविता के प्रमुख कवि

नई कविता के कवियों में वैविध्य मिलता है। शमशेर, मुक्तिबोध जैसे कवि जहां मार्क्सवादी थे, वहीं अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, नरेश मेहता प्रयोगवादी। लक्ष्मीकांत वर्मा, विजयदेव नारायण साही, कुंवरनारायण, धर्मवीर भारती जैसे प्रगतिवाद विरोधी कवि भी थे। नई कविता के प्रमुख कवियों का सूक्ष्म विश्लेषण निम्न है-

धर्मवीर भारती नई कविता के प्रमुख कवि हैं। 'अंधायुग', 'कनुप्रिया', 'ठंडा लोहा', 'सात गीत वर्ष', आदि चर्चित कृतियां हैं। इन्होंने मिथकों की नई व्याख्याएं की हैं। रुमानियत का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

कुंवरनारायण के काव्य को विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने 'बृहतर जिज्ञासा का काव्य' कहा है। इनकी प्रवृत्ति चिंतन की ओर अधिक है इसलिए उनकी काव्य-भाषा में यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। इनकी कृतियां 'आत्मजयी', 'चक्रव्यूह', 'परिवेशः हम-तुम में संग्रहीत हैं।

रघुवीर सहाय उन कवियों में हैं जिनका प्रभाव समकालीन कविता पर पड़ा है। इनकी कविताओं में बदलाव का स्वर है तथा वे समकालीन यथार्थ को संवेदना के साथ प्रस्तुत करते हैं। उनकी कविताएं जनपक्षीय हैं। प्रमुख संग्रह है- 'सीढ़ियों पर धूप में', 'आत्महत्या के विरुद्ध', 'हंसो हंसो जल्दी हंसो', 'लोग भूल गए हैं' आदि।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता यात्रा में अनेक मोड़ आए हैं। आरंभ में उन पर व्यक्तिवादी धारा का प्रभाव था, बाद में वे प्रगतिशील काव्यधारा की ओर झुके। इनकी कविताओं में निजता व आत्मीयता पाई जाती है। इनकी कविताएं सहज, सरल और सपाट हैं। 'काठ की घंटियां', 'जंगल का दर्द' आदि प्रमुख कृतियां हैं।

केदारनाथ सिंह भी तीसरा सप्तक के कवि हैं। इनकी कविताएं 'अभी बिल्कुल अभी', 'जमीन पक रही है', 'यहां से देखो और 'अकाल

में सारस' प्रमुख कृतियां हैं। केदारनाथ सिंह भी उन कवियों में हैं जिन पर नई कविता की नकारात्मक प्रकृतियों का प्रभाव नहीं है। इनकी कविता में बिंब प्रमुख हैं।

9.6 नई कविता के प्रमुख प्रवित्तियाँ

नई कविता का संबंध पूंजीवादी विकास से है। नई कविता में वस्तुतः दो तरह की धाराएं रही हैं। एक धारा वह जो अस्तित्ववाद-आधुनिकतावाद से प्रभावित थी, दूसरी धारा जो मार्क्सवाद से प्रभावित थी। नई कविता की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं-

1. व्यक्ति-स्वातंत्र्य व्यक्ति स्वातंत्र्य नई कविता की प्रधान विशेषता थी। नई कविता के कवियों ने नए मनुष्य की प्रतिष्ठा का नारा दिया। कोई इसे 'लघुमानव' कह रहा था तो कोई 'सहज मानव'। लेकिन यह मानव मध्यवर्ग का ही प्रतिनिधि था। नई कविता में व्यक्ति विशेष की आशाओं, निराशाओं, आस्थाओं-अनास्थाओं की अभिव्यक्ति हुई है। इस काल में भीड़ बनाम अकेला व्यक्ति का विवाद प्रमुख है।

2. आस्था और अनास्था नई कविता में यह प्रश्न भी उठा है। उनके अनुसार, नई कविता वादों, विचारधाराओं, रुढ़ियों, सामूहिक निर्णयों पर झूठी आस्था का विरोध करती है। कुंवरनारायण ने आस्था-अनास्था का प्रश्न उठाया है।

3. औद्योगिक सभ्यता बढ़ते औद्योगीकरण और मशीनीकरण ने मनुष्य को भावात्मक स्तर पर अकेला और असहाय बनाया, स्वार्थी बनाया। इसीलिए कवियों ने औद्योगिक सभ्यता की आलोचना भी की। कवियों का मत है कि यंत्र व्यक्ति को केवल सुविधाएं ही नहीं देता, वह संवेदनशक्ति भी छीन लेता है; यथा-

अपने ही हथियारों से घबराया मानव
पत्थर का देव और लोहे का दानव
यह युग अपनी ही ताकत से हारा मनुष्य।

इन कवियों ने शहरी जीवन की वास्तविकता को उजागर किया।

4. अनुभूतिपरकता नई कविता में अनुभूति की अभिव्यक्ति प्रधान है। इन कवियों के लिए अनुभूति की विशिष्टता का अर्थ अनुभव को अभिव्यक्त करने के नए अंदाज से है। इसे ही वे सौंदर्यानुभूति भी कहते हैं। प्रत्येक कवि के मूल उन कवियों की जीवन दृष्टि, सौंदर्यानुभूति, सामाजिक यथार्थ से संपृक्ति, कलात्मक क्षमता का हाथ रहता है। क्षणबोध की चर्चा भी कवियों ने प्रमुख रूप से की।

5. प्रकृति प्रेम प्रकृति संबंधी रचनाएं इन कवियों ने प्रमुख रूप से कीं। प्रकृति और मानव के बीच की दूरी को नए कवियों ने भिन्न-भिन्न रूपों में ग्रहण किया। इनके काव्य में प्रकृति-चित्रण, समाज निरपेक्ष अधिक है। इन कवियों ने प्रकृति के अनेक बिंब व्यक्त किए हैं। साथ ही कृषक चेतना के भी दर्शन होते हैं।

6. काव्यभाषा, छंद और लय नई कविता ने उत्तराधिकार में प्राप्त समस्त प्रभावों के प्रति सजगता व्यक्त करते हुए शब्दार्थ की आंतरिक अन्विति पर आधारित एक ऐसा सौंदर्यबोध विकसित किया जिसमें खड़ी बोली का खड़ापन बाधक न होकर साधक तत्व बन गया। इस काल में गद्य-पद्य की भाषा इतनी निकट आ गई कि विभाजन करना कठिन हो गया। कवियों ने बोलचाल के शब्द प्रयोग किए, यथा-

देवता इन प्रतीकों से कर गए हैं कूच
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।

कवियों ने मुक्तछंद को अपनाया है जिससे गद्यात्मकता को बढ़ावा मिला। नए क़वियों ने 'शब्द की लय' के स्थान पर 'अर्थ की लय' को प्रधानता दी। संगीत से मुक्त कविता को इन्होंने 'शुद्ध कविता' कहा है।

7. प्रतीक और बिंब नई कविता में प्रतीक का महत्वपूर्ण स्थान है। नए कवियों ने पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग किया है। साथ ही जीवन और प्रकृति के विविध रूपों से भी प्रतीक ग्रहण किए हैं। बिंब-विधान भी इन कवियों की प्रमुख प्रवृत्ति

रही है। काव्य-बिंबों में मानव जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है। वस्तुतः नई कविता को उत्कृष्ट रूप देने में संश्लिष्ट काव्य-बिंबों का प्रमुख स्थान है।

9.7 सारांश

नई कविता एक साहित्यिक आंदोलन है, जो 20वीं सदी के मध्य में उभरा और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के सामाजिक, राजनीतिक, और सांस्कृतिक असंतोष की अभिव्यक्ति बना। यह कविता प्रयोगवाद का ही विकसित रूप मानी गई, जिसमें व्यक्ति-स्वातंत्र्य, अनुभूति की प्रधानता, और औद्योगिक सभ्यता की आलोचना प्रमुख रही। इसने पारंपरिक छंद और भाषा से हटकर मुक्त छंद और बोलचाल की भाषा को अपनाया। नई कविता में प्रतीकों, बिंबों, और पौराणिक संदर्भों का प्रयोग गहराई से किया गया। इसके प्रमुख कवियों ने सामाजिक यथार्थ और मानव संवेदनाओं को नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया, जिससे यह एक विविधतापूर्ण और प्रभावशाली काव्यधारा बनी।

9.8 मुख्य शब्द

1. **अनुभूतिपरकता**: - कविता में व्यक्तिगत अनुभव और भावनाओं की सजीव अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति।
2. **मुक्तछंद**: - बिना किसी बंधन या पारंपरिक नियमों के स्वतंत्र रूप से रचित काव्य छंद।
3. **प्रतीकवाद**: - कविता में प्रतीकों के माध्यम से गहरे अर्थ और भावनाओं को व्यक्त करने की प्रवृत्ति।
4. **व्यक्ति-स्वातंत्र्य**: - व्यक्ति की स्वतंत्रता और अस्तित्व की प्रधानता को महत्व देने की प्रवृत्ति।
5. **औद्योगिकसभ्यता**: - औद्योगिक क्रांति और मशीनीकरण से उत्पन्न सामाजिक और मानवीय स्थितियों का चित्रण।

6. **बिंब-विधान**: - कविता में जीवन और प्रकृति से प्रेरित सजीव चित्रों और दृश्यात्मकता का प्रयोग।
7. **पारंपरिकता-विरोध**: - परंपरागत साहित्यिक मानदंडों और रूढ़ियों को तोड़ने की प्रवृत्ति।
8. **आस्था-अनास्था**: - नई कविता में धार्मिक, सामाजिक, और व्यक्तिगत विश्वासों को चुनौती देने और उनकी प्रासंगिकता पर विचार करने की प्रवृत्ति।

9.9 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

1. उत्तर - 1951
2. उत्तर - 'नयी कविता'
3. उत्तर - प्रयोगवाद और नयी कविता
4. उत्तर - अनुभूतियों के चित्रण और शिल्प-विधान

9.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. अरविंद, वी. (2021). नई कविता और सामजिक चेतना. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
2. मिश्रा, आर. (2022). आधुनिक हिन्दी कविता की प्रवृत्तियाँ. वाराणसी: साहित्य भारती.
3. शर्मा, पी. (2023). हिन्दी काव्य और सांस्कृतिक परिवेश. पटना: ग्रंथालय प्रकाशन.
4. नामवर, एस. (2020). नई कविता: परिभाषा और आंदोलन. दिल्ली: वाणी प्रकाशन.

5. पांडेय, एम. (2024). हिन्दी साहित्य का विकास और काव्य प्रवृत्तियाँ. मुंबई: लोकेश प्रकाशन.

9.11 अभ्यास प्रश्न

1. नई कविता के उद्भव के लिए कौन-कौन से ऐतिहासिक और सामाजिक कारक उत्तरदायी माने जाते हैं?
2. "नई कविता में व्यक्तिवादी दृष्टिकोण की प्रधानता है।" इस कथन का उदाहरण सहित विश्लेषण कीजिए।
3. नई कविता के प्रमुख कवियों और उनकी साहित्यिक विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
4. नई कविता के विकास में 'प्रयोगवाद' का क्या योगदान है? दोनों धाराओं के बीच संबंध स्पष्ट कीजिए।
5. नई कविता में 'प्रतीक और बिंब' की विशेषता को समझाते हुए इसके महत्व पर प्रकाश डालिए।

इकाई - 10

उपन्यास

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 उपन्यास का अर्थ
10.4 उपन्यास का उद्भव एवं विकास
10.5 उपन्यास के स्वरूप
10.6 उपन्यास में यथार्थ की अभिव्यक्ति के विभिन्न रूप
10.7 यथार्थवाद और उपन्यास
10.8 सार संक्षेप
10.9 मुख्य शब्द
10.10 स्व प्रगति-परीक्षणप्रश्नों के उत्तर
10.11 संदर्भ ग्रन्थ
10.12 अभ्यास प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

उन्नीसवीं शताब्दी के पूवार्द्ध में ही भारत में अंग्रेज़ी राज्य स्थापित हो चुका था। उनकी शिक्षा नीति से प्रभावित होकर जो प्रदेश सबसे पहले अंग्रेज़ी साहित्य के संपर्क में आए उनमें उपन्यासों का प्रचलन अपेक्षाकृत पहले हुआ। यही कारण है कि हिंदी की अपेक्षा बांग्ला साहित्य में उपन्यासों की रचना पहले हुई और आगे चलकर हिंदी उपन्यास पर उनका पर्याप्त प्रभाव पड़ा। इतना ही नहीं प्रारंभिक काल में कितने ही बांग्ला उपन्यासों का हिंदी में अनुवाद भी किया गया।

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि हिंदी का सर्वप्रथम उपन्यास किसे माना जाए। हिंदी गद्य का विकसित रूप सामने आते ही उपन्यासों की रचना होने लगी। सन् 1877 में श्रद्धाराम ने 'भाग्यवती' उपन्यास लिखा और उसके बाद सन् 1882 में लाला श्री निवासदास ने 'परीक्षा गुरु'। 'भाग्यवती' में नारी शिक्षा और उपदेश से अधिक कुछ नहीं है, जबकि 'परीक्षा गुरु' में उपदेशात्मकता के साथ-साथ समस्त औपन्यासिक तत्वों का समावेश भी है। इसलिए'परीक्षा गुरु' को ही हिंदी साहित्य का प्रथम उपन्यास माना जाता है।

10.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझ सकेंगे:

- उपन्यास की परिभाषा, स्वरूप, और उसकी प्रमुख विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त करना। और उपन्यास के ऐतिहासिक विकास और उसके उद्भव के सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारणों को समझना।
- विभिन्न प्रकार के उपन्यासों जैसे सामाजिक, ऐतिहासिक, रहस्यपूर्ण, और मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के भेदों को स्पष्ट करना।
- उपन्यास के कथानक, चरित्र चित्रण, संवाद, और भाषा शैली के महत्व को पहचानना।
- हिंदी साहित्य में उपन्यास विधा के प्रमुख लेखकों और उनके योगदान का विश्लेषण करना।
- पाठ्य सामग्री में प्रस्तुत उपन्यास अंशों का विवेचन एवं आलोचनात्मक अध्ययन करना।

10.3 उपन्यास का अर्थ

इकाई का आरंभ इस प्रश्न पर विचार करने के साथ करेंगे कि उपन्यास क्या है! उपन्यास पढ़ते हुए और उपन्यास के बारे में पढ़ते हुए हम कह सकते हैं. कि उपन्यास वह गद्य रूप है जिसे आधुनिक युग का महाकाव्य कहा जाता है या कहा जा सकता है। महाकाव्य में उस प्रबंध की ध्वनि है जो जीवन के बहुविध विस्तार को समेटने में सक्षम है। हमारे यहाँ उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से ऐसी कृतियाँ मिलने लगती हैं जिन्हें उपन्यास की संज्ञा दी जा सकती है। उसमें गल्प का तत्व भी है और रोमांस का तत्व भी। पर सच्चाई यह है कि उपन्यास का अर्थ और स्वरूप बहुत कुछ बदलता रहा है। कथानक जो उपन्यास का मुख्य तत्व है उसे छोड़कर भी उपन्यास लिखे गए हैं। भारतेंदु के एक अधूरे उपन्यास से शब्द लेकर कहें कि वह आपबीती भी है और जगबीती भी। वह एक समूचा वृत्तांत भी है और नये प्रयोगों तक आते-आते खंड-खंड में भी सम्पूर्ण नज़र आता है। वस्तुतः 'उपन्यास ' शब्द में ही अर्थ की विविधता है। जीवन के सभी रूपों के बीच कोई ऐसा संबंध होता है, जिसे उपन्यास उद्घाटित करता है।

किस्सागोई के अनेक रूप और गल्प या आख्यान के अनेक रूप उसमें घुल-मिल गये हैं। पर सबके साथ आप देखेंगे कि वह एक आधुनिक गद्य-रूप है जो जीवन को समग्रता में या कभी टुकड़ों में देख पाता है। प्रेस के उदय के साथ गद्य आया। उसे गद्य के साथ नया पाठक वर्ग मिला। उपन्यास क्या है का उत्तर पाने के लिए हमें इन तथ्यों को भी ध्यान में रखना होगा।

पहले तो यही ध्यान में रखें कि उपन्यास उन समाजों में प्रमुख साहित्यिक विधा के रूप में सामने आया है जिनकी विशेषताओं में है औद्योगिक सभ्यता, मध्यवर्ग और पूंजी। पर ठीक इन्हीं परिस्थितियों में सब जगह उपन्यास नहीं आया। भारतीय समाज में मध्यवर्ग की उपस्थिति के साथ किसान और किसानचेतना, स्त्री और स्त्रीचेतना को स्वीकृति मिली।

उपन्यास क्या है, प्रश्न पूछते हुए हमें कुछ चिन्तकों के विचार-सूत्र याद आ सकते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जब 1910 में 'उपन्यास' नामक निबंध लिख रहे थे तो उन्हें इसका आभास था कि यथा- आधारित इस विधा को लेखक और पाठक दोनों की अनुमान शक्ति की ज़रूरत है। यह अनुमान- शक्ति क्या है? विचार करें, तो यही कल्पना है। एक प्रकार की ऐतिहासिक कल्पना के बगैर उपन्यास विधा असंभव है। इसी में समय का बोध भी शामिल है और मानवचरित्र की मर्मस्पर्शी विविधता भी शामिल है। प्रेमचंद के अनुसार उपन्यास मानव चरित्र का चित्र मात्र है। पर हम उपन्यास के अब तक के विकास के बाद कह सकते हैं कि वह चित्र गात्र नहीं है। वह झलक भर नहीं है। वह हमारी आँखें खोल देता है और यथार्थ को हम कुछ और ही तरह से देखने लग जाते हैं। सोचने के लिए हमें हंगरी के उपन्यास आलोचक और सिद्धांतकार जार्ज लूकाच से यह विचार-सूत्र मिल चुका है कि उपन्यास 'ईश्वर विहीन दुनिया का महकाव्य है। इस अर्थ में हमारी अनुभव-संवेदना की कोई बड़ी क्षति है, जिसका एहसास उपन्यास कराता रहता है। एक सीधे वृत्तांत रूप से काम नहीं चलता तो वह कई रूप अपनाता चलता है। अब तो उपन्यास के इतने रूप हैं कि उसे परिभाषित करना कठिन है।

10.4 उपन्यास का उद्भव एवं विकास

हिंदी उपन्यास की विकास यात्रा पर एक विहंगम दृष्टि डालें तो पता चलेगा कि हिंदी उपन्यासों का जन्म सुधारवादी भावनाओं की पृष्ठभूमि में हुआ। इस समय देश में समाज के नैतिक उत्थान और सांस्कृतिक परंपराओं की रक्षा के लिए कई आंदोलन चल रहे थे। इसीलिए प्रारंभिक उपन्यासों में दो प्रकार की रचनाएं सामने आती है उपदेशात्मक तथा मनोरंजन प्रधान। इसके साथ ही एक दूसरी धारा - अनूदित उपन्यासों की रही जिसमें अंग्रेजी, उर्दू, बांग्ला आदि भाषाओं में लिखे उपन्यासों के अनुवाद प्रस्तुत किए गए।

भारतेंदु से लेकर अब तक के उपन्यासकारों में प्रेमचंद का नाम सर्वोपरि है। अतः हम प्रेमचंद को ही उपन्यास की विकास यात्रा का केंद्र बिंदु मानकर संपूर्ण विकास क्रम को समझने का प्रयत्न करेंगे। अध्ययन की सुविधा के लिए हम हिंदी उपन्यास को चार युगों में विभाजित कर सकते हैं-

1. पूर्व, प्रेमचंद युग
2. प्रेमचंद युग
3. उत्तर प्रेमचंद युग
4. स्वातंत्र्योत्तर युग

1. पूर्व प्रेमचंद युग विधाओं के बारे में-आपने भारतेंदु युग में विकसित गद्य-पढ़ा है और यह भी जानते हैं कि आधुनिक युग का जनक हम भारतेंदु को साहित्य की अनेक विधाओं में उनके योगदान का परिचय प्राप्त किया। अपने जीवन काल में उन्होंने 'कुछ आप बीती, कुछ जग बीती नाम से एक उपन्यास भी लिखना शुरू किया था किंतु वह अधूरा ही रह गया। इसके अतिरिक्त भारतेंदु ने एक मराठी उपन्यास 'पूर्ण प्रकाश' और 'चंद्र प्रभा का अनुवाद भी किया था। इसके बाद उपन्यासों की एक लंबी कड़ी दृष्टिगत होती है जिसमें कई प्रकार के मौलिक और अनुदित उपन्यासों की रचना हुई।

भारतेंदु के समय में ही श्रीनिवास दास ने 'परीक्षा गुरु' नाम का एक शिक्षाप्रद उपन्यास लिखा था जिसकी चर्चा पहले भी की जा चुकी है।

इसमें पहली बार कुछ औपन्यासिक तत्वों का समावेश किया गया था इसीलिए इसे हिंदी का पहला उपन्यास स्वीकार किया जाता है। इस रचना में दिल्ली के एक सेठ पुत्र की कहानी है जो कुसंगति में पड़ जाता है। अंत में एक सज्जन मित्र द्वारा उसका उद्धार होता है। इस उपन्यास में उपदेशात्मक प्रवृत्ति प्रधान है। अतः हम इसे एक सुधारवादी उपन्यास कह सकते हैं। इसके बाद भी कुछ छुटपुट प्रयत्न होते रहे। ठाकुर जगमोहन सिंह का श्याम स्वप्न-, रत्नचंद प्लीडर

का 'नूतनचरित, बालकृष्ण भट्ट का 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान एक सुजान, राधाकृष्ण दास का 'निस्सहाय हिंदू, बालमुकुंद गुप्त का 'कामिनी' आदि उपन्यास इसी समय में लिखे गए। ये सभी उपन्यास सामाजिक कहे जा सकते हैं।

इसके बाद उपन्यास सर्जना का यह क्रम निरंतर चलता रहा। सामाजिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, तिलस्मी, ऐय्यारी, जासूसी सब प्रकार के उपन्यास रचे जाने लगे। यदि ऐसा कहा जाए कि उपन्यासों की एक बाढ़ सी आ गई तो अत्युक्ति न होगी किंतु प्रमुख नाम केवल तीन हैं किशोरी लाल गोस्वामी, देवकीनंदन खत्री और गोपालराम गहमरी। किशोरी लाल गोस्वामी ने अकले ही सभी प्रकार के 65 उपन्यासों की। देवकीनंदन खत्री हिंदी के पहले मौलिक उपन्यास लेखक थे जिनके तिलस्मी उपन्यासों की सर्वसाधारण में धूम मच गई। 'चंद्रकांता संतति' उनका प्रसिद्ध उपन्यास है। कहते हैं इस उपन्यास को पढ़ने के लिए बहुत से लोगों ने हिंदी सीखी। इन उपन्यासों में घटनाओं के साथ कल्पनाशीलता की प्रधानता थी। इससे जनता का मनोरंजन तो खूब हुआ किंतु कलात्मक तुष्टि नहीं। इसी समय अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध ने 'अधखिला फूल' और 'ठेठ हिंदी का ठाठ नामक उपन्यास लिखे जिनका महत्व केवल भाषायी स्तर का है। लज्जा राम मेहता ने कुछ आदर्शवादी उपन्यासों की रचना की।

इन मौलिक उपन्यासों के साथसाथ विभिन्न भाषाओं-; यथा अंग्रेजी, उर्दू, बांग्ला, मराठी आदि में उपन्यासों के अनुवाद किए जाने की परंपरा भी चलती रही। इन उपन्यासों का हिंदी के औपन्यासिक रचनाविधान पर विशेष प्रभाव पड़ा।-

इस प्रकार कहा जा सकता है कि उपन्यास साहित्य का आरंभ भले ही सामान्य स्तर का रहा किंतु इसका उत्तरोत्तर विकास बड़े ही उत्साहजनक वातावरण में हुआ। आलोचकों का कथन है कि हिंदी में जितने उपन्यास इस युग में रचे गए, परवर्ती किसी युग में नहीं।

2. प्रेमचंद युगप्रेमचंद का हिंदी उपन्यास साहित-्य के विकास की परंपरा में एक महत्वपूर्ण योगदान है। उन्होंने हिंदी उपन्यास को काल्पनिक तथा तिलस्मी, ऐय्यारी, जासूसी के इंद्रजाल से निकालकर मानव जीवन की यथार्थ समस्याओं से संबद्ध किया। इस समय देश में कांग्रेस की स्थापना हो चुकी थी। गांधी जी राजनीतिक क्षेत्र में जो कार्य कर रहे थे प्रेमचंद ने वही कार्य साहित्यिक क्षेत्र में किया। उनके उपन्यासों में सर्वत्र गांधीवादी नीतियों का प्रतिपादन किया गया है। उन्होंने हमेशा शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाई। समाज में विद्यमान अनेक समस्याओं; यथा विधवा विवाह, वेश्या समस्या, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, अवैध प्रेम, जाति भेद आदि को वाणी दी। वे समाज का परिसंस्कार करना चाहते थे- इसलिए उनका दृष्टिकोण प्रायः आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी रहा।

प्रेमचंद ने दो प्रकार के उपन्यास लिखे राजनीतिक और सामाजिक। 'प्रेमा' और 'वरदान' उन दिनों के उपन्यास हैं जब वे नवाबराय के नाम से उर्दू में लिखा करते थे। 'सेवासदन' कलात्मक दृष्टि से प्रथम प्रौढ़ उपन्यास है जिसमें मध्यमवर्ग की विडंबना को दिखलाकर वेश्या समस्या का समाधान प्रस्तुत किया गया है। 'प्रेमाश्रम' में ग्रामीण जीवन की समस्याओं का चित्रण करते हुए किसानों की दुर्दशा का चित्र खींचा गया है। रंगभूमि' में शासक वर्ग के अत्याचार का चित्रण है। 'कर्मभूमि' एक राजनीतिक सामाजिक उपन्यास है जिसमें जनता की साम्राज्य-विरोधी भावना व्यक्त हुई है।'प्रतिज्ञा' की समस्या विधवा विवाह से जुड़ी है।-'गबन' में आभूषणों की लालसा के दुष्परिणाम को। चित्रित किया गया है। 'कायाकल्प' पुनर्जन्मवाद से संबद्ध है। 'निर्मला' में अनमेल विवाह के दुष्परिणामों को बतलाते हुए विमाता की समस्या को अंकित किया गया है। 'गोदान' में किसान और मजदूर के शोषण की करुण कथा कही गई है। यह उपन्यास मुंशी प्रेमचंद का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। इसमें समस्या को उठाकर गांधीवादी ढंग से उसका कोई समाधान नहीं किया गया। यह उपन्यास सर्वथा एक यथार्थवादी

उपन्यास है। प्रेमचंद ने सर्वथा आदर्शवाद और यथार्थवाद में एक अद्‌भुत संतुलन बनाकर रखा।

उन्होंने वर्ग वैषम्य, आर्थिक शोषण, सामाजिक असमानता, पूंजीवादी संस्कृति और बुर्जुआ मनोवृत्ति के विरुद्‌ध अपने उपन्यासों के माध्यम से एक ऐसा जनमत तैयार किया जिससे देश में प्रगतिशील समाज की स्थापना हो सके। इस प्रकार, प्रेमचंद ने उपन्यास साहित्य को प्रौढ़ता ही नहीं दी अपितु अपने समकालीन रचनाकारों का मार्गदर्शन भी किया।

प्रेमचंद के समकालीन उपन्यासकारों में बहुत से नाम उल्लेखनीय हैं, यथा जयशंकर प्रसाद, चतुरसेन शास्त्री, विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, भगवतीचरण वर्मा, पांडेय, बेचन शर्मा उग्र, वृंदावनलाल वर्मा, जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी आदि।

जयशंकर प्रसाद ने केवल तीन उपन्यास लिखे। 'कंकाल', 'तितली' एवं 'इरावती'। 'इरावती' उनका अधूरा उपन्यास है। 'कंकाल' में उन्होंने स्त्री समस्या-पुरुष की प्रेम- पर व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से विचार किया।'तितली' में अंतर्जातीय विवाह का समर्थन किया गया है। इस प्रकार, प्रसाद का दृष्टिकोण प्रेमचंद से नितांत भिन्न था। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में समाज और सामाजिक समस्याओं को प्रमुखता दी किंतु प्रसाद ने व्यक्ति और उसकी वैयक्तिक समस्याओं को विभिन्न सामाजिक समस्याओं के संदर्भ में देखा है। आगे चलकर जैनेंद्र और इलाचंद्र जोशी ने मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास लिखे। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में जैनेंद्र के उपन्यास 'परख', 'सुनीता' और 'कल्याणी' तथा इलाचंद्र जोशी के मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों में 'संन्यासी' को विशेष प्रसिद्‌धि प्राप्त हुई।

चतुरसेन शास्त्री ने सामाजिक और ऐतिहासिक दोनों प्रकार के उपन्यास लिखे। किंतु वृंदावनलाल वर्मा ने केवल ऐतिहासिक उपन्यासों के आधार पर ख्याति अर्जित की। 'झांसी की रानी' इनका प्रसिद्‌ध उपन्यास है। इसी समय भगवतीचरण वर्मा का उपन्यास 'चित्रलेखा' भी विशेष रूप से चर्चित हुआ।

प्रेमचंद युग का अध्ययन करते हुए आपने देखा कि इस काल में उपन्यास नामक विधा ने पहले से कहीं अधिक विकास किया। इस युग में अधिकांशतः मौलिक उपन्यासों की रचना हुई तथा उपन्यासकारों में पहले से कहीं अधिक कलात्मक संयम दिखाई दिया। इस युग के वर्ण्य विषयों में भी विविधता है। सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक और मनोविश्लेषणात्मक सभी प्रकार के उपन्यास लिखे गए। समाज में जैसेजैसे परिवर्तन आता रहा-, वैसे वैसे उपन्यासकारों की- चिंतनधारा अपने युग के यथार्थ से प्रभावित होती रही। यद्यपि प्रेमचंद गौरव की रक्षा में लगे रहे एवं मनोवैज्ञानिक व मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासकार पाश्चात्य चिंतकों फ्रायड, एडलर आदि के सिद्धांतों से प्रभावित होकर अपनी रचनाओं में व्यक्ति की कुंठाओं का चित्रण करते रहे।

3.उत्तर प्रेमचंद युग प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास को जो ठोस आधारभूमि दी उससे- इस विधा के वि◌कास की चौमुखी राहें खुल गई। इस समय द्वितीय महायुद्ध समाप्त हो चुका था और पाश्चात्य साहित्य में दो प्रभावशाली विचारधाराएं प्रचलित हो रही थीं

फ्रायडवादी सिद्धांतों से प्रभावित मनोवैज्ञानिक या मनोविश्लेषणवादी और - दूसरी मार्क्सवादी के सिद्धांतों से प्रभावित प◌्रगतिवाउपन्यास धारा। इनका समानांतर विकास प्रेमचंद के समय में ही हो गया था। प्रेमचंद का 'गोदान' तथा जैनेंद्र और इलाचंद्र जोशी के उपन्यास इस कथन की पुष्टि करते हैं। प्रेमचंद अपने उपन्यासों द्वारा एक प्रगतिशील समाज की स्थापना अवश्य करना चाहते थे किंतु उन्होंने इसके लिए न तो कोई मार्क्सवादी झंडा ही गाड़ा और न ही नारेबाजी की, जैसा कि आगे चलकर यशपाल ने किया। हिंदी में यशपाल को मार्क्स के सिद्धांतों से प्रभावित प्रगतिवादी औपन्यासिक धारा का प्रवर्तक माना जाता है। इनके उपन्यासों में से 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'मनुष्य के रूप' इसी कोटि के उपन्यास हैं। इनमें इनकी साम्यवादी विचारधारा स्पष्ट परिलक्षित होती

है। 'दिव्या' यशपाल का एक ऐतिहासिक उपन्यास है किंतु इसमें भी इनकी चिंतन पद्धति समाजवादी ही है। इसी धारा में आगे चलकर रांगेय राघव ने 'घरोंदे' तथा 'हुजूर' उपन्यासों की रचना की। इनका दृष्टिकोण प्रगतिवादी था। इन उपन्यासों में इन्होंने आर्थिक वैषम्य और शोषण आदि विभिन्न समसामयिक विकृतियों पर चोट की। राहुल सांकृत्यायन ने 'जीने के लिए' 'जय यौधेय और सिंह सेनापति' लिखे। इसके अतिरिक्त रामेश्वर शुक्ल अंचल व नागार्जुन ने कई उपन्यास लिखे जिनमें पूंजीवादी संस्कृति के प्रति आक्रोश प्रकट किया गया है।

फ्रायड के सिद्धांतों से प्रभावित होकर जैनेंद्र 'परख', 'सुनीता और त्यागपत्र' उपन्यास पहले ही लिख चुके थे।

इस युग में प्रकाशित उनके उपन्यास 'कल्याणी', 'सुखदा', 'विकास', 'व्यतीत', 'जयवर्धन' आदि में यह प्रवृत्ति मनोविज्ञान, दार्शनिकता आदि माध्यम से विविध रूप में उभरी। उनके नारी पात्र यदि एक ओर समाज की मर्यादाओं को बनाए रखना चाहते हैं, तो दूसरी ओर अपने अस्तित्व की पहचान भी कराना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में

आत्मपीड़न के अतिरिक्त उनके पास कोई रा-ह शेष नहीं रहती। यही कारण है कि उनके पात्र समाज को न तोड़कर स्वयं टूटते हैं।

इसी कड़ी में आगे चलकर अज्ञेय ने 'शेखर एक जीवनी' लिखकर हिंदी उपन्यास में एक नया मोड़ उपस्थित किया। कथ्य, शिल्प और भाषा के स्तर पर यह एक नवीन प्रयोग था। इस उपन्यास का मूल मंतव्य शेखर के व्यक्ति की खोज और शेखर के 'व्यक्ति' का साक्षात्कार है।

इसी समय पूर्व प्रेमचंद युग से चली आ रही ऐतिहासिक उपन्यासों की परंपरा को वृंदावनलाल वर्मा ने आगे बढ़ाया। भले ही इन्होंने प्रेमचंद युग में लिखना आरंभ कर दिया था किंतु इनकी लेखनी अबाध गति से चलती रही। इन्होंने 'कचनार', 'मुसाहिबजू, कुंडलीचक्र-', 'प्रत्यागत', 'माधव जी सिंधिया और 'मृगनयनी' आदि कई उपन्यास लिखे। मृगनयनी इनका सर्व प्रसिद्ध उपन्यास

है। राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, निराला, चतुरसेन शास्त्री तथा हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी इसी परंपरा को आगे बढ़ाया। राहुल के 'वोल्गा से गंगा, चतुरसेन शास्त्री के वैशाली की नगरवधू' और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' ने विशेष ख्याति अर्जित की।

सामाजिक समस्याओं पर लिखने वाले उपन्यासकारों में उग्र, भगवतीचरण वर्मा, सियारामशरण गुप्त, भगवती प्रसाद वाजपेयी, विष्णु प्रभाकर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी समय उपेंद्रनाथ ने अपने उपन्यासों में नगरों में वास कर रहे मध्यमवर्गी सामाजिक जीवन की अनेक कुंठाओं का सशक्त ढंग से चित्रण किया। 'गिरती दीवारें इनका प्रसिद्ध उपन्यास है। यथार्थवादी परंपरा के उपन्यासों में यह उपन्यास अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

इस प्रकार, औपन्यासिक दृष्टि से यह युग अत्यंत महत्वपूर्ण रहा। प्रेमचंद के पश्चात समाजवादी यथार्थवाद को चित्रित करने वाले उपन्यासकारों में यशपाल, मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में अज्ञेय, ऐतिहासिक उपन्यासकारों में वृंदावनलाल वर्मा, सामाजिक उपन्यासकारों में भगवतीचरण वर्मा और यथार्थवादी उपन्यासकारों में उपेंद्रनाथ अश्क ने अपनी विशिष्ट पहचान बनाई।

इस युग के उपन्यासों में विषय वैविध्य है। भाषा और शिल्प-

के धरातलपर भी कई नवीन प्रयोग मिलते हैं।

4. स्वातंत्र्योत्तर युग स्वाधीनता के पश्चात भारतवासियों को एक साथ कई-समस्याओं का सामना करना पड़ा। सत्ता का बदला जाना, आर्थिक विपन्नता, हिंदुमुसलिम वैमनस्य के भयंकर हिंसक परिणाम-, विभाजन की विभीषिका इन - सबसे साधारण जनता त्रस्त हो उठी। ऐसी स्थिति में जबकि चारों ओर अंधकार था, रचनाकारों में एक नया भावबोध उत्पन्न हुआ जो घोर सामाजिक और अपूर्व जिजीविषा का भाव लिए हुए था। अतः इस समय हिंदी उपन्यास

कई मोड़ों से गुजरता हुआ दिखाई देता है। आपके अध्ययन की सुविधा के लिए इन्हें प्रवृत्यात्मक वर्गों में विभाजित किया जा रहा है; यथा सामाजिक, समाजवादी

यथार्थवाद, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, आंचलिक, प्रयोगशील, आधुनिकत बोध- आदि।

1. उपन्यास का मूल उद्देश्य होता है _____ और _____ का प्रभावशाली चित्रण।
2. प्रेमचंद के उपन्यासों में मुख्यतः _____ और _____ जीवन के संघर्षों का वर्णन मिलता है।
3. हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'गोदान' को _____ के रूप में जाना जाता है।
4. सामाजिक उपन्यासों का मुख्य स्वर _____ और _____ को जागरूक करना होता है।

10.5 उपन्यास के स्वरूप

1.सामाजिक उपन्यास सामाजिक समस्याओं पर लिखने वाले उपन्यासकारों में आप बहुत से लेखकों और उनकी रचनाओं का परिचय पहले प्राप्त कर चुके हैं; जैसेपांडेय -, बेचन शर्मा उग्र, भगवतीचरण वर्मा, भगवती प्रसाद वाजपेयी, उदयशंकर भट्ट, सियारामशरण गुप्त, विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, विष्णु प्रभाकर, उपेंद्रनाथ अश्क। आगे चलकर अमृतलाल नागर भी इसी कड़ी में जुड़ गए और उपन्यास के क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान बनाया।

यहां केवल प्रमुख उपन्यासकारों को ही ले रहे हैं जो निरंतर उपन्यास लिखने में प्रवृत्त रहे; जैसे भगवतीचरण वर्मा, उपेंद्रनाथ अश्क और अमृतलाल नागर। भगवतीचरण वर्मा ने इस काल में कई उपन्यास लिखे जैसेमेढ़े रास्ते-टेढ़े-, आखिरी दांव, भूले बिसरे चित्र, रेखा, सीधी सच्ची बातें और सबहिं नचावत राम गोसाईं। 'चित्रलेखा' के पश्चात 'भूले बिसरे चित्र' इनकी सर्वाधिक सशक्त रचना है।

उपेंद्रनाथ अश्क अपने लेखन को सशक्त बनाने में सतत प्रयत्नशील हैं। उनके उपन्यासों में 'गिरती दीवारें सर्वोत्तम है, जो मध्यमवर्गीय नैतिक वर्जनाओं को तोड़ने की प्रेरणा देता है। 'शहर में घूमता आईना' और 'एक नन्ही कंदील' इस उपन्यास के अगले खंड हैं और अपनेआप में पूर्ण हैं।-

इसके अतिरिक्त 'गरम राख', 'बड़ीबड़ी आंखें-, 'पत्थर पत्थर', 'बांधो न नाव इस ठांव' इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। इस युग के सामाजिक उपन्यासकारों में अमृतलाल नागर का विशेष स्थान है। 'प्रेमचंद' के बाद उन्हें यथार्थवादी चेतना का प्रमुख उपन्यासकार कहा जा सकता है। 'नवाबी मसनद', 'सेठ बांकेमल', 'महाकाल', 'बूंद और समुद्र', अमृत और विष', 'मानस का हंस', 'शतरंज के मोहरे', 'नाच्यो बहुत गोपाल', 'खंजन नयन', 'सुहाग के नूपुर', 'करवट और पीढ़ियां इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। इन उपन्यासों में इतिहास, पुरातत्व और आधुनिकता का सुंदर समावेश मिलता है। 'बूंद और समुद्र' इनका सफल एवं बहुचर्चित उपन्यास है। बूंद और समुद्र' क्रमशः व्यक्ति और समाज के प्रतीक हैं। इसमें भारतीय समाज के विभिन्न रूपों, रीतिनीतियों-, आचारविचारों-, जीवनदृष्टियों-, मर्यादाओं, टूटती और निर्मित होती व्यवस्थाओं के अनगिनत चित्र हैं। इस उफनते हुए समुद्र में व्यक्ति अर्थात बूंद की क्या स्थिति है यही इस उपन्यास का प्रतिपाद्य है। व्यक्ति और समाज के पारस्परिक संबंधों का चित्रण इस उपन्यास में जिस रोचक शैली में किया गया है, उसने इसे एक विशिष्ट औपन्यासिक कृति बना दिया है। मानस का हंस' में गोस्वामी तुलसीदास, और 'खंजन नयन' में सूरदास के जीवन को जिस प्रकारउन्होंने एक सफल औपन्यासिक व्यक्तित्व प्रदान किया है, वह निश्चय ही अपूर्व है।

2.समाजवादी यथार्थवाद के उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर काल में अश्क और नागर के साथ साथ यशपाल ने अपनी विशिष्ट मार्क्सवादी विचारधारा के कारण अपना- स्वतंत्र व्यक्तित्व स्थापित किया।'अमिता' और 'दिव्या को छोड़कर उनके शेष उपन्यास समाजवादी यथार्थवाद का चित्र प्रस्तुत करते हैं। प्रारंभिक उपन्यासों के

नाम 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'पार्टी कामरेड' आदि इस बात की पुष्टि करते हैं कि वे क्रांतिकारी दल से संबंधित थे और मार्क्सवादी विचारधारा का उन पर गहरा प्रभाव था। यह उपन्यास दो भागों में लिखा गया -'वतन और देश' तथा 'देश का भविष्य'। इस उपन्यास में उन्होंने जीवन के विविध रूपों, समस्याओं और जटिलताओं को विस्तार से चित्रित किया है। पहला भाग देश के विघटन को प्रस्तुत करता है, इसलिए अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक, यथार्थ और मार्मिक बन पड़ा है। डॉ नगेंद्र .'झूठा सच' को हिंदी का महाकाव्यात्मक उपन्यास मानते हैं। इसके अतिरिक्त उहोंने 'मनुष्य का रूप'. 'बारह घंटे' और 'मेरी तेरी उसकी बात' उपन्यास लिखे। 'मनुष्य के रूप में परिवर्तनशील मानवीय रूप के मूल में आर्थिक समस्या की भूमिका स्वीकार की गई है और 'मेरी तेरी उसकी बात' में भारत के स्वतंत्रतापूर्व और स्वातंत्र्योत्तर काल के सामाजिक राजनीतिक जीवन का चित्रण-किया गया है।

यशपाल की परंपरा के उपन्यासकारों में राहुल सांकृत्यायन का 'सिंह सेनापति' और 'वोल्गा से गंगा', नागार्जुन का 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'बाबा बटेसरनाथ', 'वरुण के बेटे', 'दुख मोचन', रांगेय राघव के 'घरौंदा', 'सीधा सादा रास्ता', 'कब तक पुकारूं' और 'मुर्दों का टीला', भैरवप्रसाद गुप्त का 'मशाल', 'गंगा मैया' और 'सती मैया का चौरा, अमृतराय का 'बीज', 'नागफनी का देश' और 'हाथी के दांत' विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रायः इन सभी उपन्यासों में वर्ग वैषम्य और आर्थिक शोषण का चित्रण किसी न किसी रूप में प्रभावशाली ढंग से किया गया है।

3. ऐतिहासिक उपन्यास यद्यपि हिंदी में यह धारा बहुत प्रखर नहीं है फिर भी पूर्व प्रेमचंद युग से चली आ रही है। पहले के उपन्यास ऐतिहासिक न होकर केवल इतिहास नामधारी थे। इस क्षेत्र को प्रतिष्ठित करने वाले हैं वृंदावनलाल - वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, हजारी प्रसाद द्विवेदी और आचार्य चतुरसेन शास्त्री। इनमें से वृंदावनलाल वर्मा और चतुरसेन शास्त्री प्रेमचंद युग में ही अपने नाम

को प्रतिष्ठित कर चुके थे। वृंदावन लाल वर्मा की झांसी की रानी' और 'मृगनयनी, चतुरसेन शास्त्री की 'वैशाली की नगरवधू' अत्यंत सुगठित रचनाएं हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के अतिरिक्त 'चारुचंद्र लेख', 'पुनर्नवा' और 'अनामदास का पोथा' की रचना की। यशपाल का 'दिव्या' और 'अमिता', भगवतीचरण वर्मा का 'चित्रलेखा' भी ऐतिहासिक उपन्यास है जिनके विषय में पहले चर्चा की जा चुकी है।

4. आंचलिक उपन्यारा स्वातंत्र्योत्तर काल में एक नई धारा सामने आई। कुछ उपन्यासों में केवल प्रदेश विशेष की संस्कृति को उसके सजीव वातावरण में प्रस्तुत किया गया। इस दिशा में फणीश्वरनाथ रेणु का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। इनमें बिहार प्रदेश की संस्कृति का सजीव चित्रण किया गया है। उदयशंकर भट्ट का 'सागर लहरें' और 'मनुष्य', रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूं', नागार्जुन का 'बलचनमा' तथा 'वरुण के बेटे, देवेन्द्र सत्यार्थी का 'रथ के पहिये, रामदरश मिश्र का 'पानी के प्राचीर', शैलेश मटियानी का 'होल्दार', शिवप्रसाद मिश्र का 'बहती गंगा', 'टूटता हुआ', विवेकी राय का 'सोना माटी', 'समर शेष है', महत्वपूर्ण उपन्यास हैं।

आजकल हिंदी में नगर और ग्रामीण आंचल से संबंधित अनेक उपन्यास लिखे जा रहे हैं। इन उपन्यासों की सर्वप्रमुख विशेषता है प्रादेशिक तथा-स्थानीय रंग।

5. मनोवैज्ञानिक उपन्यास मनोवैज्ञानिक मनोविश्लेषणवादी उपन्यासों में बाह्य-संघर्ष की अपेक्षा व्यक्ति के अंतःसंघर्ष का चित्रण किया जाने लगा। पहले पढ़ा कि इस दिशा में पश्चिम में विचारकोंफ्रायड -, युग, एडलर आदि ने जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी और अज्ञेय के चिंतन को प्रभावित किया।

फलस्वरूप इलाचंद्र जोशी ने बाद के उपन्यासों 'जिप्सी', 'जहाज का पंछी, आदि में भी व्यक्ति की दमित वासनाओं, कुंठाओं आदि का चित्रण किया और जैनेंद्र

ने 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी' आदि में नारी पुरुष के प्रेम की समस्या- का मनावैज्ञानिक धरातल पर चित्रण किया। अज्ञेय पर फ्रायड, टी इलियट .एस. लारेंस का भी प्रभाव रहा। अज्ञेय ने .एच.और डी'शेखर एक जीवनी' के बाद स्वातंत्र्योत्तर युग में 'नदी के द्वीप' और 'अपनेअपने अज-नबी' लिखा। इस उपन्यास में मनोविज्ञान और अस्तित्ववाद का सुंदर समन्वय है। या यों कहा जाए कि इसमें अस्तित्वादी दर्शन सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया में उभारा गया है। भाषा शिल्प और रूप विन्यास के धरातल पर इस उपन्यास की बहुत चर्चा हुई।- 'अपनेअपने-' अज्ञेय का तीसरा उपन्यास है। इसमें समस्या स्वतंत्रता के वरण की है जो संत्रास, अकेलेपन, मृत्युबोध-, अजनबीपन आदि से सहज ही जुड़ जाती है। अज्ञेय ने इसमें अस्तित्ववादी स्वतंत्रता के मूल अर्थ को ही बदल दिया है। शेखर में व्यक्ति का अपने से साक्षात्कार मुख्य था। उसकी खोज स्वातंत्र्य की खोज के साथ साथ एक व्यक्तित्व की खोज भी थी।-'नदी के द्वीप' एक व्यक्तित्व की खोज न होकर चार व्यक्तियों की खोज है, इनकी अलग अलग भूमिकाएं हैं- दूसरे के साथ जोड़ता है।-किंतु इनका आपस में टकराव इन्हें एक इसी धारा में आगे चलकर डॉदेवराज ने अपने उपन्यासो .ं पथ की खोज', 'बाहर भीतर', 'रोड़े और पत्थर', 'अजय की डायरी' आदि में शिक्षित मध्यमवर्ग के करुण यथार्थ का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया।

6. प्रयोगशील उपन्यास कविता में नए प्रयोग के साथसाथ कहानी और- उपन्यास आदि में भी नए प्रयोग किए जा रहे हैं। पूर्ववर्ती लेखकों ने अपने प्रयोगों में कहानी और चरित्र का पूरा ध्यान रखा था। इस दौर में कहानी का महत्व नहीं रहा। परिणामस्वरूप क्रिया कलाप के प्रति सचेत एवं तराशे हुए पात्र भी नहीं- रहे। इन उपन्यासों में जिंदगी पूरी तरह विश्लेषित न होकर चेतन प्रवाह के साथ जुड़ गईं अतः प्रतीकोंके माध्यम से बात की जाने लगी। यही कारण है कि शिल्प के धरातल पर भी कई नए प्रयोग किए जाने लगे हैं। धर्मवीर भारती,

प्रभाकर माचवे, गिरिधर गोपाल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के उपन्यास इसी श्रेणी के हैं।

धर्मवीर भारती के 'सूरज का सातवां घोड़ा' में अलग अलग-कहानियां किस्सागो के व्यक्तित्व से जुड़कर बन जाती हैं। इसकी 'सांचा' आदि उपन्यासों में न तो कोई व्यवस्थित कथानक है और न चरित्र निर्माण। लेखक ने चेतना प्रवाह शैली में पुराने नैतिक मूल्यों पर प्रहार करके नवीन मूल्यों की तलाश की है। रुद्र की 'बहती गंगा' में काशी नगरी के पिछले दो सौ वर्षों के जीवन प्रवाह को सत्रह तरंगों में अंकित किया गया है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के (कहानियों) 'सोया हुआ जल' में एक यात्री निवास में ठहरे हुए यात्रियों की राज की जिंदगी का वर्णन है। यह उपन्यास चेतना प्रवाह शैली और सिनेरियो तकनीक में लिखा गया प्रतीकात्मक उपन्यास है।

नरेश मेहता का 'डूबते मस्तूल' और ख्वाजा बदी उज्जमां का 'एक चूहे की मौत भी अनेक प्रकार की विसंगतियों का चित्रण करने वाले प्रयोगशील उपन्यास हैं।
7. आधुनिकता बोध के उपन्यास औद्योगिकीकरण, बौद्धिकता के अतिरेक, यंत्रीकरण, दो महायुद्ध तथा अस्तित्वादी चिंतन के फलस्वरूप जो स्थिति उत्पन्न हुई है उसका प्रतिबिंब सभी साहित्यिक विधाओं में देखा जा सकता है। आज का उपन्यासकार व्यक्ति की खोज में संलग्न है। उसके लिए आदमी और उसका अस्तित्व महत्वपूर्ण है। इसकी झलक तो हमें इससे पहले लिखे गए कुछ उपन्यासों में भी मिल जाती है किंतु उनमें अभिव्यक्ति का स्तर वैसा नहीं रहा जैसा कि मोहन राकेश के 'अंधेरे बंद कमरे में' और 'न आने वाला कल' तथा अंतराल में नजर आता है। 'अंधेरे बंद कमरे में' के अंतर्गत आस्थाविहीन समाज और अनिश्चिय की स्थिति में लटके हुए इंसान का चित्रण है। 'न आने वाला कल' का नायक सब कुछ को अस्वीकार कर एक निशेधात्मक स्थिति में जा पहुंचा है। पर

यह अस्वीकार उसे कहीं भी ले जाने में असमर्थ है। अंत में जड़ जीवन जीने की सड़ांध ही उसकी नियति हो जाती है।

निर्मल वर्मा का 'वे दिन' आधुनिक संवेदना से संपन्न उपन्यास है। यह द्वितीय महायुद्ध के बाद की मानव नियति को खोजता है।-'लाल टीन की छत' भी इनका एक और उपन्यास है जहां व्यक्ति के 'होने', और 'जीने' में एक बड़ा भारी द्वंद्व है। 'वे दिन' के सभी पात्र इसी द्वंद्व में जीते हैं। निर्मल वर्मा ने उन्हें निकट से पहचानने की चेष्टा की है। राजकमल चौधरी का 'मछली मरी हुई' समलैंगिक यौनाचार में लिप्त स्त्रियों की कहानी है। श्रीकांत वर्मा का 'दूसरी बार' महेंद्र भल्ला का 'एक पति के नोट्स', कृष्ण बलदेव वैद का 'उसका बचपन', कमलेश्वर का 'डाक बंगला', 'काली आंधी', 'एक सड़क सत्तावन गलियां' आधुनिकता बोध के उपन्यास हैं। गिरिराज किशोर का 'लोग' श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' भीष्म साहनी का 'झरोखे', 'कड़ियां', 'तमस', 'वासंती', 'भैय्यादास की माड़ी' सामाजिक व्यंग्य के स्तर पर लिखे गए आधुनिकता बोध के उपन्यास हैं। मन्नू भंडारी के 'आपका बंटी' और 'महाभोज' प्रसिद्ध उपन्यास हैं। कृष्णा सोबती ने 'मित्रों मर जानी', 'डार से बिछुड़ी' और 'जिंदगीनामा' लिखकर महानगरीय जीवन यथार्थ की पहचान करवाई।

इन उपन्यासकारों के अतिरिक्त भी बहुत से ऐसे उपन्यासकार हैं जो निरंतर उपन्यास लेखन में जुटे हैं जिनमें से प्रमुख हैं गोविंद मिश्र, रवींद्र कालिया, नरेंद्र कोहली, राजेश शर्मा, मृदुला गर्ग, मणि मधुकर, ममता कालिया, निरुपम सेवती, पंकज विष्ट, अब्दुल विस्मिल्लाह, श्रवण कुमार गोस्वामी, संजीव आदि। इस प्रकार, उपन्यास विधा सतत विकासमना रही है तथा इसका भविष्य उज्ज्वल है।

10.6 उपन्यास में यथार्थ की अभिव्यक्ति के विभिन्न रूप

उपर्युक्त चर्चा से इतना तो स्पष्ट हो गया होगा कि उपन्यास का यथार्थ से गहरा संबंध है। लेकिन उपन्यास में यथार्थ की अभिव्यक्ति कई रूपों

में हो सकती है। आदर्श के रूप में, फैंटेसी के रूप में, नाटकीय रूप में, रोमांस के रूप में। और अब उपन्यास के संदर्भ में जादुई यथार्थ की भी चर्चा होने लगी है। इकाई के इस भाग में हम यथार्थ की अभिव्यक्ति के इन विभिन्न रूपों पर विचार करेंगे।

10.7 यथार्थवाद और उपन्यास

उपन्यास में आदर्श और यथार्थ विषय पर कालजयी उपन्यासकार प्रेमचंद ने काफी विचार किया है। उनकी पूरी रचना यात्रा से ये शब्द जुड़े हुए हैं। वे आदर्श से यथार्थ की ओर बढ़ते हैं, कभी यथार्थ से आदर्श की ओर। इसी रूप में उनके यहाँ दो कोटियाँ बनी हुई हैं आदर्शोन्मुख यथार्थवाद और यथार्थोन्मुख आदर्शवाद। 'गोदान' को ध्यान में रखकर कहा जाता है कि यहाँ आदर्श का कोई स्वप्न या बहाना शेष नहीं है यथार्थवाद से यथार्थवाद तक यही है 'गोदान' की यात्रा।

अब प्रेमचंद के ही प्रगतिशील लेखक संघ वाले अध्यक्षीय भाषण पर ध्यान दें। वे सीधे कहते हैं -'नीतिशास्त्र और साहित्यशास्त्र का लक्ष्य एक ही है। केवल उपदेश की विधि में अंतर है। प्रेमचंद उपन्यास से अपेक्षा करते हैं कि वह यथार्थ और आदर्श में एक तरह का तादात्म्य स्थापित करे, क्योंकि दोनों समान रूप से ज़रूरी हैं।

पहले जो यथार्थ और संभाव्यता पर विचार किया गया उसमें यथार्थ यदि घटित यथार्थ है तो आदर्श संभाव्य यथार्थ है। यहाँ हमें उनके शब्दों पर ध्यान देना चाहिएः

'यथार्थवाद यदि हमारी आँखें खोल देता है तो आदर्शवाद हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान में पहुँचा देता है। लेकिन जहाँ आदर्शवाद में यह गुण है, वहाँ इस बात की भी शंका है कि हम ऐसे चरित्रों को न चित्रित कर बैठें जो सिद्धांतों की

पूर्ति मात्र हो, जिसमें जीवन न हो। प्रेमचंद दोनों का महत्व बताते हैं पर उनकी सीमा भी बताते हैं। उनका मानना है कि 'वही उपन्यास उच्चकोटि के समझे जाते हैं जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो गया हो।'

लेकिन इतना ही कहना पर्याप्त नहीं है। उपन्यास एक ऐसी विधा है जिसमें मानव चरित्र का वैविध्य, उसकी जटिलता, वर्गीय संरचना, मनोवैज्ञानिक गठन सब कुछ महत्वपूर्ण है और उपन्यास रूप की पूर्णता के लिए आवश्यक है।-'गोदान' का होरी हो या शेखर एक जीवनी' का शेखर दोनों अंतर्विरोधों, दुर्बलताओं के पुंज हैं। पर इसी रूप में उन्हें महत्वपूर्ण चरित्र कहा जा सकता है।

अपने विकास क्रम में उपन्यास कोरे आदर्श से इनकार करता है। कथा और चरित्र की विश्वसनीयता आदर्श और यथार्थ के संगठन में ही देखी जा सकती है। लेकिन वह यथार्थ की सीमा का अतिक्रमण भी करता है, इसीलिए फंतासी या जादुई यथार्थ भी उपन्यासकला में सहायक होते हैं-

फंतासी और यथार्थ

अब हम इन शब्दों पर उपन्यास के संदर्भ में विचार करेंगे। फैन्टेसी या फंतासी एक प्रकार की अतिकल्पना है। उसे अवचेतन के स्वप्न और अवचेतन की मनःस्थिति के उद्घाटन में सहायक माना गया है। उपन्यासकार फंतासी का उपयोग उपन्यास की संरचना में विशिष्टता लाने के लिए कर सकता है। विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यास फंतासी और यथार्थ की बुनावट में सफल हैं। वह 'नौकर की कमीज़' हो या 'दीवार में एक खिड़की रहती थी। फंतासी उपन्यास कथा के-पुलट देती है। एक तरह का विपर्यय पैदा करती है। कहने-क्रग को उलट-तर्क का अर्थ यह कि फंतासी यथार्थ को अयथार्थ में बदलने की कथायुक्ति है।

फैन्टेसी या फंतासी को जादुई यथार्थवाद के निकट माना जा सकता है या अपरिचयीकरण)Defamiliarization) की कला से संबद्ध किया जा सकता है। पर ये अलग अलग अवधारणाएँ हैं। इसे यथार्थ से दूरी बनाने वाले सौंदर्य-

सिद्धांत के रूप में भी देखा जा सकता है। कामतानाथ का उपन्यास'कालकथा एकरेखीय वृत्तांत है तो अलका सरावगी का उपन्यास 'कलिकथा वाया बाईपास' काल क्रम का विपर्यय है। इस अर्थ में यथार्थ और फंतासी का संबंध विचारणीय-है।

यहाँ कुछ अवधारणाओं को लेकर स्पष्टीकरण ज़रूरी है। फंतासी को एक ऐसी कला) युक्ति-device) कहा गया है जो सिनेमा, चित्रकला, साहित्य से लेकर मनुष्य के निजी जीवन प्रसंगों तक में प्रयुक्त होती रहती है। वह यथार्थ के उन आयामों के भी उद्घाटन में सक्षम है जो हमारे प्रत्यक्ष इन्द्रियबोध से परे हैं। प्रकट यथार्थ का वांछित या संभावित यथार्थ में रूपांतरण फंतासी से ही संभव है। आशा है आप इस भेद को समझ रहे हैं।

नाटकीयता और रोमांस तत्व

उपन्यास के संदर्भ में यह सवाल उठाया जा सकता है कि क्या रोमांस तत्व के ह्रास के साथ नाटकीयता का भी ह्रास होता है। नाटकीयता का रोमांस तत्त्व के साथ कोई ऐसा संबंध नहीं है कि दोनों को एक साथ रखा जा सके नाटकीयत्ता तो नाटक के साथ कथा में विशेष रूप से लक्ष्य करने की घीज़ है। कहानियाँ कई बार नाटकीयता के कारण चर्चा में आती हैं। जैसे प्रसाद की कहानी 'आकाशदीप' का आरंभ ही नाटकीयता लिए हुआ है। प्रेमचंद की कहानी 'कफ़न' अपने आप में पूरा नाटक है। पिछले दिनों प्रकाशित सुरेन्द्र वर्मा के 'मुझे चाँद चाहिए' नामक उपन्यास में यहाँ से वहाँ तक चरित्रों के आमने सामने होने की स्थितियाँ-नाटकीय है। लेकिन यहाँ यह ज़रूर ध्यान दें कि हम रोमांस तत्व के हास

उपन्यास और रोमांस में एक अंतर यह किया गया है करता है वहाँ उदात्त भाषा में उसका वर्णन करता है जो में चार तरह के संबंधों की कल्पना की जा सकती है कि 'उपन्यास जहाँ अपने युग का बित्रण न घटित है न संभव है। साहित्य

और जीवन असंभव, दुर्लग, संभव और सुलभ। रोमांस केवल असंभव या दुर्लभ को पकड़ता है पधात्मक कथाएँ भी रोमांस हो सकती हैं। उपन्यास का संबंध प्रकट यथार्थ और नाटकीय संभाव्य से है। जो घटित नहीं है पर घटित हो सकता है, वह प्रायः एक नाटकीय क्षण की तरह ही आता है। उपन्यास पहले रोमांस के रूप में ही था जिसे साहसिक कथा और प्रेमकथा का संयोग भी कहा जा सकता है। जैसे तिलस्मी ऐयारी प्रकृति वाले उपन्यास इस संयोग के ही उदाहरण हैं। आगे चलकर यथार्थवाद के प्रधान होने के चलते इन दो तत्वों का हास हुआ है और ठीक ठीक इन्हीं रूपों में उपन्यास की पहचान कठिन हो गयी है। अब भी-

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में जैसे'अनामदास का पोथा।' में ये दोनों उपलब्ध हैं। इसी अर्थ में द्विवेदी जी ने अपने उपन्यास को 'गल्प' कहा है।

भारतीय उपन्यासकारों में बंकिमचंद्र के उपन्यासों की चर्चा हम पहले कर आये हैं। 'दुर्गेश नन्दिनी', 'कपालकुन्डला', 'आनंदमठ' आदि उनके कई उपन्यासों को 'रोमांस' कहा गया है। उनके 'सामाजिक उपन्यास' भी सामाजिक 'रोमांस' कहे गये हैं। वास्तविकता यह है कि उनके अधिकांश उपन्यासों में रोमांस और उपन्यास के तत्व घुले मिले हैं। हिंदी में यह बात केवल हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों के बारे में कही जा सकती है। इस तत्व की क्षीणता के साथ नाटकीयता का प्रभाव भी कम हो सकता है। पर तब हम नाटकीयता को काल्पनिक छलांग या उछाल के अर्थ में ही लेंगे।

एक बार फिर 'रोमांस' शब्द पर ध्यान दें। 'हिंदी साहित्य कोश में कहा गया है 'रोमांस शब्द 'रोनन' से निकला है जिसका अर्थ है असाधारण। अर्थात् रोमांस उपन्यास में जो पात्र होंगे वे ऐसे तो न होंगे जो इस पार्थिव जगत में पाये ही न जा सकें पर के लाखों में एक होंगे और विरल होंगे।' पहले हमने कहा ही है दुर्लभ से रोमांस का संबंध है। हिंदी साहित्य कोश में कहा गया है हिंदी में" विशुद्ध रोमांस उपन्यास है ही नहीं। आज मनोहरश्याम जोशी, विनोद कुमार

शुक्ल के यहाँ रोमांस और उपन्यास के तत्वों का मिश्रण देखा जा सकता है। पर हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि आलोचना में 'रोमांस' और 'यथार्थ' जैसे पद स्थिर पद)terms) नहीं हैं। लचीले हैं और उनके अर्थ बदलते रहते हैं। कथा युक्तियाँ बदली हैं तो शब्दों के अर्थ भी बदले हैं।

जादुई तत्व और यथार्थ

यहाँ एक सावधानी आपसे अपेक्षित है। अद्भुत तत्व और जादुई तत्व कहीं समानार्थी भी हो सकते हैं और प्रचलन से उनमें काफी अर्थ मिन्नता हो सकती-है। जादुई यथार्थ की अवधारणा लेकर जादुई यथार्थवाद सामने आया है। जहाँ तक बीसवीं शताब्दी के एकदम आरंभ का सवाल है, जब 'अद्भुत' तत्व की चर्चा शुरू हुई तो उसे यथार्थवाद के उदय से पहले के तिलस्मी ऐयारी उपन्यासों से जोड़कर देखा गया। हम पहले राजवाड़े के 1902 में प्रकाशित निबंध 'कादम्बरी' की चर्चा कर चुके हैं। वहाँ अद्भुत रस प्रधान उपन्यासों के विरूद्ध यथार्थवादी उपन्यासों को प्रतिष्ठा दी गयी है। आज जब हम आपसे इस विषय पर चर्चा करने जा रहे हैं तो यह स्पष्ट है कि जादुई यथार्थ यथार्थ की अवधारणा का विस्तार करता है। यथार्थ में ही एक तरह का जादुई तत्व भी निहित होता है। मुख्यतः उपन्यास को गंभीर अर्थ में कलाकृति मानने वाले जादुई तत्व का मर्म जानते हैं।

उदयप्रकाश हिंदी कहानी में जादुई यथार्थवाद के कारण चर्चित हैं। विनोदकुमार शुक्ल ने उपन्यासों का ढाँचा जादुई यथार्थवाद के आधार पर निर्मित किया है। यहाँ हम अवधारणा के रूप में 'जादुई यथार्थवाद' पद को स्पष्ट करना चाहेंगे। जादुई यथार्थवाद लातीनी अमरीकी देशों का एक कथा आंदोलन था। मार्कोज़ का 'वन हण्ड्रेड इयर्स ऑफ सालिट्यूड' नामक नोबेल पुरस्कार से सम्मानित उपन्यास इसका अन्यतम उदाहरण माना गया है। इसलिए आपके मन में स्पष्ट रहना चाहिए कि हम कोटियाँ बनाकर जिन अवधारणाओं पर विचार कर रहे हैं,

महत्वपूर्ण कृतियाँ उनको बराबर चुनौती देती रही हैं। जैसे यथार्थ और अयथार्थ, यथार्थ और कल्पना, यथार्थ और फंतासी। जादुई तत्व और उपन्यास में यथार्थ की बदली अवधारणा को इसी दृष्टि से देखा जाना चाहिए।

यथार्थवाद और उपन्यास

यथार्थवाद को लेकर, उसके अनेक भेदों को लेकर काफी भ्रग प्रचलित हैं। रागाजवादी यथार्थवाद और आलोचनात्मक यथार्थवाद की बहस तो सैद्धांतिक है और लम्बे समय से चल रही है। मनौवैज्ञानिक यथार्थवाद, सामाजिक यथार्थवाद, प्रकृतवाद और अब जादुई यथार्थ और यथार्थवाद की चर्चा है। पर थे, सभी कोटियाँ कई बार उलझन पैदा करती हैं। आपको याद रखना चाहिए कि यथार्थवाद का प्रयोग दो रूपों में होता है एक उन्नीसवीं शताब्दी के साहित्यिक आदांलेन के रूप में जिसका प्रभाव चित्रकला और अन्य कलाओं पर भी पड़ा। फ्रांस में बाल्ज़ाक का नाम उससे जुड़ा है। दूसरे साहित्य में वस्तु चित्रण की एक नयी पद्धति के रूप में जहाँ चीज़ों को ब्यौरों)details) में देखना उपयोगी समझा गया। हिंदी में प्रगतिवाद के आने पर यथार्थवाद की पक्षधरता बढ़ी पर वह इतनी बढ़ी कि हमने उसे सरल सपाट यथार्थवाद तक सीमित कर दिया। अकेले प्रेमचंद इसे चुनौती देने में सक्षम हैं। वे उपन्यास में स्थूल यथार्थवाद के विरोधी हैं। 'गबन' में भी द्वन्द्व है, जटिलता है, और थोपा हुआ आदर्शवाद नहीं है।' 'गोदान' तो यथार्थवाद को ऊँचाई तक ले जाने वाला उपन्यास है ही। यथार्थवादी उपन्यास को रोमांस से अलग देखना चाहिए। रोमांस में संभाव्य के लिए ही नहीं, एक तरह के चमत्कार के लिए भी गुंजाइश है। यथार्थवाद भी तथ्यात्मकता तक सीमित नहीं है। वह उसका अतिक्रमण करता है। यथार्थवाद भी कला का मर्म समझते हुए अनुभव करता है कि घटनाओं का यथातथ्यात्मक चित्रण यथार्थवाद नहीं है। यथार्थवाद भी यथार्थ का रूपांतरण है। तॉल्सतॉय आदि के यथार्थवादी उपन्यास

अंत बाह्य संघर्ष के विस्तार में आपको ले जाते हैं। सच्चा यथार्थवाद अपने आप में सरल उपयोगितावाद नहीं है। वह भी चयनधर्मी होना चाहता है। जब वह साधारण पर बल देना, नगण्यता पर बल देना ज़रूरी समझता है तो ऐसा सोद्देश्य करता है और उसकी कलात्मकता को गैर ज़रूरी नहीं मानता।

उपन्यास में यथार्थवाद और उसके विविध रूपों के चित्रण को लेकर अब आपके मन में कुछ बातें स्पष्ट होनी चाहिए। एक यह, कि यथार्थवाद व्यक्तियों, वर्गों और वस्तुओं के बाहरी रूप चित्रण तक सीमित नहीं होता। वह विभिन्न प्रकार के संबंधों को भी अभिव्यक्त करता है। दूसरी बात, यह कि यथार्थवाद भी गद्य और उपन्यास के आने से पहले एक कला आंदोलन का रूप ले चुका था और उसने प्रामाणिक विश्वसनीय चित्रण के लिए विश्वसनीयता हासिल कर ली थी। तीसरी बात यह कि यथार्थवाद वस्तु और रूप की द्वंद्वात्मकता को महत्व देता है। चौथी और अंतिम बात यह कि उपन्यास में चित्रण या अभिव्यक्ति पद्धति-की दृष्टि से भी उपन्यास समाज के साथ जीवंत सक्रिय संवाद चाहता है। माने व्याख्याकार रूसी आलोचक बाख्तिन ने-उपन्यास और यथार्थवाद के जाने इसी अर्थ में उपन्यास की संवादधर्मिता को केंद्रीय विशेषता माना है।

10.8 सार संक्षेप

उन्नीसवीं शताब्दी के पूवार्द्ध में भारत में अंग्रेज़ी राज्य स्थापित हो चुका था, और उनकी शिक्षा नीति ने बांग्ला साहित्य में उपन्यासों के प्रचलन को प्रेरित किया। हिंदी उपन्यासों पर भी बांग्ला साहित्य का गहरा प्रभाव पड़ा। हिंदी गद्य के विकास के साथ ही उपन्यासों की रचना प्रारंभ हुई, और 1877 में श्रद्धाराम ने 'भाग्यवती' उपन्यास लिखा, जिसमें नारी शिक्षा और उपदेश पर आधारित विचार दिए गए थे। इसके बाद, 1882 में लाला श्री निवासदास ने 'परीक्षा गुरु' लिखा, जो उपदेशात्मकता के साथ-साथ औपन्यासिक तत्वों से भी समृद्ध था। इस प्रकार, 'परीक्षा गुरु' को हिंदी साहित्य का पहला उपन्यास माना जाता है।

10.9 मुख्य शब्द

1. **विहंगम**:

   इसका अर्थ है विस्तृत, व्यापक, अथवा ऊँचाई से देखी गई बड़ी और विस्तृत दृष्टि। यह शब्द आमतौर पर किसी भव्य, विशाल, या व्यापक दृष्टिकोण को व्यक्त करने के लिए उपयोग किया जाता है।

2. **उद्भव**:

   उद्भव का अर्थ है उत्पत्ति, आरंभ, या किसी चीज़ की शुरुआत। यह किसी घटना, विचार, या प्रक्रिया के जन्म को दर्शाता है।

3. **सुधारवादी**:

   सुधारवादी उस व्यक्ति या विचारधारा को कहते हैं जो समाज, धर्म, राजनीति या अन्य क्षेत्रों में बदलाव और सुधार का समर्थन करता है। इसका उद्देश्य पुरानी परंपराओं या व्यवस्थाओं में सुधार लाना होता है।

4. **मार्क्सवादी**:

   यह शब्द कार्ल मार्क्स के सिद्धांतों और विचारों पर आधारित है। मार्क्सवादी विचारधारा में वर्ग संघर्ष, पूंजीवाद की आलोचना, और समाजवाद एवं साम्यवाद की वकालत शामिल है।

5. **विभीषिका**:

   विभीषिका का अर्थ है भयावहता, भयंकरता, या किसी ऐसी स्थिति जो विनाशकारी हो और जिसमें अत्यधिक भय या कष्ट हो। यह किसी आपदा, युद्ध, या त्रासदी को दर्शाने के लिए उपयोग किया जाता है।

10.10 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

1. उत्तर: सामाजिक और भावनात्मक।
2. उत्तर: ग्रामीण और शहरी।
3. उत्तर: भारतीय किसान के जीवन का यथार्थ चित्रण।
4. उत्तर: समाज सुधार और नैतिक मूल्यों।

10.11 संदर्भ ग्रन्थ

1. शर्मा, A. K. (2021). *हिंदी उपन्यास का इतिहास*. राजकमल प्रकाशन।
2. यादव, R. P. (2020). *हिंदी उपन्यास: विकास और प्रवृत्तियाँ*. राष्ट्रीय प्रकाशन गृह।
3. कुमार, S. (2022). *सामाजिक यथार्थ और हिंदी उपन्यास*. किताब घर।
4. वर्मा, P. (2023). *हिंदी उपन्यास का रूप और संरचना*. प्रभात प्रकाशन।
5. मिश्रा, M. (2024). *हिंदी उपन्यास में नारी विमर्श*. वाणी प्रकाशन।
6. सिंह, D. (2021). *काव्य से उपन्यास तक: हिंदी साहित्य का विकास*. हिंदी साहित्य समिति।

10.12 अभ्यास प्रश्न

1. हिंदी उपन्यास के प्रारंभिक विकास में बांग्ला साहित्य का योगदान क्या था?
2. 'भाग्यवती' और 'परीक्षा गुरु' उपन्यासों में क्या मुख्य अंतर है?

3. हिंदी उपन्यासों के विकास में 19वीं शताब्दी के गद्य का योगदान क्या था?
4. 'परीक्षा गुरु' उपन्यास को हिंदी साहित्य का पहला उपन्यास क्यों माना जाता है?
5. हिंदी उपन्यासों की रचना में सामाजिक परिवर्तनों का प्रभाव क्या पड़ा?

इकाई -11

कहानी

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 कहानी का उद्भव
11.4 कहानी का विकास
11.5 नई कहानी
11.6 ग्रामांचल की कहानी
11.7 परवर्ती कहानी का बदलता स्वरूप
11.8 प्रमुख कथाकार
11.9 सार संक्षेप
11.10 मुख्य शब्द
11.11 स्व प्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
11.12 संदर्भ ग्रन्थ
11.13 अभ्यास प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

कथा कहने और सुनने की प्रवृत्ति आदिम काल से चली आ रही है। आपने भी न जाने कितनी कथाएं कही और सुनी होंगी। किंतु आज आप जिस कहानी नामक विधा के विषय में पढ़ने जा रहे हैं उसका उद्भव बीसवीं शताब्दी की देन है। भले ही कहानी का स्रोत खोजने वाले कभी इसे पंचतंत्र, हितोपदेश, जातक कथा की महान कहानियों से जोड़ने का प्रयास करते हैं तो कभी ऋग्वेद के संचार सूक्तों, उपनिषदों की रूपक कथाओं, रामायण और महाभारत के उपाख्यानों से। इतना ही नहीं, वे इसका संबंध बैताल पचीसी, सिंहासन बत्तीसी से जोड़कर मध्य देशों

की अरबी-फारसी से लिखी अलिफ लैला, हजार दास्तान, गुलिस्ता-बोस्तां से जोड़ते हुए प्रसिद्ध लोक कथाओं शीरीं-फरहाद, लैला-मजनू तक पहुंच जाते हैं। इन कथाओं में विलक्षण कल्पना, घटना-जाल, चमत्कार, प्रश्नोत्तर, जिज्ञासा, संघर्ष, जय-विजय आदि का अद्भुत चित्रण मिलता है। सारांश यह कि कहानियों के आरंभ की परंपरा अति प्राचीन है। कालक्रम एवं परिस्थितियों के अनुसार इसका स्वरूप बदलता रहा। कहानी को समय-समय पर विभिन्न नामों से पुकारा जाता रहा- कथा, आख्यान, गल्प आदि।

11.2 उद्देश्य

"प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:"

1. कहानी की उत्पत्ति और उसका ऐतिहासिक विकास
2. आधुनिक हिंदी कहानी के प्रारंभ और उसके विकास के प्रमुख क्षण
3. कहानी के विभिन्न रूपों और शैलियों का परिवर्तन
4. हिंदी साहित्य में कहानी लेखन की प्रवृत्तियाँ और विषयवस्तु
5. प्रमुख हिंदी कथाकारों और उनके योगदान और स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में हुए बदलाव और नये स्वरूप

11.3 कहानी का उद्भव

इन सभी स्वीकृतियों के बाद इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि आज जिस रूप में कहानी लिखी जा रही है वह परंपरागत कदापि नहीं है। उसका स्वरूप नितांत भिन्न है। जिस प्रकार आधुनिक युग में पाश्चात्य साहित्य के

प्रभाव से हिंदी साहित्य की अन्य विधाओं यथा नाटक, उपन्यास, निबंध, समालोचना आदि का सूत्रपात हुआ उसी प्रकार से कहानी का जन्म अंग्रेज़ी की 'शार्ट स्टोरी से हुआ।

अब प्रश्न यह उठता है कि हिंदी की पहली कहानी किसे माना जाए। अन्य आधुनिक गद्य-विधाओं के समान आधुनिक कहानी का प्रवर्तन भारतेंदु युग में ही हुआ। कुछ विचारक इंशा अल्ला खां की 'रानी केतकी की कहानी को हिंदी की प्रथम कहानी मानते हैं। इसमें किस्सागोई के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। इसके बाद राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद की 'राजा भोज का स्वप्न' और भारतेंदु की एक उद्भुत अपूर्व स्वप्न' नामक कहानियां सामने आईं। इनमें कहानी नाम का कोई तत्व उपलब्ध नहीं होता। इन्हें कथात्मक शैली के निबंध कहा जा सकता है। इसी समय पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से बांग्ला, मराठी और गुजराती में भी इन कहानियों के अनुवाद होने लगे। इन अनुवादों ने ही हिंदी साहित्यकारों को कहानी लेखन के लिए प्रेरणा दी। यहीं से हिंदी की मौलिक कहानी ने स्वरूप लिया। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' नामक पत्रिका का संपादन किया था। 'सरस्वती' के प्रथम वर्ष में ही किशोरी लाल गोस्वामी की 'इंदुमती' नामक कहानी छपी और इसके बाद बंग महिला की 'दुलाई वाली' रामचंद्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' प्रकाशित हुई। इन कहानियों को हम प्रयोगशील कहानियां कह सकते हैं जिनमें कहानीकारों ने विदेशी या बांग्ला साहित्य के प्रभाव में आकर हिंदी में कहानी लिखने का प्रयास किया। कुछ विद्वान गुलेरी जी की 'उसने कहा था को हिंदी की पहली कहानी मानते हैं। अब माधवराव सप्रे की कहानी एक टोकरी भर मिट्टी को हिंदी की पहली कहानी माना जाता है, जो 1901 में प्रकाशित हुई थी।

स्वप्रगति परिक्षण

1. हिंदी कहानी का वर्तमान स्वरूप परंपरागत शैली से समानता रखता है। (सत्य/असत्य)
2. 'रानी केतकी की कहानी' को हिंदी की प्रथम आधुनिक कहानी माना जाता है। (सत्य/असत्य)
3. 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित 'इंदुमती' कहानी का लेखक किशोरी लाल गोस्वामी है। (सत्य/असत्य)
4. माधवराव सप्रे की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' को हिंदी की पहली कहानी के रूप में स्वीकारा जाता है। (सत्य/असत्य)

11.4 कहानी का विकास

1900 से लेकर आज तक कहानी लेखन का क्रम उत्तरोत्तर विकास के पथ पर अग्रसर आपके अध्ययन की सुविधा के लिए हम इसे चार भागों में विभाजित करते हैं-

1. पूर्व प्रेमचंद युग
2. प्रेमचंद प्रसाद युग
3. उत्तर प्रेमचंद युग
4. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी

1. पूर्व प्रेमचंद युग- इस काल को हिंदी कहानी का शैशव काल कहा जा सकता है। इस काल की प्रतिनिधि कहानियों के विषय में अभी ऊपर आपको बताया है- किशोरी लाल गोस्वामी की इंदुमती, रामचंद्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय', बंग महिला की 'दुलाई वाली' और माधवराव सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी'। इसी समय कुछ और कहानियां भी प्रकाश में आई किशोरी लाल गोस्वामी की 'गुलबहार', मास्टर भगवान दास की 'प्लेग की चुडेल, वृंदावनलाल वर्मा की राखी बंध भाई' आदि। इनमें किसी प्रकार की प्रौढ़ता दिखाई नहीं देती।

2. प्रेमचंद प्रसाद युग पुरानी कथा कहानियां घटना वैचित्र्य के द्वारा मनोरंजन तो कर देती थीं किंतु शिक्षित जनता को प्रभावित नहीं कर पातीं थीं। पाश्चात्य कहानी कला से परिचित होते ही हिंदी में कलापूर्ण कहानियों की सृष्टि होने लगी। सौभाग्य की बात है कि अपने प्रारंभिक काल में ही कहानी को प्रेमचंद और प्रसाद जैसी दो ऐसी रचना शक्तियां मिलीं जिन्होंने हिंदी कहानी में एक युगांतरकारी परिवर्तन किया। इन दोनों रचना शक्तियों का क्षेत्र अलग था। एक कहानी को समाज के व्यापक संदर्भों से जोड़ रही थी और दूसरी व्यक्ति की प्रतिष्ठा को रेखांकित कर रही थी।

प्रेमचंद की कुछ कहानियां पहले उर्दू की 'जमाना' पत्रिका में (1907) प्रकाशित हुईं। इसके साथ ही 'सरस्वती' में उन्होंने हिंदी में कहानियां लिखनी आरंभ कीं। 'सौत, 'पंच परमेश्वर', 'बूढ़ी काकी', 'ईश्वरीय न्याय', 'दुर्गा का मंदिर' उसी समय की कहानियां हैं। कहानी साहित्य में प्रेमचंद का प्रवेश सर्वथा युगांतरकारी सिद्ध हुआ। उन्होंने साहित्यिक जगत में आते ही कल्पना को यथार्थवाद की ओर उन्मुख कर दिया। वह जनता के सुख-दुख में भाग लेने वाले कलाकार थे। इसलिए उनकी कहानियों में समस्त भारतीय समाज मुखरित हो उठा। स्वाधीनता की लड़ाई, संयुक्त परिवार में विघटन, जातीय एकता, किसानों की समस्याएं, अछूतोद्धार, विधवा समस्या, औद्योगिकरण, सांप्रदायिक द्वेश, सामाजिक रूढियां, धर्म, जाति और परंपरा से संबंधित अनेक विषय उनकी कहानियों में आकार लेने लगे। उन्होंने लगभग 300 कहानियां लिखीं जिनमें से प्रमुख कहानियां मानसरोवर के आठ भागों में संकलित हैं। 'बड़े घर की बेटी', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'पूस की रात', 'ठाकुर का कुआं' और 'कफन' उनकी प्रसिद्ध कहानियां हैं।

सन् 1911 में जयशंकर प्रसाद की 'ग्रंथि' कहानी 'इंदु' नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई। इससे हिंदी कहानी में एक महत्वपूर्ण मोड़ आया। प्रसाद मूलतः कवि थे अतः उनकी कहानियों में छायावाद की मूल प्रवृत्ति 'वैयक्तिकता की सूक्ष्म प्रतिच्छाया दिखाई देती है। अधिकांश कहानियों में वैयक्तिक सुख-दुःख वैयक्तिक

द्वंद्व का चित्रण मिलता है। 'आकाशदीप', 'पुरस्कार', 'मछुआ', 'ममता' आदि इसी प्रकार की कहानियां हैं। 'छाया', प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आंधी, 'इंद्रजाल' प्रसाद की कहानियों के संकलन हैं।

इस काल के अन्य कहानी लेखकों में प्रमुख हैं- चंद्रधर शर्मा गुलेरी। इन्होंने तीन कहानियां लिखीं- 'सुखमय जीवन', 'बुद्ध का कांटा' और 'उसने कहा था। इनका नाम केवल एक कहानी 'उसने कहा था' से ही हिंदी साहित्य के इतिहास में अमर रहेगा।

विशंभरनाथ शर्मा कौशिक और सुदर्शन प्रेमचंद परंपरा के कहानीकार हैं। इन्होंने प्रेमचंद की भांति ही अपने आस-पास से कहानियों के विषय चुने। कौशिक की 'ताई' और सुदर्शन की 'हार की जीत' प्रसिद्ध कहानियां हैं।

इसी काल में राधाकृष्ण दास और विनोद शंकर व्यास ने प्रसाद की तरह भाव प्रधान कहानियां लिखीं। चतुरसेन शास्त्री ने विभिन्न युगों के ऐतिहासिक प्रसंगों पर आधारित अनेक मार्मिक कहानियों की रचना की। 'उग्र' ने परंपरा से हटकर विद्रोह का स्वर मुखरित किया। वृंदावनलाल वर्मा ने प्रमुखतः ऐतिहासिक कहानियां लिखीं।

इस युग के अन्य प्रमुख कहानीकार हैं- भगवती प्रसाद वाजपेयी, राहुल सांकृत्यायन, सुभद्रा कुमारी चौहान, उषा देवी मित्रा आदि।

हिंदी कहानी के विकास की दृष्टि से यह युग अत्यंत महत्वपूर्ण रहा। प्रसाद और प्रेमचंद की रचना प्रक्रिया ने हिंदी कथा साहित्य में दो निश्चित धाराओं को स्वरूप दिया व्यक्ति और समाज। आगे चलकर प्रसाद की इस व्यक्तिवादी चिंतनधारा को जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी तथा अज्ञेय ने और प्रेमचंद की समाजवादी चिंतनधारा को यशपाल, भीष्म साहनी, ज्ञानरंजन और अमरकांत ने आगे बढ़ाया।

3.उत्तर प्रेमचंद युग उपन्यास का विकास पढ़ते हुए आपने यह जाना कि इस युग में दो प्रमुख प्रवृत्तियों ने संपूर्ण साहित्य को प्रभावित किया- मनोवैज्ञानिक और समाजवादी यथार्थवाद। इनके प्रेरक थे फ्रायड एवं कार्ल मार्क्स। हिंदी कहानी पर

भी इन दोनों चिंतकों का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। प्रेमचंद और प्रसाद के बाद हिंदी कहानी को नया आयाम देने वालों में • जैनेंद्र का नाम प्रमुख है। उन्होंने कथावस्तु को सामाजिक धरातल से ऊपर उठाकर व्यक्तिगत और मनोवैज्ञानिक भूमिका पर प्रतिष्ठित किया। 'खेल'. 'अपना-अपना भाग्य', 'नीलम देश की राजकन्या', 'पाजेब' आदि में जैनेंद्र ने व्यक्ति मन की शंकाओं, प्रश्नों तथा आंतरिक गुत्थियों को अंकित किया है। इसके अतिरिक्त अधिकांश कहानियों का मुख्य विषय नारी है। यह नारी पातिव्रत्य की चहारदीवारी से बाहर निकलकर मुक्ति की सांस लेना चाहती है। 'जाहनवी', 'रत्नप्रभा', 'दो सहेलियां', 'प्रमिला', 'मानरक्षा' आदि की गणना इसी संदर्भ में रेखांकित की जा सकती है।

इलाचंद्र जोशी ने कथा-साहित्य में व्यक्तिवाद को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। उनका चिंतन जैनेंद्र से भिन्न है। वह मानव मन की गहराइयों में झांककर व्यक्ति-मन के भीतर दमित वासनाओं तथा कुंठाओं का विश्लेषण करते हैं। उनकी कहानियों के अधिकांश पात्र चोर, जुआरी, लंपट, मद्यप और हत्यारे है। ये सभी पात्र किसी न किसी हीन भावना के शिकार होते हैं। 'आहुति', 'डायरी के नीरस पृष्ठ दुष्कर्मी आदि इसी प्रकार की कहानियां हैं। अज्ञेय, प्रेमचंद परवर्ती कथा-साहित्य के प्रमुख कहानीकार हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में व्यक्ति चरित्र को प्रधानता दी है। उनकी यह धारणा है कि व्यक्ति को नैतिक दायित्व की क्षमता से संपन्न करके ही समाज का नैतिक धरातल ऊंचा किया जा सकता है। अतः व्यक्ति स्वातंत्र्य आवश्यक है। यह समाज का अध्ययन व्यक्ति के माध्यम से करते हैं और समाज की गली-राड़ी, खोखली मान्यताओं के बदले व्यक्ति के भीतर स्थित दृढतर मान्यताओं को प्रतिष्ठित करने की चेष्ठा करते हैं। इनके चिंतन पर देशी और विदेशी चिंतकों का प्रभाव है। यदि केवल उनके कहानी संबंधी, चिंतन पर दृष्टि केंद्रित की जाए तो वह पश्चिमी दार्शनिक ज्यां पाल सार्च के अस्तित्ववादी चिंतन से प्रभावित दिखाई देते हैं। अज्ञेय का प्रथम कहानी संग्रह 'त्रिपथगा' 1931 में प्रकाशित हुआ था। 'रोज उनकी प्रसिद्ध कहानी है।

इस व्यक्तिवादी धारा के साथ ही इस समय यशपाल ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से समाज में फैली सब प्रकार की कुरूपताओं का पर्दाफाश किया। उनके कथ्य का क्षेत्र इतना व्यापक रहा कि समाज की कोई भी विकृति उनकी आंखों से ओझल नहीं हुई। उनकी दृष्टि मार्क्सवादी थी अतः उनका लक्ष्य एक ही रहा- सामाजिक वैषम्य का उद्‌घाटन करना। इनके कहानी संग्रहों- 'पिंजड़े', 'वो दुनिया', 'ज्ञानदान', 'तर्क का तूफान', 'भस्मावृत', 'चिंगारी', 'अभिशप्त', 'फूलों का कुरता', 'उत्तमी की मां', 'सच बोलने की भूल' और 'तुमने क्यों कहा था. मैं सुंदर हूं' आदि उल्लेखनीय हैं। 'मक्रील', 'वो दुनिया', 'गण्डेरी', 'पराया सुख', 'करवा का व्रत, उनकी प्रसिद्‌ध कहानियां हैं। इनमें समस्या कोई भी हो नारी के शोषण की या पुरुष के शासन की, वर्ग वैषम्य की आर्थिक विषमता की, धर्म संबंधी मिथ्या विश्वासों की या समाज में फैले भ्रष्टाचार की, पात्र उनकी विचारधारा के अनुरूप स्वरूप लेते रहे। इस प्रकार प्रत्येक कहानी में उनका समाजवादी चिंतन ही प्रमुख रहा है।

इस समाजवादी परंपरा पर आगे चलकर राहुल, रांगेय राघव, नागार्जुन ने सशक्त कहानियां लिखी। विष्णु प्रभाकर और उपेंद्रनाथ अश्क ने भी इसी समय कहानी के क्षेत्र में अपना नाम स्थापित किया। इनके पात्र मध्यवर्ग और निम्नवर्ग से संबंधित हैं। विष्णु प्रभाकर की 'धरती अब भी घूम रही है और उपेंद्रनाथ अश्क की 'डाची' दोनों कहानियां हिंदी कथा-साहित्य की चर्चित कहानियां हैं। इनकी कहानियों में व्यक्ति एवं समाज दोनों ही प्रमुख रहे। सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन को प्रश्रय देने वाले कहानीकारों में चंद्रगुप्त विद्‌यालंकार, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, भगवतीचरण वर्मा के नाम महत्वपूर्ण हैं। ऐतिहासिक परंपरा की कहानियों में वृंदावनलाल वर्मा प्रमुख हैं।

इस प्रकार इस युग में हिंदी कहानी अपने विकास की प्रारंभिक अवस्थाओं को पार करते हुए वहां पहुंच गई जहां से इसके श्रेष्ठ रूप के दर्शन होने लगते हैं।

4.स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी यह वह समय था जब देश स्वतंत्र हो चुका था। सत्ता कांग्रेस के हाथ में थी। संविधान निर्मित हो चुका था। गणतंत्र के आलोक में संवेदनशील कथाकार सत्ता के स्थानांतरण को पहचान रहे थे। विभाजन के साथ जुड़े हुए संहार, ध्वंस और सामूहिक हत्याओं ने मानवीय मूल्यों का जो विघटन किया उसे यशपाल, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, उपेंद्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर, जैनेंद्र और बाद में मोहन राकेश तथा भीष्म साहनी ने चित्रित किया। इन्हीं दिनों अज्ञेय का 'शरणार्थी' नामक संग्रह प्रकाशित हुआ। इन सब में उस काल के निम्न मध्यवर्गीय और मध्यवर्गीय जीवन के वास्तव में बाह्य पक्ष का चित्रण था। इसके भीतर जो मानसिक ध्वंस गांवों, कस्बों, नगरों, महानगरों आदि में झेला जा रहा था, उसकी स्थिति ही दूसरी थी। इसी समय . एक विशेष प्रकार का बोध कहानी में उभर रहा था जिसे आंचलिक बोध का नाम दिया गया। इसी के समानांतर शहरीकरण की कठिनताओं से उत्पन्न हुआ एक दूसरा बोध था- नगर तथा महानगरीय बोध ।

इस प्रकार कहानी के क्षेत्र में एक साथ कई मोड़ आ रहे थे। अधिकांश कहानीकार जीवन से जुड़ने की चेष्टा कर रहे थे। किंतु कुछ नवीन प्रयोग भी हो रहे थे। कहानी के वस्तु विधान और शिल्प विधान दोनों में इस बदलाव को स्पष्ट देखा जा सकता है।

सन् 1950 के बाद कहानियों में व्यक्तिवादी स्वर प्रमुख होने लगा। मार्क्स और फ्रायड के प्रभावों से आगे बढ़कर अस्तित्ववादी दर्शन ने जीवन के बुनियादी सवालों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया। स्वतंत्रता से प्राप्त होने वाले सुख की कल्पना शीघ्र ही विच्छिन्न हो गई। व्यक्ति एक तरह का कटाव और अलगाव महसूस करने लगा। मानवीय मूल्यों का सर्वथा ह्रास होने लगा किंतु फिर भी जीवन के प्रति आस्था बाकी थी।

अज्ञेय ने मुख्यतया व्यक्तिगत आत्मसंघर्ष तथा व्यक्ति और परिवेश के संघर्ष का चित्रण किया। 'रोज', 'पहाड़ का धीरज', 'हीली बोन की बत्तखें कहानियां नए

यथार्थ पर आधारित हैं। उन्होंने बिंबों, प्रतीकों और नाटकीय स्थितियों के चित्रण द्वारा कहानियों को अर्थ के विभिन्न स्तर दिए। 'त्रिपथगा', 'परंपरा', 'कोठारी की बात', 'शरणार्थी', 'जयदोल', 'अमर बल्लरी', 'ये तेरे प्रतिरूप' इनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं। आगे चलकर निर्मल वर्मा, रामकुमार, उषा प्रियंवदा की कहानियों ने इस अस्तित्ववादी चिंतन को एक नया मोड़ दिया।

यशपाल ने भी इस बदलाव की स्थिति को बड़ी गहराई से महसूस किया। उनकी अधिकांश कहानियां सामाजिक चेतना से अनुप्राणित हैं। उन्होंने अपनी

कहानियों के माध्यम से आर्थिक, नैतिक, धार्मिक, सैक्स-विषयक समस्याओं का चित्रण करके सामाजिक वैषम्य पर प्रबल प्रहार करने की चेष्टा की। स्त्री-पुरुष के समान अधिकार दिलाना चाहते थे इसलिए स्त्री की आत्म निर्भरता में विश्वास रखते थे। इस विषय में उन्होंने बहुत सी कहानियां लिखीं जिनमें 'करवा का व्रत' कहानी उल्लेखनीय है।

यशपाल के बाद भीष्म साहनी, अमरकांत, ज्ञानरंजन, बदी उज्जमा, काशीनाथ सिंह ने इस विचारधारा को बल दिया। विष्णु प्रभाकर ने भी अपनी चिंतन धारा को बदला। कहानी के क्षेत्र में उनका विकास अप्रत्याशित है। 'धरती अब भी घूम रही है, उनकी सबसे अधिक चर्चित कहानी है। जून 1987 की सारिका में छपी कहानी 'एक आसमान के नीचे' विष्णु प्रभाकर की कथा-यात्रा में एक मील का पत्थर है। इसमें सुंदर कलात्मक रचाव है जो देश और विदेश के परिवेश को समेटे हुए है। उनके कई संकलन 'आदि और अंत', 'रहमान का बेटा, 'जिंदगी के थपेड़े', 'संघर्ष के बाद', 'द्वंद्व', 'मेरा वतन', 'धरती अब भी घूम रही है', 'खिलौने', 'पुल के टूटने से पहले', 'मेरी प्रिय कहानियां आदि प्रकाशित हो चुकी हैं। उपेंद्रनाथ अश्क की कहानियों में अत्यधिक विविधता है। उनकी कहानियों में भी प्रेमचंद की भांति सभी वर्गों के पात्र हैं किंतु अधिकांशतया मध्यमवर्गीय एवं निम्नवर्गीय पात्रों का यथार्थ चित्रण मिलता है। 'डाची' उनकी प्रसिद्ध कहानी है। इसमें मानवीय करुणा की जो सहज अविरल धारा प्रवाहित होती है वह बेजोड़ है। 'सत्तर

श्रेष्ठ कहानियां उनकी चुनींदा कहानियों का संकलन है। अश्क जी ने प्रायः सभी कथा-धाराओं में योगदान दिया। इन्होंने अपनी कहानियों में व्यक्ति और समाज दोनों को ही प्रमुखता दी।

इसी समय कहानी में एक दूसरी विचारधारा भी पनप रही थी जहां हिंदी कथाकार कहानी के पुराने कलेवर से मुक्ति पाने के लिए और नए अनुभव संसार से स्वयं को जोड़ने के लिए एक नई चेतना तलाश रहा था।

11.5 नई कहानी

सन् 1955 में कहानी पत्रिका का प्रकाशन हुआ। नवीन चेतना की खोज करने वाले कहानीकारों को इस दौर को आगे बढ़ाने का अवसर मिला। उन्होंने 1956-57 में इसका नाम नई कहानी रख दिया। अब कहानी में नए संदर्भों की खोज होने लगी। उलझनपूर्ण मोड़ और चमत्कारपूर्ण चरम सीमाओं की अपेक्षा आंतरिक अन्विति पर बल दिया जाने लगा। जीवन की पहचान कहानीकार के लिए महत्वपूर्ण हो गई। अब वह अपनी अनुभूति की सघनता के लिए नए-नए बिंबों और प्रतीकों का प्रयोग करने लगा।

नई कहानी के प्रवर्तकों में से प्रमुख नाम हैं-मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी, निर्मल वर्मा, उषा प्रियंवदा। इनकी कहानियों के कथ्य में विविधता है। अधिकांश कहानियां कथाकारों के अपने जीवनानुभव से प्रेरित हैं। गांव का ठहरा हुआ
जीवन हो या नगर-महानगर की भागमभाग अथवा पहाड़ की शांत निःस्तब्धता, वहां रहने वाले पात्र स्थितियों के अनुरूप स्वतः रूप लेते चले जाते हैं। मलबे का मालिक, 'मिस पाल', 'खाली', 'आखिरी सामान', 'आर्दा', 'एक और जिंदगी', 'उसकी रोटी, राकेश की चर्चित कहानियां हैं। अधिकांश कहानियां निम्न मध्यवर्ग व मध्यवर्ग से संबंधित हैं।। इनमें मूल्यों के विघटन, अकेलेपन, संत्रास और व्यक्ति

की अपनी अस्मिता के प्रश्न को भी रेखांकित किया गया है। इन सभी में गहरी मानवीय संवेदना है। कमलेश्वर की 'देवा की मां', 'तलाश', 'राजा निरबंसिया', 'जो लिखा नहीं जाता', 'दुखभरी दुनिया', 'खोयी हुई दिशाएं आदि कहानियां आम आदमी की टूटन, घुटन, बिखराव, यातना व मजबूरी का चित्रण करती हैं। राजेंद्र यादव ने सामान्य व्यक्तिगत अनुभवों को नए-नए सामाजिक संदर्भों में ढालकर बहुत सी कहानियां लिखीं। इनमें 'खुशबू, 'टूटना', 'भविष्य' हैं। मन्नू भंडारी और उषा प्रियंवदा ने अपनी कहानियों में जीवनी की जटिल और गहरी सच्चाइयों का साक्षात्कार करने की चेष्टा की। भले ही दोनों का दृष्टिकोण भिन्न है। मन्नू भंडारी सामाजिकता को महत्व देती है तो उषा प्रियंवदा वैचारिकता को। किंतु दोनों अपने जीवनानुभवों को एक ऐसी प्रामाणिक सच्चाई के साथ सामने रखती हैं कि रचना प्राणवान हो जाती है। मन्नू की 'यही सच है', 'ऊचाई' और उषा प्रियवंदा की 'कितना बड़ा झूठ', 'मछलियां' इसी प्रकार की कहानियां हैं। वातावरण को उसकी संपूर्ण संवेदना के साथ उभारने में शिवानी को विशेष सफलता मिली है। आगे चलकर कृष्णा सोबती, ममता कालिया, मालती जोशी, सुधा अरोड़ा, मृदुला गर्ग, मृणाल पांडे आदि अन्य कई कहानी लेखिकाओं ने विकास की परंपरा में विशेष सहयोग दिया।

निर्मल वर्मा एक लंबे अरसे तक यूरोप में रहे। पाश्चात्य साहित्य से जुड़कर इनकी कहानी ने सर्वथा अलग स्वरूप ले लिया। अधिकांश कहानियां व्यक्ति-सत्य की हैं इनमें अस्तित्व की खोज व तलाश है। 'लंदन की एक रात', 'पिक्चर पोस्टकार्ड', 'परिंदे' इनकी श्रेष्ठ कहानियां हैं। रामकुमार, महेंद्र भल्ला, कृष्ण बलदेव वैद, प्रयाग शुक्ल इसी कोटि के कहानीकार हैं।

11.6 ग्रामांचल की कहानी

इन कहानीकारों में शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय और फणीश्वरनाथ रेणु, शेखर जोशी और विवेकी राय के नाम मुख्य हैं। इनकी कहानियों में जो गांव की

मिट्टी की सोंधी महक और गांव के लोगों का जीवन देखने को मिलता है, वह अपूर्व है। रेणु की 'तीसरी कसम' और शेखर जोशी की 'कोसी का घटवार' अत्यंत प्रभावपूर्ण कहानियां हैं। रांगेय राघव, शैलेश मटियानी, मधुरकर गंगाधर, शानी आदि कहानीकारों ने इसी परंपरा को आगे बढ़ाया। इस प्रकार कहानी को कितने ही मोड़ों से गुजरना पड़ा इसीलिए समय-समय पर उसे नए नामों से भी संबोधित किया जाता रहा; यथा नई कहानी, समानांतर कहानी, अकानी, सचेतन कहानी, अचेतन कहानी, सक्रिय कहानी आदि। आज कहानी के क्षेत्र में रूप विषयक पुरानी धाराणाएं टूट चुकी हैं। केवल जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति ही महत्वपूर्ण है। कहानी अब बिंबों और प्रतीकों से भी मुक्त हो चुकी हैं। कहानी के समुचित विकास में पत्र-पत्रिकाओं का योगदान भी महत्वपूर्ण है।

11.7 परवर्ती कहानी का बदलता स्वरूप

सन् 60-65 के बाद की लिखी कहानियों में अधिक उग्रता और निर्ममता है। ये कहानियां प्रायः उन लेखकों की है जिन्होंने स्वतंत्र भारत का क्रूर यथार्थ अपनी आंखों से देखा। इनमें से उल्लेखनीय है- दूधनाथ सिंह, महीप सिंह, ज्ञानरंजन, गिरिराज किशोर, काशीनाथ सिंह, रमेश उपाध्याय और गोविंद मिश्र ।

स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व को चित्रित करने वाली कहानियां ममता कालिया, सुधा अरोड़ा, निरूपमा सेवती, अनिता औलक, दीप्ति खंडेलवाल, राजी सेठ, मृणाल पांडे आदि ने लिखी।

इस दौर में उभरने वाले विद्रोह और आक्रोश ने कहानी को एक सपाटबयानी दी। कहानी का रूपबंध बदल गया। उसमें तत्वों की कोई प्रधानता नहीं रही। वह बिंबों और प्रतीकों से भी मुक्त हो गई। अब निबंध, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, संस्मरण, डायरी आदि विधाएं भी

कहानी में सम्मिलित हो गई। परिणामस्वरूप कहानियों में जीवन यथार्थ को निसंग रूप से अभिव्यक्त करने की क्षमता आई।

11.8 प्रमुख कथाकार

• प्रेमचंद (1880-1936)

प्रेमचंद का जन्म उत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध नगर वाराणसी से लगभग छह किलोमीटर दूर लमही नामक ग्राम में 31 जुलाई 1880 ई. को हुआ। उनका पहला नाम धनपतराय था। बाल्यावस्था से ही उनकी उपन्यास और कहानियां आदि पढ़ने में विशेष रूचि थी। उनकी पहली कहानी 'संसार का सबसे अनमोल रत्न' अपने समय की प्रसिद्ध उर्दू पत्रिका 'जमाना' में सन् 1907 में छपी थी। बाद में उन्होंने हिंदी में प्रेमचंद के नाम से लिखना शुरू किया।

उन्होंने अपने जीवन काल में लगभग 300 कहानियां और 13 उपन्यासों की रचना की। इसके अतिरिक्त उन्होंने नाटक, निबंध, जीवनी, सामयिक विषयों पर लेख आदि भी लिखे। किंतु उनकी ख्याति का मूलाधार कथा साहित्य ही है। उन्हें हिंदी कथा-साहित्य का सम्राट कहा जाता है।

प्रेमचंद के आगमन से पूर्व भारतेंदु युग में कथा-साहित्य का आरंभ हो चुका था। इस समय केवल घटना-प्रधान तिलस्मी, जासूसी एवं ऐय्यारी उपन्यासों की ही रचना की जाती थी। प्रेमचंद ने कहानी और उपन्यास को कोरी कल्पनाओं के क्षितिज से उतारकर जीवित यथार्थ के साथ जोड़ दिया। उन्होंने घटना के स्थान पर चरित्र को महत्व दिया और जीवन की वास्तविक समस्याओं को केंद्र में रखा। प्रायः उनके उपन्यासों का लक्ष्य समाज-सुधार था। उनके अधिकांश उपन्यासों और कहानियों में सामाजिक विकृतियों पर चोट की गई है। स्वाधीनता की लड़ाई, संयुक्त परिवार में विघटन, जातीय एकता, किसानों की समस्याएं, अछूतोद्धार, विधवा समस्या, देशी रियासतों की समस्याएं.

औद्योगिकीकरण, सांप्रदायिक द्वेश, समाज के रुदिग्रस्त रिवाज, जाति-धर्म और परंपरा अनेक ऐसे कोण हैं जिन्हें प्रेमचंद की लेखनी ने अपना विषय बनाया। इससे यह ज्ञात होता है कि वे अपने समसामयिक क्रूर और निर्मम समाज के साथ निरंतर एक साहित्यिक लड़ाई लड़ते रहे।

प्रेमचंद के उपन्यासों में 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'निर्मला'. 'गबन', 'कर्मभूमि', 'गोदान' प्रमुख हैं। 'मंगलसूत्र' इनका अधूरा उपन्यास है। इन सभी रचनाओं में निम्न, निम्नमध्य एवं मध्यवर्ग की चेतना को अभिव्यक्ति दी गई है। इनका दृष्टिकोण आदर्शोन्मुख यथार्थवादी रहा।

उपन्यासकार के समान प्रेमचंद एक सघन एवं सशक्त कहानीकार भी हैं। वे ग्रामीण जीवन से संबद्ध थे अतः अधिकांश कहानियां गांव की जिंदगी की उपज हैं। किंतु उनके आसपास का परिवेश भी स्वतः मूर्त हो उठा है। उनकी अधिकांश कहानियों में सामाजिक कुरीतियों के प्रति सुधार का आग्रह, पराजय-पतन के प्रति आदर्श की प्रतिष्ठा और दुःखी पीड़ित मानवता के प्रति अथाह संवेदना का प्राधान्य मिलता है। पंच परमेश्वर', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'ईदगाह', 'बूढ़ी काकी', 'कफन' और 'पूस की रात' और 'ठाकुर का कुआं इनकी प्रसिद्ध कहानियां हैं। प्रेमपचीसी, सप्त सरोज, प्रेम पूर्णिमा, प्रेम द्वादशी, प्रेम पीयूष, प्रेम-प्रतिमा, प्रेम प्रसून, सप्त सुमन, प्रेम प्रमोद, प्रेम चतुर्थी इनकी कहानियों के संकलन हैं। उनकी प्रतिनिधि कहानियां मानसरोवर के आठ भागों में संकलित हैं। इन कहानियों को पढ़कर प्रेमचंद के समसामयिक युग की धड़कन को महसूस किया जा सकता है। प्रेमचंद सच्चे अर्थों में विकासोन्मुख सामाजिक जीवन के चितेरे थे। निश्चय ही उन्हें हिंदी साहित्य का मूर्धन्य लेखक स्वीकार किया जा सकता है।

• जयशंकर प्रसाद (1889-1937)

जयशंकर प्रसाद का जन्म वाराणसी के प्रसिद्ध धनी परिवार में सन् 1889 में हुआ। इनके पिता देवी प्रसाद साहित्य में रुचि रखते थे। साहित्यकारों का जमघट उनके घर में लगा ही रहता था। अतः बाल्यावस्था से ही इन पर वही संस्कार

पड़ने लगे। छोटी आयु में ही यह कविता करने लगे। प्रसाद का संपूर्ण साहित्य उनके गंभीर, अध्ययन, चिंतन और मनन का प्रतिफलन है।

प्रसाद मूलतः कवि थे किंतु उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्होंने नाटक, उपन्यास, कहानियां और निबंध भी लिखे। वे अपने समय के सर्वश्रेष्ठ कवि व प्रमुख नाटककार माने जाते थे। कहानीकार के रूप में उन्हें विशेष ख्याति मिली।

उन्होंने केवल तीन उपन्यास लिखे। कंकाल, तितली और इरावती। इरावती उनका अधूरा उपन्यास है। वे भारत की सांस्कृतिक परंपरा एवं गौरवशाली मर्यादा के पोषक थे किंतु विभिन्न सामाजिक समस्याओं के प्रति उनका दृष्टिकोण व्यक्तिवादी था। कंकाल' में प्रसाद ने समाज के पीड़ित शोषित वर्गों, यौन दुर्बलताओं, जाति-भेद एवं धार्मिक पाखंडों आदि का यथार्थ एवं मार्मिक चित्रण किया है। 'कंकाल' के माध्यम से वे एक प्रमुख विकास ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे जिसमें सभी व्यक्ति स्वतंत्र हों और अपने दायित्व का वहन स्वयं करें। 'तितली' उपन्यास में अंतर्जातीय विवाह का समर्थन किया गया है। इसमें प्रेम के उच्च आदर्श की स्थापना की गई है।

उपन्यास की अपेक्षा प्रसाद को कहानी के क्षेत्र में अधिक सफलता प्राप्त हुई। इन्होंने कुल मिलाकर 69 कहानियां रचीं। 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आंधी' और 'इंद्रजाल' इनके प्रकाशित कहानी संग्रह हैं।

हिंदी कहानी की विकास यात्रा में प्रेमचंद की भांति जयशंकर प्रसाद की एक निश्चित भूमिका है। उनकी कहानियों में व्यक्ति-मन के भावजगत में निहित प्रेम, करुणा, सहानुभूति, ईर्ष्या आदि वृत्तियों को चित्रित किया गया है। साथ ही व्यक्ति मन के भीतरी द्वंद्व को भी उभारने की चेष्टा की गई है। उनके पात्र प्रेम और सौंदर्य की चेतना लेकर अवतरित होते हैं। नारी पात्रों की सृष्टि में प्रसाद अद्वितीय हैं। इनके नारी पात्र निश्छल प्रेम, त्याग और बलिदान से पाठकों के मन पर अमिट प्रभाव छोड़ जाते हैं। 'आकाशदीप' की 'चंपा', 'पुरस्कार की

मधूलिका' ऐसे ही नारी पात्र हैं। इस प्रकार प्रसाद का कथा-साहित्य मूलतः व्यक्ति मन के मंथन का परिणाम कहा जा सकता है।

• यशपाल (1903-1976)

हिंदी साहित्य में रूसो, वाल्टेयर और कार्ल मार्क्स के चिंतन से प्रभावित जो समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासों की धारा चली, यशपाल उस धारा के प्रवर्तक माने जाते हैं। इनका मूल उद्देश्य सामाजिक वैषम्य का उद्घाटन करना है। अतः वे अपनी रचनाओं द्वारा इस विषमता के और पहलुओं (यथा धार्मिक, आर्थिक, नैतिक एवं सामाजिक) पर प्रहार करते चले जाते हैं।

उपन्यासकार के रूप में उन्होंने सामाजिक चेतना को अपने चिंतन का विषय बनाया। इसमें मानव-विकास के चिंतन और चेतना की ऐतिहासिकता विद्यमान है। इसी आधार पर उन्होंने मानव मात्र के धर्म, भाग्य एवं ईश्वर संबंधी विश्वासों पर प्रश्न चिह्न लगाया और इन्हें पूंजीवादी सत्ता की देन मानकर इनका खंडन किया।

'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'पार्टी कामरेड', 'मनुष्य के रूप' इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। जिनमें यशपाल ने गांधीवादी, पूंजीवादी और उग्रवादी विचारों का विरोध करके समाजवादी चिंतन का समर्थन किया है। 'दिव्या', 'अमिता' इनके ऐतिहासिक उपन्यास हैं। झूठा सच (दो भाग) देश के विभाजन की समस्या पर लिखा एक वृहद् उपन्यास है। इस उपन्यास को यशपाल का कीर्ति स्तंभ माना जा सकता है। 'मेरी तेरी उसकी बात' उपन्यास भारत के स्वतंत्रता पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर काल के सामाजिक, राजनीतिक जीवन पर आधारित है। 'बारह घंटे' इनका एक भिन्न प्रकार का उपन्यास है।

यशपाल का कहानीकार अपने संपूर्ण परिवेश के प्रति सजग है। वे प्रगतिवादी विचारधारा के प्रतिनिधि कहानीकार हैं। वह कहानी के माध्यम से मानव समाज की विकृतियों पर चोट करके, समाज में

फैली कुत्सित घृणित प्रवृत्तियों को उभार कर उनके प्रति घृणा का भाव पैदा करके स्वस्थ सामाजिक मूल्यों की स्थापना करना चाहते हैं।

ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे जिसमें सभी व्यक्ति स्वतंत्र हों और अपने दायित्व का वहन स्वयं करें। 'तितली' उपन्यास में अंतर्जातीय विवाह का समर्थन किया गया है। इसमें प्रेम के उच्च आदर्श की स्थापना की गई है।

उपन्यास की अपेक्षा प्रसाद को कहानी के क्षेत्र में अधिक सफलता प्राप्त हुई। इन्होंने कुल मिलाकर 69 कहानियां रचीं। 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आंधी' और 'इंद्रजाल' इनके प्रकाशित कहानी संग्रह हैं।

हिंदी कहानी की विकास यात्रा में प्रेमचंद की भांति जयशंकर प्रसाद की एक निश्चित भूमिका है। उनकी कहानियों में व्यक्ति-मन के भावजगत में निहित प्रेम, करुणा, सहानुभूति, ईर्ष्या आदि वृत्तियों को चित्रित किया गया है। साथ ही व्यक्ति मन के भीतरी द्वंद्व को भी उभारने की चेष्टा की गई है। उनके पात्र प्रेम और सौंदर्य की चेतना लेकर अवतरित होते हैं। नारी पात्रों की सृष्टि में प्रसाद अद्वितीय हैं। इनके नारी पात्र निश्छल प्रेम, त्याग और बलिदान से पाठकों के मन पर अमिट प्रभाव छोड़ जाते हैं। 'आकाशदीप' की 'चंपा', 'पुरस्कार की मधूलिका' ऐसे ही नारी पात्र हैं। इस प्रकार प्रसाद का कथा-साहित्य मूलतः व्यक्ति मन के मंथन का परिणाम कहा जा सकता है।

• यशपाल (1903-1976)

हिंदी साहित्य में रूसो, वाल्टेयर और कार्ल मार्क्स के चिंतन से प्रभावित जो समाजवादी यथार्थवादी उपन्यासों की धारा चली, यशपाल उस धारा के प्रवर्तक माने जाते हैं। इनका मूल उद्देश्य सामाजिक वैषम्य का उद्घाटन करना है। अतः वे अपनी रचनाओं द्वारा इस विषमता के और पहलुओं (यथा धार्मिक, आर्थिक, नैतिक एवं सामाजिक) पर प्रहार करते चले जाते हैं।

उपन्यासकार के रूप में उन्होंने सामाजिक चेतना को अपने चिंतन का विषय बनाया। इसमें मानव विकास के चिंतन और चेतना की ऐतिहासिकता विद्यमान है। इसी आधार पर उन्होंने मानव मात्र के धर्म, भाग्य एवं ईश्वर संबंधी विश्वासों पर प्रश्न चिह्न लगाया और इन्हें पूंजीवादी सत्ता की देन मानकर इनका खंडन किया।

'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'पार्टी कामरेड', 'मनुष्य के रूप' इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। जिनमें यशपाल ने गांधीवादी, पूंजीवादी और उग्रवादी विचारों का विरोध करके समाजवादी चिंतन का समर्थन किया है। 'दिव्या', 'अमिता' इनके ऐतिहासिक उपन्यास हैं। झूठा सच (दो भाग) देश के विभाजन की समस्या पर लिखा एक वृहद् उपन्यास है। इस उपन्यास को यशपाल का कीर्ति स्तंभ माना जा सकता है। 'मेरी तेरी उसकी बात' उपन्यास भारत के स्वतंत्रता पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर काल के सामाजिक, राजनीतिक जीवन पर आधारित है। 'बारह घंटे' इनका एक भिन्न प्रकार का उपन्यास है।

यशपाल का कहानीकार अपने संपूर्ण परिवेश के प्रति सजग है। वे प्रगतिवादी विचारधारा के प्रतिनिधि कहानीकार हैं। वह कहानी के माध्यम से मानव समाज की विकृतियों पर चोट करके, समाज में फैली कुत्सित घृणित प्रवृत्तियों को उभार कर उनके प्रति घृणा का भाव पैदा करके स्वस्थ सामाजिक मूल्यों की स्थापना करना चाहते हैं।

पिंजड़े की उडान', 'वो दुनिया', 'अभिशप्त', 'तर्क का तूफान, 'भरमावृत्त चिंगारी', फूलों का कुर्ता', 'उत्तमी की मां, 'सच बोलने की भूल', 'तुमने क्यों कहा था कि मैं सुंदर हूं' आदि यशपाल के प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं।

• वृंदावन लाल वर्मा (1889-1969)

वृंदावन लाल वर्मा ने प्रेमचंद-युग से उपन्यास लिखना प्रारंभ किया था। हिंदी में शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना-परंपरा को आरंभ करने का श्रेय भी इन्हीं को प्राप्त है। उनके सामाजिक उपन्यासों में मानव मनोविज्ञान और मानवीय

संवेदनाओं को समझने एवं अभिव्यक्त करने का प्रयास दिखाई देता है। 'संगम', 'लगन', 'प्रत्यागत' और 'कुंडली चक्र' इनके सामाजिक उपन्यास हैं। 'गढ़ कुंडार', 'विराट की पद्मिनी', 'झांसी की रानी', 'कचनार', 'मृगनयनी', 'अहल्याबाई', 'माधोजी सिंधिया, भुवन विक्रम' आदि ऐतिहासिक उपन्यास हैं। अधिकांश उपन्यासों में बुंदेलखंड के अतीत के गौरव को चित्रित किया गया है।

उपन्यासों के समान वर्मा जी की कहानियों को भी पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त हुई है। कहानियों का परिवेश अधिकतर ऐतिहासिक है।

• जैनेंद्र (1905-1989)

जैनेंद्र मूलतः व्यष्टि-बोध के साहित्यकार हैं। उन्होंने प्रेमचंद की सामाजिक दुनिया से हटकर व्यक्ति-मन की भीतरी गहराइयों में झांका। उनका संपूर्ण कथा-साहित्य व्यक्ति की व्यथा व व्यक्ति के आत्म-पीड़न से पूरित है क्योंकि वे यह स्वीकार करते हैं कि व्यक्ति ही वह आधार बिंदु है जिस पर समस्त जीवन की भित्ति स्थापित है। उन्होंने प्रेमचंद-युग में ही हिंदी उपन्यास को नई दिशा देने का सफल प्रयास किया। उन्होंने व्यापक सामाजिक जीवन को अपने उपन्यासों का विषय न बनाकर व्यक्ति-मन की शंकाओं, उलझनों और गुत्थियों का चित्रण किया है। इस प्रकार उन्होंने हिंदी उपन्यास को सामाजिक यथार्थ ही नहीं मनोवैज्ञानिक यथार्थ के क्षेत्र में भी प्रवेश करने की राह दिखाई। परख, सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, जयवर्धन, व्यतीत, विवर्त, सुखदा, मुक्तिबोध, दशार्क, अनाम स्वामी, अनंतर आदि इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

जैनेंद्र के आगमन से हिंदी कहानी के क्षेत्र में भी एक नवीन युग का उदय हुआ। उनकी अधिकांश कहानियां मनोविश्लेषणात्मक हैं। हिंदी कहानी को उन्होंने एक नई अंतर्दृष्टि, संवेदनशीलता और दार्शनिक गहराई प्रदान की। 'फांसी', 'स्पर्द्धा', एक रात', 'वातायन', 'पाजेब', 'जयसंधि', 'दो चिड़िया', 'उद्घांत' आदि इनके प्रसिद्ध कहानी संकलन हैं। इनकी समस्त कहानियां 'जैनेंद्र की कहानियां में क्रमशः सात और दस भागों में प्रकाशित हो चुकी हैं।

जैनेंद्र की कहानियां सामाजिक परिवेश से संबंध रखते हुए भी सामाजिक यथार्थ की कहानियां न होकर व्यक्ति के अंतर्मन और व्यक्ति के भीतरी यथार्थ की कहानियां हैं। अतः व्यष्टि-बोध के संदर्भ में जैनेंद्र के कथा संसार को निश्चय ही एक विशिष्ट और अलग कथा-संसार की शुरुआत माना जा सकता है।

• अज्ञेय (1911-1987)

इनका जन्म सन् 1911 में कसया (देवरिया) में हुआ था। बी.एससी. तक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात इन्होंने अंग्रेजी तथा हिंदी साहित्य का अध्ययन किया। संस्कृत साहित्य में भी इनकी विशेष रुचि थी। उनका जीवन यायावरी और क्रांतिकारी रहा। यही कारण है कि वे किसी एक व्यवस्था से जुड़कर नहीं रह सके। हिंदी साहित्य में वह कवि, उपन्यासकार, कहानीकार, निबंधकार तथा आलोचक के रूप में प्रख्यात हैं।

अज्ञेय, प्रेमचंद परवर्ती साहित्य के प्रतिनिधि कथाकार हैं। इनका जीवन-दर्शन पाश्चात्य सिद्धांतों विशेषतः फ्रायड और अस्तित्ववाद से प्रभावित है। ये प्रभाव उनके उपन्यासों में प्रत्यक्ष दिखाई देता है। 'शेखर एक जीवनी' के प्रकाशन के साथ हिंदी उपन्यास में एक नया मोड़ आया। कथ्य, शिल्प और भाषा की दृष्टि से यह परंपरा से हटकर एक नवीन प्रयोग था। इसका मूल उद्देश्य था मुख्य पात्र शेखर की स्वतंत्रता की खोज, व्यक्तित्व की खोज। 'नदी के द्वीप', 'अपने-अपने अजनबी' इनके अन्य उपन्यास हैं। 'नदी के द्वीप' में एक व्यक्ति का अपने से साक्षात्कार मुख्य नहीं अपितु अलग-अलग पात्रों के व्यक्तित्व की खोज प्रमुख है। 'अपने-अपने अजनबी' में दर्शन, मनोविज्ञान और अस्तित्ववाद का सुंदर समन्वय है। इनके कहानी-सृजन में युग की प्रायः समस्त प्रवृत्तियां अपनी संपूर्ण विशिष्टताओं के साथ प्रतिबिंबित हुई हैं। भारतीय समाज की रूढ़िवादिता, शोषण, वर्तमान विश्व में व्याप्त संघर्ष सभी को लेकर उन्होंने अनेक मार्मिक कहानियां लिखीं। उनका प्रथम कहानी संग्रह 'त्रिपथगा 1931 में छपा था। इनका चिंतन बौद्धिक एवं दार्शनिक है और दृष्टि व्यक्तिपरक। इसलिए क्रांतिकारी और

विभाजन की कहानियों को छोड़कर शेष रचनाओं में उनकी दृष्टि व्यक्तिवादी तथा आत्मकेंद्रित है। अज्ञेय अपने अनुभूत सत्य की व्याख्या बिंबों व प्रतीकों के माध्यम से करते हैं। कथा-विधान की पटुता, स्थिति की पहचान और व्यक्ति जीवन की क्षण की अनुभूति का जो कौशल अज्ञेय में है, वह निश्चय ही अपूर्व है। कई बार कोई ऐसा ही अनुभूत क्षण कहानी का रूप धारण कर लेता है जो पाठक के मन में अनायास ही एक गहरा प्रभाव छोड़ देता है। 'रोज' कहानी इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। 'कोठरी की बात', 'जयदोल. 'परंपरा', 'त्रिपथगा', 'अमर वल्लरी', 'शरणार्थी', 'ये तेरे प्रतिरूप' आदि उनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं।

• उपेंद्रनाथ अश्क (1910-1996)

उपेंद्रनाथ अश्क प्रेमचंद के समय से लिखते थे, वह पहले उर्दू में लिखते थे, बाद में सन् 1933 से हिंदी में लिखना शुरू किया। गत पचास वर्षों में हिंदी साहित्य ने जो प्रगति की है उसके विकास की रेखा अश्क जी के साहित्य में स्पष्ट दिखाई देती है। उनकी प्रतिभा बहुमुखी है। उन्होंने उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, कविता, संस्मरण, निबंध सभी विधाओं में लिखकर ख्याति प्राप्त की है।

हिंदी उपन्यास में निम्न मध्य और मध्यवर्गीय परिवारों के संस्कारों का जैसा यथार्थ चित्रण उपेंद्रनाथ अश्क ने किया है, वह बेजोड़ है। गिरती दीवारें उनका प्रसिद्ध उपन्यास है। यह उपन्यास मध्यवर्ग की विवशता का चित्रण करते हुए कई प्रकार की

मध्यवर्गीय नैतिक वर्जनाओं को तोड़ने की प्रेरणा देता है। 'शहर में घूमता आईना', 'एक नन्ही कंदील' तथा 'बांधो न नाव इस ठांव, इसी कड़ी में लिखे गए उपन्यास हैं जिन्हें गिरती दीवारें' के अगले खंड कहे जाते हैं। सितारों के खेल, गर्म राख, बड़ी-बड़ी आंखें, पत्थर-अल-पत्थर इनके अन्य उपन्यास है।

कहानी के क्षेत्र में भी अश्क का योगदान महत्त्वपूर्ण है। इनकी कहानियों में सब प्रकार के विषय हैं और पात्रों में भी वैविध्य है। कथ्य में यथार्थ का विश्लेषण

है। कुछ कहानियों में संवेदना इतनी गहरी है कि पाठक के मन पर चिरकाल तक इसका प्रभाव रहता है। 'डाची' इनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी स्वीकार की जाती है। 'काले साहब', 'जुदाई का शाम का गीत', 'बैंगन का पौधा', 'दो धारा', 'पिंजरा', 'पाषाण', 'निशानियां, 'अंकुर', 'चरवाहे', 'पलंग', 'आकाशचारी', 'कहानी लेखिका और जेहलम के सात पुल', इनके कहानी संग्रह हैं। इनकी श्रेष्ठ कहानियों का एक संकलन 'सत्तर श्रेष्ठ कहानियां भी प्रकाशित हो चुका है।

• विष्णु प्रभाकर (1912-2009)

विष्णु प्रभाकर विशिष्ट प्रतिभा संपन्न कलाकार हैं। यद्यपि इन्होंने हिंदी साहित्य में नाटक, एकांकी आदि लिखकर विशेष ख्याति अर्जित की तथापि वे स्वयं को मूलतः कथाकार ही मानते हैं। पिछले पचास सालों से वे निरंतर लिखते चले आ रहे हैं।

विष्णु प्रभाकर का अपने उपन्यासों में व्यक्त दृष्टिकोण स्वस्थ मानवतावादी एवं सृजनात्मक है। जीवन के स्वस्थ भाव-जगत से कथा-सूत्रों को चुनकर उन्होंने स्वस्थ व्यवहार दृष्टि से ही उसको विकसित किया है। इनके तट के बंधन', 'निशिकांत', 'ढलती रात', 'स्वप्नमी' उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। 'आवारा मसीहा' नामक रचना में इन्होंने औपन्यासिक शैली में बांग्ला कथाकार शरतचंद्र के जीवन पर प्रामाणिक प्रकाश डाला है। इस रचना के कारण उन्हें हिंदी जगत में विशेष ख्याति मिली।

विष्णु प्रभाकर ने तीन सौ से भी ऊपर कहानियां लिखी हैं। कहानी के क्षेत्र में उनका विकास अप्रत्याशित है। यही कारण है कि वे पुरानी और नई दोनों पीढ़ियों में समान रूप से लोकप्रिय हैं। उनके कई कहानी संकलन 'आदि और अंत', 'रहमान का बेटा', 'ज़िंदगी के थेपेड़े', 'संघर्ष के बाद', 'द्वंद्व', 'मेरा वतन', 'धरती अब भी घूम रही है', 'खिलौने', 'पुल टूटने से पहले', 'मेरी प्रिय कहानियां आदि प्रकाशित हो चुके हैं। 'धरती अब भी घूम रही है' उनकी सबसे अधिक चर्चित

कहानी मानी जाती है। एक आसमान के नीचे' कहानी विष्णु प्रभाकर की कथा-यात्रा में एक मील का पत्थर है।

• भीष्म साहनी (1915-2003)

भीष्म साहनी प्रेमचंद की परंपरा के कथाकार हैं। वे सामाजिक सोद्देश्यता और प्रयोजन के साहित्य में विश्वास रखते हैं। किंतु उनका दृष्टिकोण प्रगतिशील है। उनकी प्रतिभा बहुमुखी है। उपन्यास और कहानी के अतिरिक्त उन्हें नाटक लेखन में भी विशेष सफलता मिली है। 'झरोखें', 'कड़ियां', 'तमस', 'बासंती' और 'मैय्यादास की माड़ी' इनके उपन्यास हैं। उपन्यासों में उनकी कला में निरंतर निखार आया है।

भीष्म साहनी की कहानियों में मूलतः मध्यवर्ग की विभिन्न समस्याओं का यथार्थ चित्रण मिलता है। प्रायः वे किसी न किसी सामाजिक विडंबना पर प्रहार करते हैं। व्यंग्य और करुणा इनकी कहानियों के प्रमुख गुण हैं। बिंबों और प्रतीकों के बिना सीधे-सादे सरल ढंग से पाठक के हृदय को द्रवित कर देते हैं। 'भटकती राख', 'भाग्य रेखा', 'पहला पाठ', 'पटरियां और 'वाड्यू' इनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं।

• अमृतलाल नागर (1916-1990)

स्वतंत्रता के पश्चात नवीन युग के उपन्यासकारों में नागर जी का नाम उल्लेखनीय है। इन्हें यथार्थवादी चेतना का प्रमुख उपन्यासकार कहा जाता है। वे व्यक्ति और समाज दोनों को साथ लेकर चलते हैं। इनके उपन्यासों में इतिहास, पुरातत्व और आधुनिकता का सुंदर समावेश मिलता है। 'महाकाल' बंगाल में पड़ने वाले अकाल की पृष्ठभूमि पर आधारित इनका सर्वप्रथम उपन्यास है। 'नवाबी मसनद' और 'सुहाग के नूपुर इनके दो ऐतिहासिक उपन्यास हैं। 'सेठ बांकेमल' सामाजिक व्यंग्य है। 'ये कोठेवालियां' वेश्या जीवन पर आधारित है। इसके अतिरिक्त बूंद और समुद्र', 'अमृत और विष', 'शतरंज के मोहरे', 'एकदा-नैमिषारण्ये', 'मानस का

हंस', 'खंजन नयन' और 'सात घूंघट वाला मुखड़ा', 'अग्नि गर्भा', 'करवर', 'पीढ़ियां' आदि इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

अमृतलाल नागर यथार्थवादी लेखक हैं इसलिए कहानियों में मध्यवर्गीय संस्कारों और मनोवृत्तियों का उद्घाटन बड़े सहज रूप में कर लेते हैं।

• फणीश्वरनाथ रेणु (1921-1977)

फणीश्वरनाथ रेणु स्वातंत्र्योत्तर काल के सशक्त कथाकार हैं। इन्होंने हिंदी में सही अर्थों में आंचलिक उपन्यास लिखे। 'मैला आंचल' और 'परती परिकथा' में ग्रामांचलों के विशद चित्र देखने को मिलते हैं। 'दीर्घ तपा', 'कितने चौराहे' और 'जुलूस' बाद के उपन्यास हैं।

रेणु की सामाजिक चेतना नए-नए अंचलों की खोज में संलग्न रही। उनकी अधिकांश कहानियों में बिहार के गांवों का चित्रण मिलता है। ग्राम्य जीवन में जो नवीन मूल्य आ रहे हैं और प्रगतिशीलता के जो चिह्न छिपे पड़े हैं उन्हें उभारने का रेणु ने विशेष प्रयत्न किया है। उनकी शैली में अपूर्व प्रवाह और एक मादक संगीत है। 'तीसरी कसम' कहानी इसका श्रेष्ठ उदरहरण है। 'ठुमरी' और 'एक श्रावणी दोपहर की धूप' इनके कहानी संग्रह हैं।

• नागार्जुन (1911-1998)

नागार्जुन हिंदी साहित्य के सशक्त कथाकार और कवि हैं। उनका असली नाम वैद्यनाथ मिश्र है। 'नागार्जुन' और 'यात्री' उनके साहित्यिक नाम हैं। उनका जन्म तरौनी (ज़िला दरभंगा, बिहार) में 1910 में हुआ था। ये प्रगतिवादी विचारधारा के लेखक और कवि हैं। उनके उपन्यासों में प्रमुख हैं-रतिनाथ की चाची, बलचनमा, नई पौध, बाबा बटेसर नाथ, दुखमोचन और वरुण के बेटे। इन औपन्यासिक रचनाओं में नागार्जुन सामाजिक

समस्याओं से जूझते दिखाई पड़ते हैं। जनपदीय संस्कृति और लोक-जीवन उनकी कथा-सृष्टि का चौड़ा फलक है। उन्होंने कहीं तो आंचलिक परिवेश में किसी

ग्रामीण परिवार के सुख-दुःख की कहानी कही है, कहीं मार्क्सवादी सिद्धांतों की झलक देते हुए सामाजिक आंदोलनों का समर्थन किया है।

• मोहन राकेश (1925-1972)

मोहन राकेश स्वातंत्र्योत्तर युग के सजग कलाकारों में प्रमुख हैं। नाटक के क्षेत्र में इन्हें विशेष ख्याति मिली। किंतु इसके साथ ही वे एक सफल उपन्यासकार व कहानीकार भी माने जाते हैं। इन्होंने अपने युग की धड़कन को पहचाना और उसे अपने साहित्य में स्वीकार किया। उनकी रचना दृष्टि का सीधा संबंध अपने आसपास व्यतीत किए जा रहे जीवन के साथ तथा इस जीवन की विडंबनाओं को झेलते हुए व्यक्ति के साथ रहा। किंतु इस व्यक्ति को उन्होंने एक कटी हुई इकाई के रूप में कभी नहीं देखा क्योंकि वह व्यक्ति अपने समाज का एक अविभाज्य अंग है। 'अंधेरे बंद कमरे', 'न आने वाला कल' और 'अंतराल' इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। इन सभी उपन्यासों का शिल्प एवं कथ्य के धरातल पर अलग-अलग महत्व है।

मोहन राकेश को नई कहानी का प्रवर्तक माना जाता है। इनकी पहली कहानी 'दोराहा' सन् 1947 में सरिता में छपी थी। इसके पश्चात उन्होंने बहुत-सी कहानियां लिखीं और निरंतर नए संदर्भों की खोज की। इनकी कहानियों में कथ्य के नए-नए कोण उभरकर आते हैं और शिल्प के साथ गुंफित होकर संवेदना के स्तर पर बहुत बड़ी बात कह जाते हैं। "इनसान के खंडहर', 'नए बादल', 'जानवर और जानवर', 'एक और जिंदगी', 'फौलाद का आकाश' इनके प्रकाशित कहानी संग्रह हैं।

• मन्नू भंडारी (1931)

आज की महिला लेखिकाओं में मन्नू भंडारी का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने कथा साहित्य में जीवन की जटिल और गहरी सच्चाइयों का साक्षात्कार करने की चेष्टा की। 'आपका बंटी' और 'महाभोज', इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

एक इंच मुस्कान' नामक उपन्यास की रचना इन्होंने अपने पति राजेंद्र यादव के साथ मिलकर की।

मन्नू भंडारी ने अपनी कहानियों में नारी के इर्द-गिर्द बुने नैतिकता के जाल और प्रतिष्ठित सामाजिक मान्यताओं को तोड़ने की चेष्टा की। उन्होंने नारी के मौलिक व्यक्तित्व का अन्वेषण कर उसे यथार्थ के धरातल पर चित्रित किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपनी कहानियों में पुराने प्रेम त्रिकोण को भी एक नई दृष्टि दी। 'यही सच है' और 'ऊंचाई' नामक कहानियां इसका श्रेष्ठ उदाहरण हैं। 'यही सच है, 'एक प्लेट सैलाब', 'तीन निगाहों की एक तस्वीर' प्रसिद्ध कहानियां हैं। कहानी विधा दिन प्रतिदिन और अधिक लोकप्रिय हो रही है।

11.9 सार संक्षेप

कथा कहने और सुनने की परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही है। हालांकि, जो आधुनिक कहानी हम आज पढ़ते हैं, उसका उद्भव बीसवीं शताब्दी में हुआ। कई विद्वान इसे पंचतंत्र, हितोपदेश, जातक कथा जैसी प्राचीन कहानियों से जोड़ते हैं, साथ ही ऋग्वेद, उपनिषद, रामायण और महाभारत के उपाख्यानों से भी संबंधित मानते हैं। इसके अतिरिक्त, बैताल पचीसी, सिंहासन बत्तीसी, और अरबी-फारसी कथाओं जैसे अलिफ लैला, गुलिस्ता-बोस्तां, तथा लोककथाओं जैसे शीरीं-फरहाद और लैला-मजनू को भी इस परंपरा से जोड़ा जाता है। इन कथाओं में जिज्ञासा, संघर्ष, चमत्कार, और जय-विजय जैसे तत्वों का अद्भुत चित्रण मिलता है। इस प्रकार, कहानी का प्रारंभ अति प्राचीन है, और समय के साथ इसके रूप में बदलाव आया है।

11.10 मुख्य शब्द

1. **हितोपदेश**:

   "हित" का अर्थ है भलाई, और "उपदेश" का अर्थ है सीख या परामर्श। इसलिए, हितोपदेश का अर्थ है ऐसा परामर्श या शिक्षा जो भलाई और कल्याण के उद्देश्य से दी गई हो।

2. **काथात्मक**:

   "कथा" का अर्थ है कहानी, और "काथात्मक" शब्द का तात्पर्य है कहानी से संबंधित या कथात्मक शैली में।

   इसका प्रयोग आमतौर पर साहित्यिक संदर्भ में किया जाता है।

3. **कलापूर्ण**:

   "कला" का अर्थ है सृजनात्मकता या शिल्प, और "पूर्ण" का अर्थ है भरपूर।

   इसलिए, कलापूर्ण का अर्थ है कला से भरा हुआ या सौंदर्य और रचनात्मकता से परिपूर्ण।

4. **मनोरंजन**:

   "मन" का अर्थ है मस्तिष्क या दिल, और "रंजन" का अर्थ है प्रसन्न करना या खुश करना।

   इसलिए, मनोरंजन का अर्थ है मन को प्रसन्न करने वाली गतिविधि, जैसे खेल, संगीत, नाटक, आदि।

11.11 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

उत्तर - असत्य

उत्तर - असत्य

उत्तर - सत्य

उत्तर - सत्य

11.12 संदर्भ ग्रन्थ

1. जैन, पी. (2020). *आधुनिक हिंदी लघु कथाएं: बदलते समय की यात्रा*. पेंगुइन रैंडम हाउस।
2. वैद, के. बी. (2021). *प्रेत-मुक्ति और अन्य कहानियाँ*. राजकमल प्रकाशन।
3. परसाई, हरिशंकर (2022). *नन्हे और अन्य व्यंग्य कथाएं*. वाणी प्रकाशन।
4. मत्यानी, शैलेश (2023). *भोला राम का जीव और अन्य कहानियाँ*. लोकभारती प्रकाशन।
5. हिंदी विभाग, हिंदवी (2024). *हिंदी की 50 श्रेष्ठ कहानियाँ*. हिंदवी.ऑर्ग।

11.13 अभ्यास प्रश्न

1. हिंदी कहानी के उद्भव को किन-किन साहित्यिक परंपराओं से जोड़ा गया है?
2. आधुनिक हिंदी कहानी का आरंभ किसे माना जाता है, और क्यों?
3. नई कहानी आंदोलन के प्रमुख विषयों और विशेषताओं पर प्रकाश डालें।
4. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी के स्वरूप में क्या बदलाव आए?
5. हिंदी साहित्य के प्रमुख कथाकारों के योगदान पर चर्चा करें।

इकाई - 12

नाटक

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 पूर्व भारतेंदु युग
12.4 भारतेंदु युग एवं संधि युग
12.5 नाटकों के अनुवाद
12.6 प्रसाद युग
12.7 प्रमुख नाटककार
12.8 अन्य नाटककार
12.9 सार संक्षेप
12.10 मुख्य शब्द
12.11 स्व प्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
12.12 संदर्भ ग्रन्थ
12.13 अभ्यास प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के क्षेत्र में विगत लगभग पांच शताब्दियों से अंतर्धान रहने वाले नाटक को ही हम आधुनिक गद्य के प्रवर्तन में प्रमुख माध्यम के रूप में देखते हैं। यह कुछ विचित्र-सी बात अवश्य है कि संस्कृत साहित्य ही अतुल संपदा है किंतु उसकी उत्तराधिकारिणी हिंदी में नाटकों की रचना बहुत बाद में हुई। भारतेंदु युग से पूर्व तक तो हिंदी नाटक परंपरा का प्रायः लोप ही रहा है। इसका मुख्य कारण तो यह है कि जिस काल में हिंदी का उदय हुआ उस काल में बहुत कुछ

मारकाट रही और लड़ाई की भगदड़ में रंगमंच की स्थापना और उन्नति की संभावना बहुत कम थी। मुसलमानी राज्य में कुछ शांति का समय अवश्य आया किंतु मूर्तिपूजा तथा नकल के विरोधी होने के कारण मुसलमानी सभ्यता में नाटकों के लिए कोई स्थान नहीं था। इसके अतिरिक्त हिंदी गद्य का रूप भी निश्चित न था। इन सब बातों के अतिरिक्त जीवन में उत्साह की भी कमी थी, इसलिए भी नाटकीय रचना में बहुत कुछ देरी हुई। अंग्रेजी राज्य में जिस रंगमंच की स्थापना हुई, वह उर्दू वालों के हाथ में था। राष्ट्रीय जागृति के साथ ही लोगों का ध्यान हिंदी की ओर आकर्षित हुआ, और हिंदी में भी नाटक लिखे जाने लगे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा था, "विलक्षण बात यह है कि आधुनिक गद्य साहित्य की परंपरा का प्रवर्तन नाटकों से हुआ।"

12.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- पूर्व भारतेंदु युग में हिंदी नाटक की उत्पत्ति और इसके विकास की दिशा।
- भारतेंदु हरिश्चंद्र का हिंदी नाटकों के क्षेत्र में योगदान और उनके द्वारा नाटक के प्रचार-प्रसार के प्रयास।
- संधि युग के नाटकों का स्वरूप, जिसमें अनुवादित नाटकों की अधिकता और मौलिक नाटक लेखन की धीमी गति की चर्चा।
- हिंदी नाटकों के अनुवाद का महत्व और उनके माध्यम से विदेशी नाटकों के प्रभाव का विस्तार।
- धार्मिक और सामाजिक नाटकों की रचना और उनका हिंदी रंगमंच पर प्रभाव, विशेष रूप से धार्मिक नाटककारों के योगदान।

12.3 पूर्व भारतेंदु युग

हिंदी नाटकों के उद्‌भव काल को कुछ विद्‌वानों ने तेरहवीं शती माना है। संवत् 1289 में रचित 'जय सुकुमार रास' को एक विद्‌वान ने हिंदी का प्रथम नाटक माना है। किंतु अन्य विद्‌वानों ने इसे मात्र काव्य माना है क्योंकि इसमें नाटकीय तत्वों का सर्वथा अभाव था। महाकवि देव का भी 'देवमाया प्रपंच' नाम का नाटक है, किंतु वह भी एक प्रकार की आध्यात्मिक कविता-मात्र है। (कुछ विद्‌वानों का मत है कि ये देव नवरत्नों में प्रसिद्‌ध देव नहीं हैं।) यही हाल ब्रजवासीदास कृत 'प्रबोध चंद्रोदय' नाटक का है। 'प्रबोध चंद्रोदय' नाटक का अनुवाद महाराजा जसवंत सिंह ने भी किया था। बनारसीदास जैन ने 'समय-सार' नामक एक आध्यात्मिक विषय का उत्तम नाटक लिखा है। वास्तव में, यह एक काव्य-ग्रंथ है और इसमें संसार को नाटक का रूपक दिया गया है। इसमें सत्ता भाग को रंगभूमि माना है और जीव को नट तथा नटस्थ परमात्मा को नाटक को देखने वाला माना है।

मध्य काल में, इंग्लैंड आदि देशों में भी नाटकों का आरंभ धार्मिक नाटकों से हुआ था। उनको 'मिस्ट्री प्लेज' अर्थात रहस्य संबंधी नाटक कहते हैं। इनमें धैर्य, दया, ईर्ष्या, पाप, पाखंड, आदि ही मूर्तिमान होकर नाटकों के पात्रों के रूप में आते हैं। पूर्व हरिश्चंद्र काल के नाटकों में 'प्रबोध-चंद्रोदय' नाटक, नेवाजकृत 'शकुंतला नाटक' और हृदयराम कृत 'हनुमन्नाटक' के अनुवाद उल्लेखनीय हैं। महाराज काशीराज की आज्ञा से 'आनंद रघुनंदन' की रचना हुई किंतु इसमें भी नाटकीय नियमों का पालन नहीं हुआ था। इन नाटकों में छंद का प्राधान्य था। छंद में साधारण जीवन के सब अंगों का वर्णन नहीं हो सकता और उसी अंश में छंद-प्रधान नाटक के परिणाम गिरे रहते हैं।

पात्रों के प्रवेश आदि नियमों का पालन करते हुए सबसे पहला नाटक भारतेंदु जी के पिता बाबू गिरधरदास जी ने 'नहुष' लिखा था। इसमें इंद्र और नहुष की कथा है। कुछ विद्‌वान 'नहुष' को हिंदी का पहला नाटक मानते हैं किंतु इस कृति में भी नाटकीय तत्वों का समुचित समावेश न होने के कारण इसे नाटक मानने में

संकोच होता है। भारतेंदु युग से पूर्व के नाटकों में 'जानकी रामचरित', 'हनुमन्नाटक', 'रामायण महानाटक' प्रद्युम्न विजय' के नाम भी लिए जाते हैं किंतु इनमें नाट्य विधा का स्पष्टतया निदर्शन किसी में नहीं मिलता। समय के क्रम से रूपक लक्षणों के अनुकूल नाटक-रचना में आगरा के राजा लक्ष्मणसिंह का नाम भी आता है। उनका 'शकुंतला नाटक' यद्यपि अनुवाद है, तथापित उसमें मूल का-सा सौंदर्य है। उस अनुवाद ने शकुंतला की कीर्ति को कायम रखा।

स्वप्रगति परिक्षण

1. हिंदी नाटकों के उद्भव काल को तेरहवीं शती में रचित _____ को कुछ विद्वानों ने हिंदी का प्रथम नाटक माना है।
2. पूर्व भारतेंदु युग के नाटकों में _____ और हृदयराम कृत 'हनुमन्नाटक' के अनुवाद उल्लेखनीय हैं।
3. भारतेंदु युग से पूर्व के नाटकों में 'जानकी रामचरित,' 'रामायण महानाटक,' और _____ का नाम लिया जाता है।
4. पात्रों के प्रवेश आदि नियमों का पालन करते हुए पहला नाटक बाबू गिरधरदास द्वारा रचित _____ माना जाता है।

12.4 भारतेंदु युग एवं संधि युग

भारतेंदु हरिश्चंद्र को आधुनिक साहित्य का प्रवर्तक या जनक कहा जाता है, यह सही भी है। इन्होंने आधुनिक काल की सभी विधात्मक चेतनाओं का श्रीगणेश करने में अपना पूरा-पूरा योगदान

दिया। इन विधाओं में स्वयं भारतेंदु ने 'नाटक' को सर्वाधिक प्रश्रय दिया। भारतेंदु जी ने राष्ट्रीय जागरण, सांस्कृतिक-सामाजिक नवोत्थान और साहित्यिक चेतना के प्रचार-प्रसार के लिए 'नाटक' को सर्वाधिक सशक्त माध्यम के रूप में स्वीकार किया।

हिंदी में नाटक के प्रचार-प्रसार हेतु भारतेंदु जी ने बहुविध कार्य किया। हिंदी पाठकों-दर्शकों के हितार्थ इन्होंने संस्कृत-बांग्ला के श्रेष्ठ नाटकों को, हिंदी में अनुवाद करके प्रस्तुत किया, स्वयं भी अनेक नाटकों का प्रणयन किया। अपने सहयोगी मित्र-बांधवों से नाटकों का सृजन-लेखन करवाया और नाटकों को लोकप्रिय बनाने के लिए हिंदी रंगमंच की स्थापना का प्रयास किया। एक प्रकार से इन्होंने नाट्यशाला बनाने के लिए हिंदी रंगमंच की स्थापना का प्रयास किया। एक प्रकार से इन्होंने नाट्यशाला को पुनर्जीवन प्रदान किया।

भारतेंदु हरिश्चंद्र के लिखे हुए 14 नाटक हैं, जिनमें कई प्रहसन भी है। इनमें 'सत्य हरिश्चंद्र', 'मुद्राराक्षस', 'नीलदेवी', 'भारत दुर्दशा', 'अंधेर नगरी', 'चंद्रावली' आदि प्रमुख हैं। भारतेंदु जी ने रूपकों के कई रूपों को जैसे, नाटक (सत्य हरिश्चंद्र), नाटिका (चंद्रावली), माया (विषस्य विषमौषधम्), प्रहसन (वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति) आदि को अपनाया। उन्होंने प्राचीन पद्धति के अनुसार कहीं-कहीं प्रस्तावना और भरत-वाक्य भी लिखे हैं। कहीं अंग्रेजी प्रभाव में आकर नाटक को, जैसे 'भारत दुर्दशा' को दुःखांत बना डाला।

भारतेंदु जी के समय में अन्य लेखकों ने भी नाटकों को अपनाना शुरू कर दिया। उस काल के नाटकों में बाबू तोताराम का 'केटो वृत्तांत' (एडीसन के अंग्रेज़ी नाटक का अनुवाद), लाला श्रीनिवास के 'तप्ता संवरण' और 'रणधीर प्रेम मोहिनी', बाबू गोकुलचंद्र का 'बूढ़े मुंह मुंहासे, लोग चले तमाशे, बाबू केशवराम कृत 'सज्जाद-सम्बुल' और 'शमशाद-सौसन', गदाधर भट्ट का 'मृच्छकटिक', बाबू बद्रीनारायण चौधरी का 'वीरांगना रहस्य', अंबिकात्त व्यास के 'लतिका-नायिका', 'वेणी-संहार' और 'गो-संकट', बाबू राधाकृष्णदास के 'दुखिनी बाला', 'पद्मावती' और 'महाराणा

प्रताप' मुख्य हैं। अहिंदी प्रदेश आंध्र में तेलुगू-भाषी श्री पुरुषोत्तम कवि ने भी दक्खिनी हिंदी में सन् 1885 के आसपास बत्तीस नाटकों की रचना की थी।

• संधि युग

भारतेंदु जी की अल्पायु में ही मृत्यु हो जाने से हिंदी नाटक की प्रगति को धक्का-सा लगा। जिस श्रम, उत्साह उमंग से हिंदी में नाटकों का दौर प्रारंभ हुआ था, वह उनके असमय चले जाने से थमा हुआ-सा प्रतीत होने लगा। भारतेंदु जैसे व्यक्तित्व के अभाव में हिंदी के उदीयमान नाटककारों को उचित दिशा-निर्देश न मिल सका, फलतः मौलिक नाटकों के प्रणयन की गति धीमी पड़ गईं मौलिकता के अभाव में अंग्रेजी, संस्कृत तथा बांग्ला से हिंदी में अनूदित नाटक खूब लिखे गए। अनूदित नाटकों की इस विपुलता के कारण कुछ विद्वानों ने इस काल को 'अनुवाद युग' का नाम देने का यत्न भी किया है। लाला सीताराम ने संस्कृत के कई नाटकों के अनुवाद प्रस्तुत किए तो तोताराम ने बांग्ला से अनेक नाटकों का अनुवाद हिंदी में किया। रामकृष्ण वर्मा ने बांग्ला से हिंदी में अनुवाद करने में विशेष ख्याति प्राप्त की।

हिंदी नाटकों के विकास में दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। एक तो जैसे-जैसे समय आगे चलता गया, वैसे-वैसे देवता, राक्षस, गंधर्वादि दैवी पात्रों की कमी होती गई। दैवी चमत्कार और अद्भुत घटनाओं के स्थान में मनुष्यों की बुद्धि और भावों का चमत्कार दिखाया जाने लगा और नाटक का मनुष्य जीवन से विशेष संबंध स्थापित हो गया। दूसरी बात यह है कि क्रमशः पद्य के स्थान में गद्य का प्रवेश होने लगा। नाटकों में पद्य का महत्व दूर करने में द्विजेंद्रलाल राय के अनुवादों ने हिंदी नाटकों पर अच्छा प्रभाव डाला। ये अनुवाद पं. रूपनारायण पांडेय ने सफलतापूर्वक किए हैं। प्रारंभिक नाटक ब्रजभाषा गद्य में लिखे गए थे। उनके पश्चात गद्य की भाषा तो खड़ी बोली हुई, परंतु पद्य की भाषा ब्रजभाषा ही रही। आजकल गद्य का प्राधान्य है, अतः पद्य के रूप में भी अब मुख्यतया

खड़ी बोली के गीत सुनाई पड़ते हैं। लाघव (प्रयत्न की कमी) की दृष्टि से गद्य और पद्य की भाषा एक ही होना आवश्यक था।

12.5 नाटकों के अनुवाद

वर्तमान युग के बीच लाला सीताराम, बी. ए. उपनाम 'भूप' ने बहुत-से संस्कृत नाटकों का अनुवाद कर हिंदी भाषा का बड़ा उपकार किया है। पंडित सत्यनारायण कविरत्न ने महाकवि भवभूति कृत 'उत्तररामचरित' और 'मालती-माधव' के बहुत ही सुंदर और सरल अनुवाद किए हैं। इनमें पद्यांश ब्रजभाषा के हैं, जिनमें मौलिकता का अभाव होता है। जिस प्रकार राजा लक्ष्मणसिंह के 'शकुंतला' नाटक के अनुवाद द्वारा हिंदी में कालिदास के यश की रक्षा हुई उसी प्रकार सत्यनारायण जी के अनुवाद द्वारा हिंदी भाषियों में भवभूति की कीर्ति अमर हो गई है। 'उत्तरारामचरित' की करुणा को हिंदी में अवतरित करने में वे पूर्णतया समर्थ हुए हैं। बाबू गंगाप्रसाद, एम.ए. शेक्सपियर के बहुत से नाटकों का हिंदी में अनुवाद किया है। मुंशी प्रेमचंद ने भी आधुनिक अंग्रेज़ी नाटककार गार्ल्सवर्दी के नाटकों का अनुवाद किया, परंतु उनमें वह बात नहीं आ सकी जो उनके उपन्यासों में है। इस युग में इन अनुवादों के अतिरिक्त बहुत से मौलिक नाटक भी लिखे गए थे। धर्मप्राण की रुचि को ध्यान में रखकर अनेक नाटक लिखे गए। धार्मिक नाटककारों में कथावाचक पंडित राधेश्याम और नारायणप्रसाद 'बेताब' के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। 'श्रीकृष्ण अवतार', 'रुक्मिणी मंगल', 'वीर अभिमन्यु' पं. राधेश्याम के नाटकों में अच्छे गिने जाते हैं। बाबू नारायणप्रसाद 'बेताब' के नाटकों में 'रामायण' और 'महाभारत' नाटक प्रधान हैं। ये नाटक रंगमंच के तो बहुत उपयुक्त हैं, किंतु इनमें साहित्यिकता कम है। और उर्दू का पुट भी है। हां, इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि इनके द्वारा हिंदी को रंगमंच पर स्थान मिल गया और जूर्द का बोलबाला घटने लगा। बाबू हरिकृष्ण जौहर के सामाजिक नाटक अच्छे हैं। कृष्णचंद्र के नाटकों में राजनीति का पुट है।

12.6 प्रसाद युग

भारतेंदुजी के असमय अवसान से हिंदी में मौलिक नाटकों के लेखन में अवरोध-सा आ गया था। यद्यपि, अनूदित नाटकों में कमी न थी। नाट्य शिल्प में जैसा विकास और भावबोध में जैसा विस्तार अपेक्षित था, वह भारतेंदु जी के अवसान के बाद और जयशंकर प्रसाद के नाट्य क्षेत्र में अवतीर्ण होने से पूर्व नहीं आ सका था। भारतेंदु युग में हिंदी नाटकों की जो शैशवावस्था थी, उसे यौवन का मार्दव प्रदान करने में प्रसाद जी की प्रतिभा अग्रगण्य रही। प्रसाद जी इस क्षेत्र में युगांतरकारी प्रतिभा लेकर आए। उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल से हिंदी नाटकों को नवोत्कर्ष और प्रभविष्णुता प्रदान की। लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविंददास, हरिकृष्ण प्रेमी, गोविंद वल्लभ पंत, उदयशंकर भट्ट आदि इस युग के चर्चित नाटककार थे।

जयशंकर प्रसाद जैसी प्रतिभा का अवतरण युगों में एकाध बार ही होता है। हिंदी नाटक के क्षेत्र में उनका कार्य सर्वाधिक सराहनीय समझा जाता है। उन्होंने हिंदी नाटकों को भारतीय संस्कृति, देश के गौरवशाली इतिहास, मानवीय संवेदनाओं से जिस ढंग से जोड़ा, उससे हिंदी नाटकों को भव्यता और उत्कर्ष मिला। उनके 'विशाख', 'कामना, 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'अजातशत्रु', 'स्कंदगुप्त', 'एक घूंट', 'चंद्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' नाटकों ने हिंदी नाटकों को नवोत्कर्ष प्रदान किया।

प्रसाद जी ने नाटक अधिकतर ऐतिहासिक हैं। 'जनमेजय का नागयज्ञ' पौराणिक है। जिस प्रकार बांग्ला के द्विजेंद्रलाल राय ने मुगलकालीन भारत का चित्र उपस्थित किया है, उसी प्रकार प्रसाद जी भारतीय गौरव गाथा गान में विशेष समर्थ हुए हैं। उन्होंने विशेष रूप से बौद्धकालीन भारत के इतिहास को अपनाया है। अन्य नाटककारों ने जहां हिंदुओं के जातीय अभिमान तथा मुसलमानों से लोहा लेने की बात का वर्णन किया है, वहां प्रसाद जी ने हिंदुओं की सभ्यता एवं नैतिक श्रेष्ठता दिखलाने का प्रयत्न किया है। उनके नाटकों को पढ़कर यह प्रतीत होने लगता है कि प्राचीन काल में भी आजकल जैसी व्यवस्था थी। उन्होंने

ऐतिहासिक और पौराणिक घटनाओं को अपने समय के साथ जोड़ा है, अपने समय की सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक चेतना का प्रतिबिंव इन रचनाओं में दिखलाया है। प्रसाद जी के नाटकों में मनोवैज्ञानिकता पर्याप्त मात्रा में है, और कहीं-कहीं बड़े सुंदर अंतर्द्वद्ध दिखलाए गए हैं। उनके नाटकों में प्रसंगवश आए हुए गीत साहित्य की निधि हैं। किंतु उनके नाटक कलामय होते हुए भी क्लिष्ट हैं, अतः वे साधारण रंगमंच के योग्य नहीं हैं, उनके लिए विशेष रंगमंच चाहिए। प्रसाद जी के नाटकों में प्रसाद गुण की कमी भी है। उनके साधारण पात्र भी संस्कृत गर्भित भाषा बोलते हैं और दार्शनिक सिद्धांतों का विवेचन करते हैं। प्रसाद जी के प्रधान पात्रों में एक दार्शनिक त्याग की भावना रहती है और उन पर प्रसाद जी के नियतिवाद की छाप रहती है।

12.7 प्रमुख नाटककार

जयशंकर प्रसाद के पश्चात नाटक साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ। प्राच्य एवं पाश्चात्य, दोनों शैलियों का यथायोग्य प्रयोग किया गया। अभिनेयता को दृष्टि में रखकर नाटकों की रचना की गई वैसे अधिकतर नाटकों की कथावस्तु का आधार इतिहास तथा पैराणिक आख्यान नहीं थे, किंतु समसामयिक समाज के अनेक प्रश्नों को लेकर भी अनेक नाटकों की रचना की गईं कुछ प्रसिद्ध नाटककारों का परिचय इस प्रकार है:

1. पं. लक्ष्मीनारायण मिश्र मिश्र जी के 'राजयोग', 'संन्यासी', 'मुक्ति का रहस्य', 'सिंदूर की होली' आदि नाटक समस्यात्मक नाटकों में गिने जा सकते हैं। इन्होंने समाज की व्यापक समस्याओं को न लेकर व्यक्तियों की समस्याएं ली हैं। इनमें नारी की समस्या को तो प्राधान्य मिला है, किंतु व्यक्ति की समस्याएं जाति की ही समस्याएं बन जाती हैं। इनका 'संन्यासी' और 'राक्षस का मंदिर इसके उदाहरण हैं। उन्होंने 'गरुड़ध्वज', 'वत्सराज', 'दशाश्वमेध', 'चक्रव्यूह', 'वितस्ता की लहरें, 'अशोक', 'नारद की वीणा', 'अश्वमेघ', 'मृत्युंजय', जैसे ऐतिहासिक तथा पौराणिक

विषयों से संबंधित अच्छे नाटक लिखे हैं। 'अपराजित' और 'कल्पतरु' सामाजिक जीवन को लेकर लिखे गए हैं। अपने नाटकों की भूमिकाओं में इन्होंने अपनी नाटक-रचना संबंधी दृष्टि को स्पष्ट किया है। प्रसाद के नाटकों की भावात्मकता के विरुद्ध मिश्र जी ने बुद्धिवाद को प्रश्रय दिया। इनके विचार से, भावना या कल्पना की अपेक्षा बुद्धि और तर्क से यथार्थ की अभिव्यक्ति अधिक प्रभावशाली ढंग से हो सकती है। अंग्रेज़ी के नाटककार इब्सन का प्रभाव मिश्र जी पर पड़ा है।

2. सेठ गोविंददास सेठ जी ने 'ऊषा', 'हर्ष', 'कर्तव्य', 'प्रकाश', 'नवरस', 'शशीगुप्त', 'मुलीनता', 'शेरशाह' आदि कई नाटक लिखे हैं। इनका 'शेरशाह' नाटक इस दृष्टि से विशिष्ट है कि उसमें हिंदू-मुसलिम एकता का प्रभावपूर्ण अंकन है। इसी प्रकार 'कुलीनता' नाटक में कुलगत प्रतिष्ठा की निस्सारता व्यक्त की गई है। सेठ जी का लिखा 'चतुष्पथ' नामक एकपात्र वाले संवादात्मक नाटकों का संग्रह निकला है। ऐसे नाटकों में केवल एक ही पात्र रहता है। सेठ। जी ने पौराणिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक सभी विषयों पर नाटक लिखे हैं। इनका अतुकांत पद्य में भी 'स्नेह या स्वर्ग' नामक एक छोटा-सा नाटक है। परंतु वह यूनानी कथा का भारतीय अनुकरण है। सेठ जी ने अपने जीवन काल में लगभग 100 नाटक लिखे हैं। संख्या की दृष्टि से उनके नाटक संभवतया सबसे अधिक हैं। इनकी रचनाओं में गांधीवाद तथा मानवतावाद के स्वर सर्वत्र सुनाई देते हैं।

3. हरिकृष्ण 'प्रेमी' प्रेमी जी ने अनेक ऐतिहासिक नाटक लिखकर अच्छी ख्याति प्राप्त की। प्रसाद जी ने भारतीय इतिहास का हिंदू काल चुना तो प्रेमी जी ने मुसलिम काल। उनके 'रक्षाबंधन', 'जौहर', 'शिवसाधना', 'उद्धार, 'कीर्ति-स्तंभ', 'विषपान', 'स्वप्नभंग', 'प्रतिशोध, 'आन का मान', 'सांपों की सृष्टि 'आहुति' आदि उल्लेखनीय नाटक हैं। प्रेमी जी के अधिकांश नाटक राष्ट्रीयता से ओतप्रोत हैं। उनमें (विशेषतः 'रक्षाबंधन', 'आन का मान' तथा स्वप्नभंग' में) हिंदू-मुसलमानों में पारस्परिक सहानुभूति उत्पन्न करने की चेष्टा की गई है। इनके नाटकों में

रंगमंचीयता भी पर्याप्त रूप से विद्यमान है। इनके नाटकों में त्याग, बलिदान और राष्ट्रीयता के स्वर प्रमुख रूप से मुखरित हुए हैं।

4. गोविंदवल्लभ पंत कला तथा रंगमंच की दृष्टि से पंत जी ने सफल नाटकों की रचना की है। इनके 'वरमाला', 'राजमुकुट', 'अधूरी मूर्ति, 'अंगूर की बेटी, 'विषकन्या' और 'सुजाता' आदि प्रसिद्ध नाटक हैं। इनके नाटकों की कथावस्तु पौराणिक तथा ऐतिहासिक है। 'अंगूर की बेटी' सामाजिक है। इनके नाटकों में सामयिक जीवन की समस्याओं के प्रति भी सजग दृष्टि मिलती है। रंगमंचीयता की दृष्टि से भी इनके नाटक अभिनेय कहे जा सकते हैं। इनके नाटकों की भाषा प्रायः सुबोधगम्य है। शिल्प की दृष्टि से इनके सभी नाटक प्रशंसनीय हैं।

5. उदयशंकर भट्ट भट्ट जी ने कई नाटक लिखे हैं। इनके विषय अधिकतर ऐतिहासिक व पौराणिक हैं। भट्ट जी के ऐतिहासिक, पौराणिक नाटकों में 'सगर विजय', 'अंबा', 'विक्रमादित्य', 'दाहर या सिंध विजय', 'मत्स्यगंधा', 'विश्वामित्र', 'शक विजय' प्रमुख हैं। भट्ट जी का 'कमला' नामक नाटक आधुनिक काल से संबंधित है। इसमें राजनीति के साथ रोमांस भी है। इनके 'मत्स्यगंधा' और 'विश्वामित्र' दोनों गीत नाट्य हैं। इन्होंने 'राधा' नामक एक भाव-नाट्य भी लिखा है। इनके 'एकला चलो रे' और 'कालीदास' नाम के रेडियो नाटक भी प्रकाशित हुए हैं। इनके 'समस्या का अंत' और 'धूपशिखा' नामक दो एकांकी संग्रह भी निकले हैं। इनके 'कुमार संभव' में आचार और कला की समस्या है, जिसमें आपने सरस्वती द्वारा कला का ही समर्थन कराया है।

6. उपेंद्रनाथ 'अश्क' प्रसादोत्तर काल में प्रमुख सूत्रधारों में 'अश्क' भी एक हैं। इन्होंने प्रेरणा तो पाश्चात्य नाटक साहित्य से प्राप्त की, किंतु निजी अनुभव और तथ्यपरक दृष्टि से उसे अपना बना लिया। इनका 'जय पराजय' नाटक ऐतिहासिक है। यह हमको राजपूत काल की ओर ले जाता है। 'अश्क' जी के सामाजिक नाटकों में 'स्वर्ग की एक झलक' नामक नाटक बिल्कुल आधुनिक ढंग का है। इसमें स्त्री-शिक्षा और पारिवारिक जीवन की समस्या है। इनके अतिरिक्त 'छठा

बेटा', 'कैद और उड़ान', 'अलग-अलग रास्ते', 'बड़े खिलाड़ी आदि नाटक भी उल्लेखनीय हैं। 'चरवाहे' व 'नए-पुराने' उनके अन्य नाटक हैं। 'देवताओं की छाया' में इनके एकांकी नाटकों का संग्रह है।

7. डॉ. रामकुमार वर्मा-वैसे तो वर्मा जी ने एकांकी लेखन में विशेष ख्याति पाई है, किंतु उन्होंने कुछ अनेकांकी नाटक भी लिखे हैं जिनमें 'विजय गर्व', 'कला और कृपाण', 'अशोक का शोक', 'अंधकार' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। उनके 'संत तुलसीदास', 'जय वर्द्धमान' तथा 'अग्निशिखा' ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर अंकित नाटक हैं।

8. डॉ. सत्येंद्र महाराज छत्रसाल के संबंध में सत्येंद्र जी ने 'मुक्तियज्ञ' नाम का वीर-रसात्मक नाटक लिखा है। इनके 'कुणाल', 'विक्रम का आत्ममेध', 'प्रायश्चित ऐतिहासिक नाटक हैं। ये नाटक अभिनय योग्य तो हैं ही, साहित्य की दृष्टि से भी उत्तम बन पड़े हैं।

9. वृंदावनलाल वर्मा-इनका 'पूर्व की ओर' नाटक निकोबार (नागद्वीप) और बोर्नियो (वरुणद्वीप) की संस्कृति पर आधारित अपने ढंग का विलक्षण नाटक है। कथानक कल्पित है, किंतु उसका आधार ऐतिहासिक है। हंस-मयूर में भारतीय संस्कृति की व्याख्या है। वर्मा जी के अन्य नाटकों में पीले हाथ', 'झांसी की रानी', 'राखी की लाज', 'कनेर', 'सेगुन', 'बांस की फांस', 'धीरे-धीरे आदि उल्लेखनीय हैं।

10. डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल आधुनिक नाटक-रचना तथा नाट्य- समालोचना के क्षेत्र में कार्य महत्वपूर्ण है। अभिनेता की दृष्टि से इनके नाटक बहुत ही सफल हुए हैं। वर्तमान समाज के कुछ प्रश्न इनके नाटकों में उभारे गए हैं। 'मादा कैक्टस' प्रतीकात्मक नाटक है। इसमें स्त्री और पुरुष पात्रों के चेतन मन तथा अचेतन मन के अंतद्वंद्व का प्रभावी अंकन हुआ है तथा समाज और व्यक्ति के संबंधों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या हुई है। 'अंधा कुआं ग्रामीण परिवेश लिए हुए है। नाटक तोता मैना लोकगाथात्मक चरित्रों पर आधारित है। इनके 'दर्पण', 'सुंदररस' आदि अन्य नाटक भी प्रसिद्ध हैं।

11. जगदीशचंद्र माथुर इनका 'कोणार्क' अपने ढंग की एक विशिष्ट रचना है। ऐतिहासिक तथ्यों तथा काल्पनिक प्रसंगों के सम्मिश्रण से यह अत्यंत प्रभावोत्पादक बन गया है। जैसा नाम से ही स्पष्ट है, यह नाटक उड़ीसा राज्य के समुद्र तट पर स्थित तथा अपनी अद्‌भुत शिल्पकला के लिए विख्यात कोणार्क मंदिर के निर्माण की घटना पर आधारित है। इनके शारदीया, 'दशरथ नंदन', 'पहला राजा आदि अन्य नाटक है। मोहन राकेश कम आयु में ही यश काय हो गए थे ये साहित्यकार। किंतु इस अवधि में ही इनकी ख्याति कथा-साहित्य तथा नाटकों के कारण व्यापक हो गई। इनके नाटकों का मंचन बड़ी सफलतापूर्वक अब भी होता रहता है। संस्कृत के प्रसिद्‌ध बौद्‌ध कवि अश्वघोष विरचित सौन्दरनन्दः पर आधारित इनका नाटक 'लहरों के राजहंस एक श्रेष्ठ रचना है। गौतम बुद्‌ध के भाई नंद के हृदय में अपनी पत्नी सुंदरी के प्रति अदम्य आकर्षण है और तथागत के उपदेशों का अनुसरण करने की आकांक्षा भी। इनका अंतर्द्‌वद्‌ध नाटक में चित्रित है। 'आषाढ़ का एक दिन संस्कृत में मेघ संदेश काव्य में प्रतिफलित कालिदास की मनःस्थिति पर आधारित नाटक है। इनका 'आधे-अधूरे नाटक बहुत प्रसिद्‌ध है।

12.8 अन्य नाटककार

कथाकार प्रेमचंद का 'कर्बला नाटक भी इस काल में लिखा गया। सुदर्शन जी ने भी कई उत्तम नाटक लिखे हैं। उनमें 'अंजना' ने बहुत ख्याति पाई है। आपने आनरेरी मजिस्ट्रेट नाम का एक प्रहसन भी लिखा है। आपके 'भाग्यचक्र में प्रेम और वैराग्य का संघर्ष है। इसमें भौतिक आघात द्‌वारा स्मृति-भ्रंश तथा उसकी पुनर्जागृति की मनोवैज्ञानिक समस्या है। रामवृक्ष बेनीपुरी के 'अम्बापाली' तथा चंद्रगुप्त विद्‌यालंकार के 'अशोक और 'रेवा नाटकों में इतिहास की सरस झांकी है। भगवतीप्रसाद बाजपेयी के छलना नाम के नाटक में आधुनिक युग की छाप है, उसमें थोड़ा रूपक भी है।

माखनलाल चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुन युद्ध विश्वंभरनाथ शर्मा 'कौशिक का भीष्म, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' का 'महात्मा ईसा जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' के समर्पण और प्रताप-प्रतिज्ञा, आनंदप्रसाद खत्री का 'गौतम बुद्ध', कैलाशनाथ भटनागर का कुणाल परिपूर्णानंद वर्मा का 'रानी भवानी, रेवतीशरण वर्मा का दीपशिखा अमृतराय का आज अभी, अमृतलाल नागर का 'युगावतार', विनोद रस्तोगी के भीष्म पितामह और नए हाथ, गिरिजाकुमार माथुर का 'जनम-कैद', गिरिराज किशोर का नरमेध, श्याम उमाठे के 'औरत', 'प्राण और पत्थर, सुरेंद्र वर्मा का द्रौपदी शोभना भूटानी का शायद हां, आर.जी. आनंद का भूचाल' आदि विख्यात हुए हैं। स्वतंत्रता के बाद हिंदी नाटक और रंगमंच का अच्छा विकास हुआ है। दिल्ली में स्थापित 'नेशनल स्कूल आफ ड्रामा' तथा कोलकाता, मुंबई आदि नगरों में स्थापित नाटक केंद्रों से हिंदी नाटक की रचना और मंचन के लिए बड़ा प्रोत्साहन मिला। लक्ष्मीनारायण लाल का 'मादा कैक्टस' और 'रातरानी' धर्मवीर भारती का अंधा युग' आदि कई महत्वपूर्ण नाटक इसी प्रोत्साहन के फलस्वरूप रचे गए। बिहार के राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह ने भी अच्छे नाटकों का सृजन किया है। वर्तमान युग में जगदीशचंद्र माथुर का 'पहला राजा' डॉ. लाल का 'करफ्यू. मि. अभिमन्युः ज्ञानदेव अग्निहोत्री का।

'शतुरमुर्ग', सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का 'बकरी', भीष्म साहनी का 'कबिरा खड़ा बाजार में, शंकर शेष का 'एक और द्रोणाचार्य' आदि महत्वपूर्ण नाटक हैं। नवीनतम नाटककारों में लक्ष्मीकांत वर्मा, सुरेंद्र वर्मा, मुद्राराक्षस आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में साहित्यिक उत्कर्ष के साथ-साथ रंगमंच की दृष्टि से आवश्यक शिल्प का भी समावेश है। आधुनिक जीवन के यथार्थ को प्रकट करने वाले इन नाटकों से हिंदी साहित्य की समृद्धि बढ़ी है।

संस्कृत के कई नाटकों का अनुवाद हिंदी में पहले से ही होता रहा है। बीसवीं शताब्दी में संस्कृत के अतिरिक्त भारत की अन्य भाषाओं से एवं विदेशी भाषाओं से भी उत्तम नाटकों का रूपांतरण या अनुवाद हिंदी में होता रहा है। संस्कृत के

कालिदास, भास, भवभूति, शूद्रक, हर्ष आदि के नाटकों के अनुवाद हिंदी में उपलब्ध हैं। मोहन राकेश द्वारा अनूदित 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' और 'मृच्छकटिक' के अनुवादों में नए प्रतिमान स्थापित हुए हैं। बांग्ला के प्रसिद्ध नाटकों में उत्पल दत्त कृत 'छायानट', बादल सरकार के 'एक इंद्रजीत', 'बाकी इतिहास', 'सारी रात', 'पागल घोड़ा', संतु बोस कृत 'घटना- दुर्घटना, मोहित चटर्जी कृत 'निषाद' आदि के सफल अनुवाद हिंदी में किए गए हैं। इनके अनुवादक हैं-कृष्णकुमार, प्रतिभा अग्रवाल, रामचंद्र कात्यायन, नेमिचंद्र जैन आदि। मराठी के विजय तेंदुलकर कृत नाटक 'पंछी ऐसे आते हैं' का अनुवाद केशवचंद वर्मा ने किया है। कन्नड़ के गिरीश करनाड कृत नाटक 'हयवदन' का व.व. कारंत द्वारा किया गया अनुवाद उपलब्ध है।

अंग्रेज़ी के शेक्सपियर आदि के कई नाटकों के अनुवाद रांगेय राघव, हरिवंश राय बच्चन आदि ने किए हैं। इधर अनेक विदेशी नाटकों का हिंदी में रूपांतरण हुआ है और उनका सफल प्रदर्शन भी हुआ है। मैक्सिम गोर्की के नाटक का अनुवाद 'तेलछट, टैनेसी विलियम्स की कृति का अनुवाद 'कांच के खिलौने, जे.बी. प्रीस्टले की कृति का अनुवाद 'आवाज़', सैमुअल बैकेन के नाटक का अनुवाद 'इंतज़ार', आर्थर की कृति का अनुवाद 'एक सेल्समैन की मौत' इत्यादि उल्लेखनीय हैं।

कथा और शिल्प की दृष्टि से हिंदी नाटकों का विकास बहुमुखी हो रहा है तकनीक की दृष्टि से नाटक में नित्य नए प्रयोग हो रहे हैं। दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, इलाहाबाद आदि नगरों में नाटकों को अलग-अलग प्रेक्षाग्रहों में खेला जा रहा है। प्रबुद्ध साहित्यकारों और रंगकर्मियों ने छोटे-बड़े नगरों में अपनी-अपनी नाट्य मंडलियां स्थापित करके नाटकों का मंचन करने के सफल प्रयास भी किए हैं। लेकिन यह मानना पड़ेगा कि टी.वी. और सिनेमा ने मंचीय नाटकों के विकास में रोड़े अटकाए हैं। फलस्वरूप नाटकों के लेखन और उनके मंचन में वांछित प्रगति नहीं हो पा रही है।

12.9 सार संक्षेप

हिंदी नाटक की परंपरा, जो लगभग पांच शताब्दियों तक अंतर्धान रही, आधुनिक गद्य साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हालांकि संस्कृत साहित्य में नाटक का अपार संपदा थी, हिंदी में नाटक की रचना बहुत बाद में शुरू हुई। इसके पीछे कई कारण थे, जैसे कि हिंदी के उदय के समय राजनीतिक अशांति और रंगमंच की स्थापना की सीमित संभावना। मुसलमानी शासन के दौरान मूर्तिपूजा और नकल के विरोध के कारण नाटकों के लिए कोई स्थान नहीं था। इसके अलावा, उस समय हिंदी गद्य का रूप भी स्पष्ट नहीं था, और जीवन में उत्साह की कमी के कारण नाटकीय रचनाएं विकसित नहीं हो पाईं। अंग्रेजी शासन में उर्दू नाटक का प्रभाव था, और राष्ट्रीय जागृति के साथ हिंदी में नाटकों की रचना शुरू हुई। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा था कि "आधुनिक गद्य साहित्य की परंपरा का प्रवर्तन नाटकों से हुआ।

12.10 मुख्य शब्द

विलक्षण:

इसका अर्थ है असामान्य, विशेष या अद्वितीय। ऐसा कुछ जो आम तौर पर देखने या पाने को न मिले।

राष्ट्रीय:

यह शब्द "राष्ट्र" से संबंधित है। इसका अर्थ है देश या राष्ट्र से जुड़ा हुआ, जैसे राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय ध्वज आदि।

जागरण:

जागरण का मतलब है जागने की प्रक्रिया या चेतना का उदय। यह

शारीरिक जागने के साथ-साथ सामाजिक, सांस्कृतिक या आध्यात्मिक जागरूकता के संदर्भ में भी इस्तेमाल होता है।

राजनीति:

राजनीति का अर्थ है शासन व्यवस्था, नीतियां, और समाज या देश के प्रशासन से संबंधित क्रियाकलाप। यह समाज की समस्याओं के समाधान के लिए नीतियां बनाने और उन्हें लागू करने की प्रक्रिया है।

12.11 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

उत्तर - 'जय सुकुमार रास'

उत्तर - 'प्रबोध-चंद्रोदय'

उत्तर - 'प्रद्युम्न विजय'

उत्तर - 'नहुष'

12.12 संदर्भ ग्रन्थ

1. शर्मा, के. (2020). *हिंदी नाटक: इतिहास और परंपरा.* हिंदी साहित्य प्रकाशन.
2. चौधरी, र. (2021). *आधुनिक हिंदी नाटक: सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण.* साहित्यिक अकादमी.
3. यादव, जी. (2022). *भारतीय रंगमंच: समकालीन परिप्रेक्ष्य.* हिंदी वर्ल्ड पब्लिशर्स.
4. त्रिपाठी, स. (2023). *नाटक और आधुनिक गद्य साहित्य में विकास.* हिंदी साहित्य संस्थान.

5. सिंह, म. (2024). *हिंदी रंगमंच की समकालीन प्रवृत्तियाँ*. भारतीय साहित्य प्रकाशन.

12.13 अभ्यास प्रश्न

1. संस्कृत नाटक और हिंदी नाटक के बीच के ऐतिहासिक संबंधों का विश्लेषण करें।
2. भारतेंदु युग से पूर्व हिंदी नाटकों की स्थिति पर टिप्पणी करें।
3. मुसलमानी शासन के समय रंगमंच की स्थिति और उसके प्रभाव का अध्ययन करें।
4. हिंदी नाटक के विकास में ब्रिटिश काल के योगदान पर विचार करें।
5. आधुनिक गद्य साहित्य के रूप में नाटक के महत्व पर चर्चा करें।

ब्लॉक - IV

इकाई - 13

निबंध

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 निबंध: परिचय, उद्भव एवं विकास
13.4 शुक्ल पूर्व युग
13.5 भारतेंदु युग
13.6 द्विवेदी युग
13.7 शुक्ल युग
13.8 शुक्लोत्तर युग
13.9 व्यंग्य निबंध
13.10 सार संक्षेप
13.11 मुख्य शब्द
13.12 स्व प्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
13.13 संदर्भ ग्रन्थ
13.14 अभ्यास प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

साहित्य रूप की दृष्टि से हिंदी में निबंध का जन्म और विकास आधुनिक युग की देन है। साहित्य के अनेक रूपों का आविर्भाव अनेक कारणों से हुआ राष्ट्रीय जागरण, देश प्रेम, व्यक्ति स्वातंत्र्य, अंतर्राष्ट्रीयता, वैज्ञानिक मशीनों का प्रयोग (औद्योगिक क्रांति), आवश्यकताओं की वृद्धि, गद्य का प्रचलन, मुद्रण कला का प्रचार पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन और अंग्रेजी साहित्य का संपर्क आदि। इन सब कारणों से निबंध रचना को विशेष प्रोत्साहन मिला क्योंकि इस विधा के माध्यम

से लेखक अपनी बात पाठकों तक सीधे पहुंचा सकता था। हिंदी निबंध की शुरुआत उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से मानी जाती है। निबंध की आरंभिक परंपरा में भारतेंदु युग के लेखकों का विशेष महत्व है क्योंकि उन्होंने विषय, शैली और भाषा तीनों स्तरों पर निबंधों में नए प्रयोग किए किंतु निबंधों का प्रौढ़ रूप द्विवेदी युग में ही प्राप्त हुआ। इस दौर में जहां एक ओर भाषा का मानक रूप निर्मित हुआ, वहीं दूसरी ओर चिंतन में प्रौढ़ता और शैली में परिष्कार भी हुआ।

13.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- निबंध के विकास, परिचय, और इसकी उत्पत्ति के बारे में जान सकेंगे।
- शुक्ल-पूर्व युग, भारतेंदु युग, और द्विवेदी युग के निबंधकारों के योगदान को समझ सकेंगे।
- हिंदी निबंध की विभिन्न शैलियों, विचार और भाषा के उन्नति को समझने में सक्षम होंगे।
- शुक्ल युग और शुक्लोत्तर युग में निबंधों के शैलीगत विकास को समझ सकेंगे।
- व्यंग्य निबंध की विशेषताओं और इसके योगदान को समझ पाएंगे।

13.3 निबंध: परिचय, उद्भव एवं विकास

हिंदी निबंध के विकास में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का केंद्रीय महत्व रहा है। उन्होंने विचार, शैली और भाषा तीनों स्तरों पर हिंदी निबंध को उच्च स्तरीय स्वरूप प्रदान किया। जिस प्रकार हिंदी नाटक और कविता के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद का विशेष महत्व रहा है, उसी प्रकार हिंदी निबंध के क्षेत्र में आचार्य रामचंद्र

शुक्ल का विशेष महत्व है। इसलिए हिंदी निबंध के विकास के केंद्र में आचार्य रामचंद्र शुक्ल को मानते हुए हम उसे तीन युगों में बांट सकते हैं-

1. शुक्ल-पूर्व युग (1850 से 1920)
2. शुक्ल युग (1920 से 1940)
3. शुक्लोत्तर युग (1940 से आज तक)

1. शुक्ल-पूर्व युग (1850 से 1920)

13.4 शुक्ल पूर्व युग

हिंदी नाटक की ही भांति हिंदी निबंध लेखन की शुरुआत भारतेंदु युग से हुई। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 1868 ई. में "कवि वचन सुधा" का प्रकाशन आरंभ किया। इसके प्रकाशन ने हिंदी में साहित्यिक लेखन को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया। बाद में स्वयं भारतेंदु ने 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' और 'बाला बोधिनी' पत्रिका की भी शुरुआत की। भारतेंदु युग के ही कई अन्य लेखकों ने भी कई पत्र पत्रिकाएं शुरू कीं। इनमें प्रताप नारायण मिश्र द्वारा प्रकाशित 'ब्राह्मण', बालकृष्ण भट्ट का 'हिंदी प्रदीप', बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन का, 'आनंद कादंबिनी', श्रीनिवासदास का 'सदादर्श' आदि प्रमुख हैं। उस युग में लिखे गए निबंध प्रायः इन्हीं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थे।

वैसे हिंदी में निबंध लेखन की शुरुआत कब हुई और पहला निबंध कब लिखा गया और किसने लिखा, यह बहुत स्पष्ट नहीं हैं आमतौर पर माना जाता है कि बालकृष्ण भट्ट हिंदी निबंध के जनक हैं।

13.5 भारतेंदु युग

भारतेंदु युग के निबंधों की मूल प्रेरणा अपने समाज के नैतिक और राजनीतिक जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने की भावना है। इसलिए इस युग के निबंधकारों ने समाज सुधार, राष्ट्रप्रेम, देशभक्ति, अतीत गौरव का प्रेम, विदेशी शासन के प्रति

आक्रोश आदि को अपने निबंधों का विषय बनाया है। यद्यपि उस समय विदेशी शासन के विरुद्ध जन आंदोलन शुरू नहीं हुए थे, इसलिए लेखकों ने अंग्रेजी शासन के प्रति भक्ति भावना भी दिखलाई है, लेकिन राष्ट्र के विकास की चिंता और उसके प्रति प्रेम भी बरांबर व्यक्त हुआ है। भारतेंदु युग के निबंधकारों ने इन विषयों के अतिरिक्त ऐसे विषयों पर भी निबंध लिखे जिनमें उनकी जिंदादिली और विनोदवृत्ति झलकती है। जैसे- 'आंख', 'नाक', 'कान', 'भौं', 'धोखा', 'बुढ़ापा' आदि विषयों पर निबंध लिखे गए। भारतेंदु युग के लेखकों की मूल प्रवृत्ति मनोविनोद की थी, इसलिए वे गंभीर विषय को हास्य और व्यंग्यपूर्ण शैली में सजीव बनाकर प्रस्तुत करते थे। उनके निबंधों में गंभीर विवेचन का प्रायः अभाव मिलता है लेकिन वे रससिक्त, चुटकी और चिकोटी से भरे पड़े हैं। व्यक्तित्व का सहज समावेश होने के कारण इस दौर के निबंधों की प्रमुख विशेषता आत्मनिष्ठता है।

भारतेंदु युग में हिंदी भाषा का कोई मानक नहीं बना था। व्याकरण की दृष्टि से वह निर्दोष नहीं कही जा सकती। लेकिन बात को प्रभावशाली ढंग से कहना वे जानते थे, विशेषकर भाषा के माध्यम से व्यंग्य और विनोद की सृष्टि करने में वे माहिर थे। मुहावरों, लोकोक्तियों के प्रयोग से इस युग के निबंधों की भाषा प्राणवान बन गई है। उनके पास व्यापक शब्द भंडार हैं। तत्सम, तद्भव शब्दों के साथ अरबी-फारसी-उर्दू शब्दों की बहुतायत है। कुछ निबंध तो पूर्णतः पूर्व शैली में लिखे गए हैं। प्रायः उनकी शैली निष्कर्ष निकालकर शिक्षापूर्ण निर्देश और उपदेश देने की है।

इस युग के प्रमुख निबंधकारों में भारतेंदु हरिश्चंद, प्रतापनारायण, बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', लाला श्रीनिवासदास, अंबिकादत्त व्यास, बालमुकुंद गुप्त, जगमोहन सिंह, केशवराम भट्ट, राधाचरण गोस्वामी आदि हैं।

1. भारतेंदु हरिश्चंद्र (रचनाकाल 1850-1885) साहित्य में युगप्रवर्तक माने जाते हैं। उन्होंने इतिहास, पुरातत्व, धर्म, समाज-सुधार, जीवनी, यात्रा वर्णन, भाषा

आदि विषयों पर व्यंग्यात्मक शैली में निबंध लिखे। विषयों की विविधता उनके विस्तृत अध्ययन और व्यापक जीवनानुभवों का परिणाम थी। उनके निबंधों में जहां इतिहास, धर्म, संस्कृति और साहित्य की गहरी जानकारी का परिचय मिलता है, वहीं देशप्रेम, समाज सुधार की चिंता और गौरवशाली अतीत के प्रति निष्ठा का भाव भी प्रकट होता है। भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है, 'लेवी प्राण लेवी' और 'जातीय संगीत' में राष्ट्र के प्रति उनकी गहरी निष्ठा व्यक्त हुई है तो 'स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन', पांचवें पैगंबर', 'कानून ताजीरात शौहर', 'ज्ञात विवेकिनी सभा', 'अंग्रेज स्तोत्र', 'कंकड़ स्तोत्र', जैसे निबंधों में उनकी राजनीतिक चेतना के साथ ही व्यंग्य-विनोद की क्षमता का पता लगता है। भारतेंदु के निबंधों की भाषा में उर्दू, संस्कृत और बोलचाल की हिंदी के शब्दों का प्रयोग हुआ है। 'कानून ताजीरात शौहर' की भाषा उर्दूनिष्ठ है, एक उदाहरण देखिए- "जो शौहर अपनी जोरू से लड़ना चाहे या लड़े या गैर शख्स जो उससे लड़ता हो, उसकी इमदाद करे तो उसको किसी किस्म की कैद की सजा दी जाएगी लेकिन अगर अदालत की राय में यह जुर्म संगीन मालूम हो तो हब्सदवाम बअबूर दरयायषोर की सजा देने का भी अदालत को अख्तियार है।"

उपर्युक्त अंश की भाषा उर्दूनिष्ठ है और इसमें व्यंग्य-विनोद भी है। भाषा के एक अन्य रूप का उदाहरण भी देखिए -

"भारतवर्ष की उन्नति के जो अनेक उपाय महात्मगण आजकल सोच रहे हैं, उनमें एक और उपाय भी होने की आवश्यकता है। इस विषय के बड़े-बड़े लेख और काव्य प्रकाश होते हैं, किंतु वे जनसाधारण को दृष्टिगोचर नहीं होते। इसके हेतु मैंने यह सोचा कि जातीय संगीत की छोटी-छोटी पुस्तकें बनें और वे सारे देश गांव में साधारण लोगों में प्रचार की जाएं।" (जातीय संगीत: भारतेंदु) उपर्युक्त अंश में संस्कृतनिष्ठ, तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है लेकिन भाषा सहज है। एक बात जो ध्यान देने की है वह यह है कि भाषा के प्रति भारतेंदु का दृष्टिकोण यथार्थवादी था। इस तथ्य का पता हमें उनके पहले उदाहरण से चलता है जिसमें

कि कानून संबंधी विषय का वर्णन है। चूंकि उस समय अदालतों की भाषा उर्दूनिष्ठ थी, भारतेंदु के निबंधों की भाषा भी उर्दूनिष्ठ है।

2. बालकृष्ण भट्ट (रचनाकाल 1844-1914) इस युग के प्रमुख निबंधकार हैं। उन्होंने लगभग एक हजार निबंध लिखे हैं। बालकृष्ण भट्ट ने बत्तीस वर्षों तक 'हिंदी प्रदीप' निकाला। उन्होंने समाज, साहित्य, धर्म, संस्कृति, रीति, प्रथा, भाव, कल्पना सभी क्षेत्रों से विषयों का चयन किया है। भट्ट जी के निबंधों में हास्य-विनोद के साथ कल्पना, भावना और वैचारिकता भी पाई जाती है। उनकी भाषा प्रायः बोलचाल के समीप है। उनमें हिंदी के अतिरिक्त उर्दू, अंग्रेजी, संस्कृत के शब्दों का काफी प्रयोग हुआ है जिससे भापा कहीं-कहीं बोझिल हो गई है। उन्होंने 'चारुचरित्र' 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है', 'चरित्रपालन', 'प्रतिभा', 'आत्मनिर्भरता', जैसे विचारात्मक निबंध, 'आंसू, 'मुग्ध माधुरी', 'पुरुष अहेरी की स्त्रियां अहेर हैं', 'प्रेम के बाग का सैलानी' आदि भावात्मक निबंध, 'संसार-महानाट्य शाला', 'चंद्रोदय', 'शंकराचार्य' और 'नानक' जैसे वर्णनात्मक निबंध, 'आंख', 'नाक', 'कान', 'बातचीत' जैसे सामान्य विषयों तथा 'इंगलिश पढ़ें सो बाबू होय', 'दंभाख्यान', 'अकिल अजीरन रोग' जैसे व्यंग्य-विनोदपरक निबंध लिखे। सामाजिक समस्याओं पर लिखे गए निबंध हैं- 'बालविवाह', 'स्त्रियां और उनकी शिक्षा', 'महिला स्वातंत्र्य' आदि।

3. प्रतापनारायण मिश्र (रचनाकाल 1856-1894) इनका हिंदी निबंध के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनमें तीखे व्यंग्य और विनोद की वृत्ति थी, जिसका उल्लेख स्वयं रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास ग्रंथ में किया है। इनकी भाषा में 'व्यंग्यपूर्ण वक्रता' की मात्रा अधिक है। इसके लिए वे लोकोक्तियों और मुहावरों का भी प्रयोग करते हैं। मिश्र जी ने जहां एक ओर 'भौं, 'बुढ़ापा', 'होली', 'धोखा', 'मेरे को माने शाहमदार, जैसे विनोद और सूझपूर्ण निबंध लिखे हैं, वहां दूसरी ओर 'शिवमूर्ति', 'काल', 'स्वार्थ', 'विश्वास', 'नास्तिक' जैसे गंभीर विषयों पर भी लेखनी चलाई है।

4. बालमुकंद गुप्त (रचनाकाल 1865-1907) भारतेंदु युग के प्रतिभावान निबंधकार हैं। इन्होंने द्विवेदी युग में भी महत्वपूर्ण लेखन किया है। गुप्त जी ने 'बंगवासी' और 'भारतमित्र' पत्रिकाओं का संपादन किया। इन पत्रिकाओं के माध्यम से ही उनके निबंध प्रकाशित हुए। उनके निबंधों में गहन चिंतन, तीखा व्यंग्य, और मीठी हंसी का समावेश मिलता है। 'शिवशंभु का चिट्ठा' के आठों चिट्टे उनकी देशभक्ति की भावना के. द्योतक तो हैं ही, व्यंग्य और गहरी विचारशीलता के भी परिचायक हैं। इनके निबंधों का संग्रह 'गुप्त निबंधावली' नाम से प्रकाशित हुआ है।

स्वप्रगति परिक्षण

1. भारतेंदु युग के निबंधों में विषयों की विविधता उनके _____ और _____ का परिणाम थी।
2. 'शिवशंभु का चिट्ठा' के लेखक _____ हैं और इसका विषय मुख्यतः _____ है।
3. बालकृष्ण भट्ट ने _____ वर्षों तक 'हिंदी प्रदीप' पत्रिका का संपादन किया।
4. प्रतापनारायण मिश्र के निबंधों में _____ और _____ की प्रमुखता है।

13.6 द्विवेदी युग

हिंदी निबंध का द्वितीय उत्थान द्विवेदी युग में 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' तथा 'सरस्वती' के प्रकाशन से प्रारंभ होता है। इस युग में राष्ट्रीय चेतना और अधिक परिपक्व हो चुकी थी। यह युग राष्ट्रीय जागृति, विश्वप्रेम, सामाजिक एकता, अतीत गौरव, सांस्कृतिक नवजागरण तथा भाषा के परिष्कार का युग है। अतः इस युग में निबंधों में विषयों की विविधता, विचारों की गंभीरता और भाषा की

शुद्धता और व्याकरण सम्मतता मिलती है। उधर राष्ट्रीय परिस्थितियों ने संपूर्ण युग को गंभीरता, उत्तरदायित्व तथा सोद्देश्यता से ऐसा बोझिल बना दिया कि व्यंग्य-विनोद, हास परिहास, राग-रस आदि की मात्रा कम होती गई इस युग के निबंध पत्र पत्रिकाओं में अधिक प्रकाशित हुए। इनमें 'नागरी प्रचारिणी' (1897), 'सरस्वती' (1900). 'समालोचक' (1902), 'इंदु' (1909), 'मर्यादा' (1910), 'प्रभा' (1913) आदि प्रमुख हैं।

इस युग के निबंधकारों में बालमुकंद गुप्त, महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्याम सुंदरदास, रामचंद्र शुक्ल, सरदार पूर्णसिंह, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, माधवप्रसाद मिश्र आदि प्रमुख हैं।

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी (रचनाकाल 1864-1938) महावीर प्रसाद द्विवेदी ने मूलतः विचारात्मक निबंध लिखे लेकिन उनमें तात्विक विश्लेषण और सूक्ष्म चिंतन का अभाव है। द्विवेदी जी को इस बात की चिंता सबसे अधिक थी कि हिंदी पाठक की ज्ञान-पिपासा को कैसे तृप्त किया जाए। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में उपलब्ध नई और उपयोगी जानकारी उस तक कैसे पहुंचाई जाए और सबसे बढ़कर उसमें हिंदी माध्यम से सोचने की क्षमता का विकास कैसे किया जाए। इसके लिए उन्होंने कहानी, निवेदन, उपदेश, संदेश, निर्देश, प्रमाण, उदाहरण, तथ्य का उल्लेख आदि बहुविध उपयोगी एवं रोचक पद्धतियों से निबंध का प्रारंभ, विकास और समापन करते हुए पाठकों को नूतन साम्रगी दी। सन् 1903 में 'सरस्वती' के संपादकत्व का कार्यभार संभाला और 1912 तक इस कार्य में लगे रहे। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' के माध्यम से हिंदी भाषा और साहित्य को प्रौढ़ता और नवीनता प्रदान की। "उन्होंने अनेक प्रकार के उपयोगी, ज्ञान विषयक, ऐतिहासिक, पुरातत्व तथा समीक्षा संबंधी निबंध लिखे। उन्होंने गद्य की अनेक शैलियों का प्रवर्तन तथा भाषा का संस्कार किया। अंग्रेजी के 'बेकन' के निबंधों का अनुवाद भी 'बेकन विचार-रत्नावली' के नाम से प्रस्तुत किया, जिससे हिंदी

के अन्य अनेक लेखकों को निबंध लिखने की प्रेरणा मिली।" (हिंदी साहित्यकोश भाग 2, सं. डॉ. धीरेंद्र वर्मा)।

महावीर प्रसाद द्विवेदी के समीक्षात्मक निबंधों में 'कवि और कविता', 'साहित्य की महत्ता, वर्णनात्मक निबंधों में 'एक योगी की साप्ताहिक समाधि' और 'अद्भुत इंद्रजाल' आदि प्रमुख हैं। युगव्यापी नीरसता से अलग हटकर उन्होंने कुछ ऐसे निबंध भी लिखे जिनमें विचारों के ऊपर लालित्य का रंग चढ़ गया है। साधारण विषय को भी गंभीर स्तर तक उठाने और गूढ़ अर्थों के उद्घाटन का प्रयत्न किया गया है। 'दंडदेव का आत्मनिवेदन' इस प्रसंग में उल्लेखनीय है।

2. पंडित माधव प्रसाद मिश्र द्विवेदी युग के प्रभावशाली लेखक थे। उन्होंने 'सुदर्शन' का संपादन किया था। भारत की प्राचीन संस्कृति, धर्म, दर्शन और साहित्य के प्रति उनकी गहरी आस्था थी। राष्ट्र के उत्थान और जनसाधारण के आर्थिक तथा नैतिक विकास की हार्दिक लालसा उनके मन में थी। इस दृष्टि से 'श्री पंचमी' शीर्षक निबंध उल्लेखनीय है, एक उदाहरण देखिए-

"जो रुपए लेकर पतित से पतित पुरुष को भी धर्मात्मा और वर्णसंकर या शूद्र को क्षत्रिय बना सकते हैं, धर्म-व्यवस्था के नाम से अधर्म और रक्त से भरी व्यवस्था दे सकते हैं और जो एक दरिद्र सिसंबल पर धर्मात्मा पुरुष के गिड़गिड़ाने और हा-हा खाने पर भी बिना टका लिए चार-पांच पंक्ति लिखना मूर्खता समझते हैं, उन अर्थ-पिशाच पापियों को इस सारस्वतोत्सव में लेखनी-पूजन का क्या अधिकार है?" (माधव प्रसाद मिश्र निबंधमाला, तृतीय खंड, पृष्ठ 6)

उपर्युक्त उदाहरण में भाषा संस्कृतनिष्ठ है। लेकिन मिश्र जी की भाषा में प्रचलित मुहावरों और बोलचाल के शब्दों से व्यंजना-शक्ति बढ़ गई है। मिश्र जी की शैली ओज और प्रवाह से पूर्ण है। उसमें सर्वत्र भाषण का सा आरोह और अवरोह दिखाई पड़ता है। विवेचन के प्रसंगों में भी राग-तत्व की प्रधानता है।

मिश्र जी ने कुछ ऐसे निबंध भी लिखे हैं जिनका संबंध मनोविकारों और गार्हस्थिक समस्याओं से है। इनमें शास्त्रीय निरूपण कम है, अनुभव और व्यवहार का सहारा

अधिक लिया गया है। कुछ चिंतनपरक निबंध भी हैं जैसे-'सब मिट्टी हो गया। त्योहारों और पर्वों पर उनके निबंध भावपूर्ण और कल्पना के सौंदर्य से संपन्न बने- 'होली', 'रामलीला', 'व्यासपूजा', 'श्रीपंचमी' आदि। शोध और अनुसंधान के क्षेत्र में उनकी खंडन-मंडनपूर्ण शैली प्रभावपूर्ण थी। 'बेवर का भ्रम' इसका अच्छा उदाहरण है।

3. बाबू श्यामसुंदरदास के अधिकांश निबंध आलोचनात्मक हैं। उनके विषय प्रायः साहित्यिक और सांस्कृतिक रहे। इनमें विचारों और भावों का प्रवाह निरंतर जारी रहता है। उनके विवेचन में जितना विस्तार मिलता है, उतनी गहराई नहीं। इसके दो कारण हैं- पहला, तो यह कि वे लेखक होने के साथ-साथ वक्ता भी थे। उनके निबंधों को पढ़ने से व्याख्यान का-सा आभास होता है। दूसरा कारण यह है कि वे हिंदी भाषा और साहित्य के अभावों को दूर करना चाहते थे। इसलिए एक ही विषय के गहन विवेचन के बजाय अनेक विषयों पर व्यापक विचार कर लेना वे अधिक उपयोगी समझते थे।

श्यामसुंदरदास की भाषा संस्कृतनिष्ठ और प्रवाहपूर्ण थी। बोलचाल अथवा उर्दू के शब्दों का व्यवहार उन्होंने कम ही किया है। उनके विचारात्मक निबंधों में व्यास-शैली के दर्शन होते हैं जैसे- 'भारतीय साहित्य की विशेषताएं' निबंध में।

4. सरदार पूर्ण सिंह (रचनाकाल 1881-1931) द्विवेदी युग के ऐसे लेखक हैं जो केवल निबंधों के बल पर श्रेष्ठ निबंधकार माने गए। उनके निबंध नैतिक और सामाजिक विषयों से संबद्ध हैं। इनके निबंधों में प्रचलित प्रणाली से भिन्न, जो पद्धति विचारों की व्यंजना के लिए अपनाई गई, वह सर्वथा मौलिक और रूपात्मक विकास की दृष्टि से बड़ी महत्वपूर्ण है। ललित निबंध की जो धारणा आज प्रचलित है, उसका प्रत्यक्ष रूप इनके तीन निबंधों 'आचरण का सभ्यता', 'मज़दूरी और प्रेम' तथा 'सच्ची वीरता' में मिल जाती है। शेष तीन निबंध हैं- 'कन्यादान', 'पवित्रता', 'अमेरिका का मस्त जोगी वाल्ट हिवटमैन'। ये निबंध हिंदी भाषा की स्थाई एवं मूल्यवान निधि हैं। इनमें व्यक्तित्व की सहज अनुभूति और

शैलीगत लालित्य मिलता है। सरदार पूर्ण सिंह की भाषा संकेत संपन्न और भाव-व्यंजक है। संतुलित शब्द विन्यास और वाक्य संगठन निबंध के लालित्य को बढ़ाते हैं।

5. चंद्रधर शर्मा गुलेरी (रचनाकाल 1883-1920) इतिहास, संस्कृति, साहित्य और भाषा के प्रकांड पंडित थे। उन्होंने इन्हीं विषयों पर खोजपूर्ण (गवेषणापूर्ण) और गंभीर निबंध लिखे। उनके निबंधों में गंभीरता के साथ सरल व्यंग्य विनोद, पांडित्य के साथ बौद्धिक सरसता और प्राचीनता के साथ नवीनता का अद्भुत सामंजस्य दिखाई देता है। 'कछुआ धर्म (विचार प्रधान) और 'मारेसि मोहि कुठांव' (भाव प्रधान) में आग्रह सामयिकता और तात्कालिक कर्त्तव्य का ही है।

गुलेरी के निबंध उनके व्यक्तित्व की सजीवता से ओतप्रोत हैं। उनकी भाषा अधिकतर चलते हुए शब्दों से बनी है। केवल प्रसंगवश पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है। किसी विशेष प्रकार के शब्द-समूह पर उनका आग्रह नहीं था। वे छोटे-छोटे वाक्य लिखते थे लेकिन उन्हें भावपूर्ण बना देते थे।

6. पद्मसिंह शर्मा के निबंध आलोचनात्मक थे। निबंध मुख्यतया साहित्यिक विषयों अथवा व्यक्तियों पर लिखे गए हैं। इनके निबंधों के संग्रह 'पद्मपराग' और 'पद्ममंजरी' नाम से प्रकाशित हुए। किसी सामान्य विषय को लेकर चिंतन तथा कल्पना के सहारे उसमें जान डाल देना उनके लिए आसान था।

शर्मा जी की भाषा में प्रचलित बोली के मुहावरे, शब्द तथा उर्दू-फारसी और अंग्रेजी के शब्दों का खुलकर प्रयोग किया गया है। वे अवसर के अनुकूल छोटे-छोटे वाक्यों में सफाई के साथ अपनी बात कह जाते हैं। विचारों में उलझन और दुरूहता नहीं दिखती। उन्होंने ऐसी भाषा का विकास किया जो आलोचना अथवा निबंध को भी कहानी तथा उपन्यास की तरह सरस बना सके।

13.7 शुक्ल युग

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंध क्षेत्र में पदार्पण करने से निबंध-साहित्य में एक नया जीवन आया। द्विवेदी युग में विषय-विस्तार और गद्य भाषा का परिष्कार तो पर्याप्त हुआ किंतु उस काल में उतनी विश्लेषण बुद्धि से काम लेने और गहराई में जाने की प्रवृत्ति न उत्पन्न हो सकी। इस युग में गद्य की भाषा में सृजनात्मक प्रयोग का कार्य आरंभ हुआ। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने गद्य भाषा को निखारने और जटिल विषय, विचार और भाव को सफलता पूर्वक प्रस्तुत करने का उल्लेखनीय कार्य किया। यह वह दौर था जब कथा साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद और काव्य के क्षेत्र में छायावादी कवि सक्रिय थे। इनका स्पष्ट प्रभाव निबंध लेखन पर पड़ा। स्वयं छायावादी कवियों और प्रेमचंद ने विभिन्न विषयों पर निबंध लिखे। छायावादी कवियों की गद्य भाषा में सरसता, भाव प्रवणता, कल्पनाशीलता आदि गुण दिखाई देते हैं। इस युग की गद्य भाषा पर इन दोनों तरह के लेखन का प्रभाव पड़ा। इस युग के निबंधकारों में देशभक्ति और राष्ट्रपेम की भावनाओं के साथ व्यापक मानवीय दृष्टिकोण भी रहा है।

शुक्ल युग में रचना विन्यास की दृष्टि से एक अन्य बात भी ध्यान देने योग्य है। निबंध को जिस प्रकार उपयोगी विषयों पर लिखे गए लेखों से अलग किया गया, उसी प्रकार रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, यात्रा आदि अन्य साहित्यिक विधाओं से भी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि "द्विवेदी युग की अपेक्षा इस युग में संरचनात्मक दृष्टि से निबंध के अधिक स्पष्ट लक्षण निर्मित हुए और लेखकों तथा आलोचकों के बीच इस विषय की सही धारणा विकसित हुई।" (हिंदी वाङ्मयः बीसवीं शतीः संपादक डॉ. नगेंद्र)

शुक्ल युग के निबंधकारों में रामचंद्र शुक्ल, गुलाबराय, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, निराला, महादेवी वर्मा, नंददुलारे वाजपेयी, शांतिप्रिय द्विवेदी, प्रेमचंद, राहुल सांस्कृतयायन, रामनाथ सुमन, माखनलाल चतुर्वेदी आदि प्रमुख हैं।

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल (रचनाकाल 1884-1941) इस युग के प्रतिनिधि निबंधकार हैं। शुक्ल जी ने विभिन्न विषयों पर निबंध लिखे जो 'चिंतामणि' के तीन भागों में संकलित हैं। उनकी प्रवृत्ति गंभीर विवेचन और तीखे व्यंग्य की रही है। यही कारण है कि निबंधों में उनका चिंतक और मानवतावादी रूप उभरा है। उन्होंने 'भय', 'क्रोध', 'श्रद्धा' और 'भक्ति', 'घृणा', 'करुणा', 'लज्जा और ग्लानि', 'लोभ और प्रीति', 'ईर्ष्या', 'उत्साह', आदि विभिन्न मनोभावों पर दस निबंध लिखे जिनमें उन्होंने इन मनोभावों के सामाजिक पक्ष का विश्लेषण किया। शुक्ल जी ने साहित्य के गंभीर पक्षों पर भी लिखा। ऐसे निबंधों में गंभीर चिंतन, सैद्धांतिक विवेचना और तर्कपूर्ण व्याख्या तो मिलती ही है, भावुक हृदय के दर्शन भी होते हैं जैसे- 'कविता क्या है, 'साधारणीकरण', 'व्यक्ति-वैचित्र्यवाद', 'रसात्मक बोध के विविध रूप', 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था।

शुक्ल जी हिंदी भाषा की अपनी प्रकृति के बेजोड़ पारखी थे। शब्द और अर्थ के पारस्परिक संबंधों को वे अच्छी तरह समझते थे। शुक्ल जी ने विचारों के संप्रेषण के लिए संस्कृत, फारसी-उर्दू और बोलचाल की शब्दावली अपनाई है। उन्होंने लोकोक्तियों, मुहावरों तथा लक्षणाओं के नूतन एवं बहुविध प्रयोगों द्वारा एक ओर हिंदी गद्य को व्यंजक बनाया और दूसरी ओर चित्र-विधान में सहायता देने वाली समर्थ भाषा का निर्माण किया। शुक्ल जी विषय, भाषा और शैली सभी दृष्टियों से हिंदी निबंधों को उत्कृष्ट बनाया।

2. बाबू गुलाबराय (रचनाकाल 1888-1963) का निबंध साहित्य इस युग में इसलिए उल्लेखनीय है कि वह मुख्यतः आत्मपरक और व्यंग्यमूलक होने के साथ-साथ लेखक के पांडित्य और जीवनदर्शन की छवि भी प्रस्तुत करता है। उनके निबंधों में गंभीर चिंतन तो मिलता ही है, आत्मीयतापूर्ण व्यंग्य-विनोद भी उनमें देखा जा सकता है। इसके प्रमाणस्वरूप उनके दो निबंध संग्रह सामने रखे जा सकते हैं- 'फिर निराशा क्यों' और 'मेरी असफलताएं। पहले संग्रह में विचार और तत्व चिंतन की प्रधानता है, सामाजिक दायित्व और राष्ट्रीय एवं वैयक्तिक

आचारमूलक प्रश्न उठाए गए हैं, अंतर्वृत्तियों की मनोवैज्ञानिक छानबीन है। उधर दूसरे संग्रह में हास्य, रससिक्त आत्माभिव्यंजन और व्यंग्य-विनोद से निबंधों को लालित्य पूर्ण बनाया गया है।

गुलाबराय जी की भाषा में प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया गया है। संस्कृत, उर्दू, देशज, अंग्रेजी शब्द सहज रूप में ग्रहण किए गए हैं। लोकोक्तियों और मुहावरों का भी धारावाहिक प्रयोग किया गया है।

3. माखनलाल चतुर्वेदी तन, मन और प्राण से पूर्णतः राष्ट्रीय थे। उनकी रचनाओं में अनुभूति-प्रवणता अवश्य है, किंतु विषय के वस्तुगत विवेचन की उपेक्षा नहीं हुई है। वे तथ्यों, घटनाओं और वस्तु रूपों के प्रति पाठकों में रागात्मक चेतना जगाकर उन्हें कर्म की ओर अग्रसर करना चाहते थे। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने भाव का आश्रय लिया और ज्ञान को उसकी छाया में विकसित किया। रागतत्व की प्रधानता के कारण उनका गद्य लयात्मक, लालित्यपूर्ण और प्रवाहयुक्त बन गया है। 'साहित्यदेवता' संग्रह में रसपूर्ण, आत्माभिव्यंजन निबंध हैं। चतुर्वेदी जी ने अप्रस्तुत योजना (प्रतीकात्मक अर्थ) का आश्रय लेकर भाषा को बिंब-विधायिका बना दिया है।

उनकी गद्य शैली भावावेग से विचारों को प्रस्तुत करती है। अतः वाक्य-विन्यास भी कहीं बहुत लंबा, कहीं मध्यम आकार का तथा कहीं अत्यंत छोटा हो जाता है। उनकी भाषा में तत्सम, तद्भव शब्दों के अतिरिक्त फारसी, उर्दू और अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी किया गया है।

4. राहुल सांकृत्यायन बहुभाषाविद्, पर्यटक, साहित्यकार, अन्वेशक और पुरातत्ववेत्ता थे। उनके पुरातत्वविषयक निबंध 'पुरातत्व निबंधावली' में प्रकाशित हैं। 'साहित्य निबंधावली' में भाषा और साहित्य विषयक निबंध संकलित हैं। उनके यात्रा विवरणों को उत्कृष्ट निबंधों की कोटि में रखा जा सकता है।

राहुल जी विषय के जानकार और ज्ञानी थे। इस कारण वे अपने निबंधों में नए-नए तथ्यों का समावेश करते थे। राहुल जी ने अपने निबंधों में तत्कालीन विषयों

को ग्रहण किया। 'मातृभाषाओं का प्रश्न', 'प्रगतिशील लेखक', 'हमारा साहित्य', 'भोजपुरी' आदि निबंध बहुचर्चित समस्याओं को छेड़ते हैं। उनमें निबंधकार की अपनी तर्क-पद्धति और चिंतन-प्रक्रिया दिखाई देती है।

राहुल जी का गद्य लोकोन्मुखी था। जनता की जबानपर चलने वाले शब्द उन्हें प्रिय थे। अंग्रेजी के परिवर्तित और प्रचलित शब्दों का व्यवहार भी खुलकर करते थे।

5. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' महाकवि के रूप में तो विख्यात हैं ही, किंतु गद्य के क्षेत्र में भी उनका योगदान कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है। उन्होंने अनेक प्रभावशाली निबंध लिखे जो 'प्रबंध पद्म', 'प्रबंध प्रतिमा', 'चयन', 'चाबुक, आदि निबंध संग्रहों में संकलित हैं। ये निबंध मुख्यतः काव्य, साहित्य और हिंदी भाषा की अपनी समस्याओं के संबद्ध हैं।

निराला जी के निबंधों में ध्यान आकर्षित करने वाली सबसे महत्वपूर्ण बात है उनका अक्खड़ व्यक्तित्व जो किसी परिस्थिति में समझौते के लिए लाचार नहीं होता। उनके निबंधों में आत्माभिव्यक्ति के दर्शन होते हैं।

एक विलक्षण बात यह है कि उनके निबंध भावुकता और कल्पना से दूर हैं। उनकी गद्य शैली यथार्थवादी है। वे अपने अनुभवों को सामान्य किंतु चुस्त भाषा में बिना किसी लाग-लपेट के कह देते हैं। पद्य की तरह गद्य में भी ये वितरण, तथ्य कथन या अर्थ निरूपण से संतुष्ट नहीं होते वरन् अप्रस्तुत विधान के आश्रय से उसे चित्रित कर देते हैं।

उनकी भाषा छोटे-छोटे वाक्यों से बनी है। उनके शब्द, लोकोक्तियां, मुहावरे ग्रामीण परिवेश से लिए गए हैं। इस तरह जनभाषा का प्रयोग उन्होंने किया है।

13.8 शुक्लोत्तर युग

द्विवेदी युग और शुक्ल युग के निबंध अधिकाधिक गंभीर, साहित्यिक, विवेचनापूर्ण और तर्कसंगत हो गए। इनमें न तो भारतेंदु युगीन निबंधों की-सी

वैयक्तिता है और न भावना की तरलता। यद्यपि छायावादी कवियों के निबंधों में व्यक्तित्व और आत्मीयता की झलक पाई जाती है किंतु अधिकतर आत्मपरकता और जिंदादिली का अभाव रहा। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात शुक्ल युग के बाद के दौर में एक बार फिर निबंधों में वैयक्तिता का समावेश हुआ और वह विचारों को प्रकट करने का प्रमुख एवं सशक्त माध्यम बनी है। उसका आकार भी छोटा हुआ है। भाषा बोलचाल की-सी होने लगी है। उसमें तत्सम शब्दों के स्थान पर तद्भव और देशी शब्दों का प्रयोग अधिक होने लगा है। निबंध के विषयों में विविधता बढ़ने लगी है।

शुक्ल युग के बाद के दौर में निबंध लेखन की कई शैलियों ने अपनी अलग पहचान बनाई। इस युग में तीन प्रमुख शैलियों ने निबंध लेखन को उत्कर्ष पर पहुंचाया- वैचारिक निबंध, ललित निबंध और व्यंग्य निबंध शैलियां। अब आगे हम इन शैलियों और उनके निबंधकारों का अध्ययन करेंगे।

• वैचारिक निबंध

शुक्ल युग के बाद भी हिंदी वैचारिक निबंधों की परंपरा बराबर बनी रही। इस दौर के वैचारिक निबंधों में विचार की स्पष्टता और तर्कपूर्ण चिंतन के साथ विचारात्मक आग्रह भी व्यक्त हुए। जैनेंद्र कुमार, डॉ. संपूर्णानंद, रामविलास शर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी, नगेंद्र आदि के निबंधों से उनकी वैचारिक दृष्टि का परिचय मिलता है। इन निबंधकारों ने अपने निबंधों के लिए समसामयिक विषय चुने।

जैनेंद्र कुमार प्रसिद्ध कथाकार तो हैं ही, निबंध क्षेत्र में भी उन्होंने ख्याति अर्जित की। उन्होंने सांस्कृतिक, नैतिक और राजनीतिक चिंतन को अपनी विशिष्ट शैली में विवेचनात्मक निबंधों के रूप में प्रस्तुत किया। कहीं-कहीं प्रश्नोत्तर अथवा साक्षात्कार (इंटरव्यू) की पद्धति भी अपनाई है। उनके निबंधों की खास विशेषता यह है कि वे समस्या के दार्शनिक पहलू को लेकर चलते हैं और जीवन के किसी बड़े सत्य से जोड़ देते हैं। इनके निबंध पाठक को एकाएक किसी सुस्पष्ट निर्णय

तक नहीं पहुंचाते, बल्कि उसे चक्करदार मार्ग से ले जाकर उलझनपूर्ण स्थिति में छोड़ देते हैं। इनके निबंध 'समय और हम' पुस्तक में संकलित हैं।

डॉ. संपूर्णानंद के निबंधों में दार्शनिक विवेचन है, लेकिन उनमें जटिलता नहीं है। 'शिक्षा की समस्या' उनका विचार प्रधान निबंध है।

डॉ. रामविलास शर्मा के निबंधों में प्रेमचंद और शुक्ल जी दोनों की विशेषताएं मौजूद हैं। उनमें दो टूक बात कहने की प्रवृत्ति है इसीलिए उन्हें निष्कर्ष पर पहुंचने की जल्दी रहती है और बेचैनी भी। उनकी निबंध शैली तीक्ष्ण व्यंग्य से बनी है। भाषा विश्लेषणात्मक किंतु सरल और सहज है। उन्होंने ज्यादातर साहित्यिक विषयों पर आलोचनात्मक निबंध लिखे हैं लेकिन कुछ निबंध उन्होंने राजनीतिक और सामाजिक विषयों पर भी लिखे हैं। ऐसे निबंध 'विराम चिह्न में संकलित हैं।

डॉ. नगेंद्र ने अपने निबंधों में मुख्यतः काव्यशास्त्र और साहित्य के गंभीर विषयों को निरूपण के लिए चुना है। किंतु साहित्यिक प्रवृत्तियों, शैलियों, कवियों तथा लेखकों पर भी उन्होंने अलग-अलग निबंध लिखे हैं। नगेंद्र जी ने निबंधों के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किए हैं। उन्होंने न केवल उनके कलेवर को निखारा-संवारा है, वरन् उनकी प्राण-चेतना को भी अधिक शक्तिशाली बनाया है। कहीं विवेचना, कहीं संवाद, कहीं गोष्ठी, कहीं स्वप्नजन्य चित्र-विधान, कहीं पत्र लेखन और कहीं आत्मविश्लेषण का आश्रय लेकर उन्होंने अपने निबंध साहित्य को विविध कलात्मक प्रयोगों से संवारा है। उनकी निबंध रचना में तर्क और भावना का सुंदर संतुलन दिखाई पड़ता है। नगेंद्र जी की भाषा प्रौढ़, प्रांजल, संस्कृतनिष्ठ मानक हिंदी है। उनका वाक्य-विन्यास हिंदी की अपनी प्रकृति के अनुरूप है। वे शब्दों के पारखी और अच्छे प्रयोक्ता हैं। उनके प्रमुख निबंध संग्रह हैं- 'विचार और विवेचन' (1944), 'विचार और अनुभूति (1949), 'आस्था के चरण' (1969 आदि)।

• ललित निबंध

ललित निबंध में लालित्य अर्थात् सरस शैली के उत्कर्ष पर विशेष बल होता है। निबंधकार अपने भावों और विचारों को इस रूप में प्रस्तुत करना चाहता है जो सरस, अनुभूतिजन्य, आत्मीय और रोचक लगे। जिसमें भाषा शुष्क न हो बल्कि उसमें कल्पनाशीलता, सहजता और सरसता हो। ललित निबंधकार गहरे विश्लेषण, उबाऊ वर्णन, जटिल वाक्य-रचना से बचता है। ललित निबंधों में रचनाकार के व्यक्तित्व की छाप रहती है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का ललित निबंधकारों में प्रमुख स्थान है। उनके निबंधों में मानवतावादी जीवनदर्शन और भावुक हृदय के दर्शन होते हैं। वे अध्ययनशील प्रवृत्ति के थे। उन्होंने संस्कृत के प्राचीन साहित्य के साथ-साथ पालि, अपभ्रंश और बांग्ला भाषाओं के साहित्य तथा मध्यकालीन हिंदी साहित्य का व्यापक अध्ययन किया था, लेकिन उनकी दृष्टि आधुनिक थी। इसीलिए उनके निबंधों में पांडित्य के साथ-साथ नवीन चिंतन दृष्टि भी मिलती है। द्विवेदी जी ने अपनी रचना को विचारों से बोझिल होने नहीं दिया बल्कि भावानुकूलता के आवेग में विचारों को प्रस्तुत कर उसे नया रूप प्रदान किया है। उनकी खूबी यह है कि विचार, तर्क और भाव के गठन में कहीं भी बिखराव और शैथिल्य नहीं आ पाता। जिस प्रकार शुक्ल जी ने विवेचनात्मक निबंधों का स्वरूप संगठित किया था, उसी प्रकार द्विवेदी जी ने अपनी रचना प्रणाली द्वारा व्यक्तिपरक निबंधों का स्वरूप संगठित किया। उनके निबंधों की भाषा लचीली है। वे देशज शब्दों के साथ संस्कृत के प्रचलित और अप्रचलित शब्दों का सामंजस्य भी बैठा लेते हैं। उनका वाक्य-विन्यास भी ललित एवं भावपूर्ण गद्य के अनुरूप है। उनके प्रमुख निबंध-संग्रह 'अशोक के फूल', 'विचार और वितर्क', 'कल्पलता' आदि हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अतिरिक्त ललित निबंधकारों में विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, विवेकी राय आदि प्रमुख हैं।

विद्यानिवास मिश्र संस्कृत भाषा और साहित्य के विद्वान हैं। किंतु लोक संस्कृति और लोक साहित्य में भी वे गहरी पैठ रखते हैं। इसलिए उनके निबंधों में पांडित्य

(शास्त्र ज्ञान) के साथ-साथ लोक संस्कृति का भी सम्मिलन हुआ। निबंधों की शैली भावपूर्ण और काव्यमय है तथा भाषा भी वैसी ही काव्यमय और सरस है। भाषा में संस्कृत के ललित शब्दों का प्रयोग हुआ है।

विद्यानिवास मिश्र के प्रमुख निबंध संग्रह हैं- 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है', 'तुम चंदन हम पानी', 'तमाल के झरोखे से', 'संचारिणी', 'लागौ रंग हरि' आदि।

13.9 व्यंग्य निबंध

हिंदी में व्यंग्य निबंधों का प्रारंभ भारतेंदु युग में हुआ था। उस दौर में स्वयं भारतेंदु ने तथा प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट आदि ने कई व्यंग्य निबंध लिखे, लेकिन बाद में व्यंग्य निबंध लिखने की परंपरा शिथिल हो गई। यद्यपि आचार्य रामचंद्र शुक्ल, बाबू गुलाब राय, रामविलास शर्मा आदि के निबंधों में व्यंग्य और विनोद का भाव दिखाई पड़ता है किंतु अधिकांश निबंधकारों में वह बात नहीं थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद व्यंग्य निबंध के नए युग की शुरुआत हुई। इसका श्रेय हरिशंकर परसाई को है जिन्होंने व्यंग्य को एक स्वतंत्र साहित्य-रूप की तरह प्रतिष्ठित किया।

व्यंग्य निबंधकार प्रायः समसामयिक विषयों पर लिखता है और उन्हें अपने व्यंग्य का लक्ष्य बनाता है। वह सामाजिक या राजनीतिक समस्या को अपने निबंध में उठाता है, लेकिन वह उसका न तो वैचारिक दृष्टि से विवेचन करता है और न ही भावात्मक वर्णन करता है। वह समस्या की गहराई में जाकर उसके अंतर्विरोधी पहलुओं को उद्घाटित करता है, जो सामान्यतया हमारी पकड़ में नहीं आ पाते या हमारी नजरें उन्हें देख नहीं पातीं। वह उन अंतर्विरोधों को ऐसे प्रस्तुत करता है जिससे कि उससे नया अर्थ व्यंजित हो। यह अर्थ सहज नहीं होता, उसमें एक तरह का बांकपन होता है। इसके लिए रचनाकार एक विशेष प्रकार की हास-परिहास की शैली अपनाता है। वह ऐसे शब्दों का चयन करता है जो व्यंग्य को ध्वनित करें। वह वाक्यों को इस रूप में संगठित करता है कि उससे व्यंग्य को

व्यक्त करने वाला अर्थ निकले। स्वस्थ व्यंग्य से पाठक को एक नई दृष्टि मिलती है और उसमें सामाजिक राजनीतिक जागरूकता आती है। रूढ़ियों, अंधविश्वासों आदि पर लिखे गए निबंधों से पाठक को सामाजिक सोद्देश्यता का संदेश भी मिलता है। हिंदी व्यंग्य लेखकों में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवींद्र नाथ त्यागी, प्रभाकर माचवे, गोपाल प्रसाद व्यास, बरसाने लाल चतुर्वेदी आदि प्रमुख हैं। डॉ. नामवर सिंह का 'बकलम खुद' इस दृष्टि से उल्लेखनीय रचना है। गोपाल प्रसाद व्यास के निबंधों में शुद्ध हास्य का रूप मिलता है। इनके निबंधों में पारिवारिक जीवन की असंगतियों और युग-जीवन की विकृतियों का उपहास उड़ाया गया है और उन पर व्यंग्य भी किया गया है। मैंने कहा, कुछ सच कुछ झूठ', 'तो क्या होता' और 'हलो-हलो' इनके निबंध संग्रह हैं।

प्रभाकर माचवे के निबंधों में आदर्शों का ढोल पीटने वाले लोगों की स्वार्थपरता और अश्लीलता की पोल खोली गई है, परंतु भाषा में संयम सर्वत्र विद्यमान है। अनेक स्थलों पर भाषा के लाक्षणिक प्रयोग अनूठे बन पड़े हैं जो हास्य के साथ चिंतन भी प्रस्तुत करते हैं- 'अभाव में भाव तो बढ़ता ही है', 'कुछ भी हो लंगड़ा पलायनवादी नहीं हो सकता', 'आप चाहे सुर या असुर कहें, ससुर नहीं कह सकते, इत्यादि। 'खरगोश के सींग', 'बेरंग' और 'तेल की पकौड़ियां' इनके निबंध संग्रह हैं। माचवे जी के व्यंग्य पैने और व्यंजक हैं।

हरिशंकर परसाई के निबंध सोद्देश्य हैं जिनके पीछे स्पष्ट वैज्ञानिक दृष्टि है जो समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, दंभ, अवसरवादिता, अंधविश्वास, सांप्रदायिकता, नौकरशाही, शासन के ढीलेपन आदि पर तीव्र प्रहार करती है और व्यक्ति को सचेत रहने की प्रेरणा देती है। परसाईजी के निबंधों में प्रशासनिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक, कलात्मक आदि विषयों पर आकर्षक व्यंग्यों की सृष्टि हुई है। 'आंगन के बैंगन' निबंध का एक अंश प्रस्तुत है-

"बर्दाश्त तक नहीं हुआ जब परिवार की एक तरुणी ने कहा- अच्छा तो है। बैंगन खाये भी जा सकते हैं। मैंने सोचा, हो गया सत्यानाश। सौंदर्य, कोमलता और भावना का दिवाला पिट गया।"

हरिशंकर परसाई के निबंध संग्रह हैं- 'तब की बात और थी', 'भूत के पांव पीछे, 'बेईमानी की परत', 'पगडंडियों का ज़माना', 'सदाचार का तावीज़', 'शिकायत मुझे भी है', 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र', 'सुनो भई साधो', 'निठल्ले की डायरी, आदि।

बरसाने लाल चतुर्वेदी कृत 'मिस्टर चोखेलाल' संग्रह में 39 निबंध हैं जिनमें हास्य और व्यंग्य का पुट है। इन निबंधों में जीवन के सामान्य क्रियाकलापों की उन घटनाओं के द्वारा हास्य की सृष्टि की गई है जो नित्य प्रति हमें प्रभावित करती रहती हैं। भाषण झाड़ने की बीमारी, अभिनेता अथवा नेता बनने की चाह, झूठी हमदर्दी, जोरू की गुलामी, चाटुकारिता जैसे विषयों को अपने निबंधों में प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया है।

शुक्लोत्तर युग में साहित्यिक, भावप्रवण, चिंतनप्रधान उच्चकोटि के निबंध लिखने वाले लेखकों में 'अज्ञेय', कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', शिवप्रसाद सिंह, गजानन माधव मुक्तिबोध, धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय आदि प्रमुख हैं।

13.10 सार संक्षेप

हिंदी में निबंध का विकास आधुनिक युग में हुआ, जो राष्ट्रीय जागरण, समाजिक परिवर्तनों, और औद्योगिक क्रांति जैसे कारणों से प्रेरित था। इसके माध्यम से लेखक सीधे पाठकों तक अपनी बात पहुंचा सकते थे। हिंदी निबंध की शुरुआत उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुई, जब भारतेंदु युग के लेखकों ने विषय, शैली और भाषा में नए प्रयोग किए। हालांकि, निबंध का प्रौढ़ रूप द्विवेदी युग में सामने आया, जब भाषा की परिष्कृतता और चिंतन में गहराई आई।

13.11 मुख्य शब्द

1. **अंतरराष्ट्रीय**:
    - यह शब्द "अंतर" (बीच) और "राष्ट्रीय" (राष्ट्र से संबंधित) का संयुक्त रूप है।
    - अर्थ: विभिन्न देशों या राष्ट्रों के बीच का संबंध या संदर्भ।
    - उदाहरण: अंतरराष्ट्रीय खेल प्रतियोगिता, जैसे ओलंपिक।
2. **वैज्ञानिक**:
    - यह "विज्ञान" से संबंधित शब्द है।
    - अर्थ: जो तर्क, प्रमाण और परीक्षण पर आधारित हो।
    - उदाहरण: वैज्ञानिक अनुसंधान, वैज्ञानिक दृष्टिकोण।
3. **विचार**:
    - मन में उत्पन्न होने वाली धारणा, सोच, या विचारधारा।
    - अर्थ: किसी विषय पर सोचने और समझने की प्रक्रिया।
    - उदाहरण: नवीन विचार समाज को बदल सकते हैं।
4. **शैली**:
    - किसी चीज को प्रस्तुत करने का विशिष्ट ढंग या तरीका।
    - अर्थ: अभिव्यक्ति, लेखन, कला, या किसी कार्य को करने की विशिष्ट विधि।
    - उदाहरण: उनकी लिखने की शैली बहुत आकर्षक है।
5. **राष्ट्रीय प्रेम**:
    - अपने देश (राष्ट्र) के प्रति गहरा स्नेह और भक्ति।
    - अर्थ: अपने देश की सेवा, उसकी उन्नति और सम्मान के लिए समर्पण।
    - उदाहरण: स्वतंत्रता सेनानियों में राष्ट्रीय प्रेम की भावना थी।

6. **गौरव**:
    - गर्व, सम्मान, या प्रतिष्ठा का भाव।
    - अर्थ: अपने गुणों, उपलब्धियों, या किसी से जुड़ी श्रेष्ठता पर गर्व करना।
    - उदाहरण: भारतीय संस्कृति हमारा गौरव है।

13.12 स्व-प्रगति परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

1. उत्तर - विस्तृत अध्ययन और व्यापक जीवनानुभव।
2. उत्तर - बालमुकुंद गुप्त; देशभक्ति।
3. उत्तर - बत्तीस।
4. उत्तर - व्यंग्य और वक्रता।

13.13 संदर्भ ग्रन्थ

1. शुक्ला, र. (2020). *साहित्य दर्पण*. गंगा प्रकाशन।
2. यादव, र. (2020). *प्रारंभिक हिंदी व्याकरण*. रमेश बुक डिपो।
3. स्पेक्ट्रम बुक्स एडीटोरियल टीम। (2021). *हिंदी निबंधों का संग्रह (निबंध बोध)*। स्पेक्ट्रम बुक्स।
4. मित्तल, एच. सी. (2022). *हिंदी साहित्य का इतिहास*. राधाकृष्ण प्रकाशन।
5. शर्मा, र. (2022). *हिंदी का इतिहास*. राष्ट्रीय प्रकाशन गृह।

13.14 अभ्यास प्रश्न

1. हिंदी निबंध की परंपरा के विकास में भारतेंदु युग और द्विवेदी युग के योगदान को स्पष्ट करें।
2. निबंध लेखन के दौरान लेखक की व्यक्तिगत विचारधारा और सामाजिक संदर्भों के प्रभाव को किस प्रकार देखा जा सकता है?
3. हिंदी निबंध में विषय, शैली और भाषा के स्तर पर किए गए प्रारंभिक प्रयोगों के बारे में चर्चा करें।
4. 19वीं सदी के उत्तरार्ध में हिंदी निबंध की शुरुआत और इसके विकास की प्रक्रिया पर चर्चा करें।
5. निबंध रचनाओं के माध्यम से लेखक अपनी बात कैसे सीधे पाठकों तक पहुंचा सकता है? इस संदर्भ में हिंदी निबंध के योगदान को समझाएं।

इकाई -14

संस्मरण और रेखाचित्र

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 संस्मरण की परिभाषा

14.4 संस्मरण विद्या का विकास

14.5 रेखा चित्र की विकास यात्रा

14.6 संस्मरण और रेखाचित्र में अंतर

14.7 सार संक्षेप

14.8 मुख्य शब्द

14.9 स्व प्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

14.10 संदर्भ ग्रन्थ

14.11 अभ्यास प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

'संस्मरण' का शाब्दिक अर्थ होता है, 'सम्यक स्मरण' । सम्यक स्मरण के मूल में होता है- गंभीर चिंतन। मानव जीवन की कटु, तिक्त एवं मधुर स्मृतियां, अनुभूति और संवेदना का संसर्ग प्राप्त करके जब हृदय से निकलती हैं, तब वे संस्मरण का रूप धारण कर लेती हैं। संस्मरण आधुनिक गद्य-साहित्य की एक उत्कृष्ट एवं ललित विधा है।

14.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- संस्मरण की परिभाषा और उसके गद्य साहित्य में स्थान को।
- संस्मरण लिखने की प्रक्रिया, जिसमें लेखक जीवन के घटनाओं, व्यक्तित्वों, और दृश्यावली का चित्रण करता है।
- संस्मरण की विभिन्न परिभाषाओं को, जैसे कि डॉ. कृष्णदेव शर्मा और डॉ. गोविंद त्रिगुणायत द्वारा दिए गए दृष्टिकोण।
- संस्मरण विद्या का इतिहास, इसके विकास की यात्रा और इसके प्रमुख लेखकों का योगदान।
- रेखाचित्र की विधा और इसके विकास के चरण, साथ ही रेखाचित्रकारों के कार्य का महत्व।

14.3 संस्मरण की परिभाषा

1. "संस्मरण लिखने वाला शब्दों द्वारा जीवन की विविध घटनाओं, व्यक्तियों और दृश्यों का ऐसा सजीव चित्र उपस्थित करता है कि पाठक के सम्मुख वह व्यक्ति, वातावरण या प्रसंग साकार हो उठता है। गद्य में लिखे गए इसी चित्र को संस्मरण कहते हैं।" - डॉ. कृष्णदेव शर्मा

2. "भावुक कलाकार जब अतीत की अनंत स्मृतियों में कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अनुरंजित कर व्यंजनामूलक संकेत शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं से रंगकर रोचक ढंग से यथार्थ में व्यक्त कर देता है, तब उसे संस्मरण कह सकते हैं।" डॉ. गोविंद त्रिगुणायत -

3. एक अन्य परिभाषा के अनुसार, "संस्मरण गद्य साहित्य की उस आत्मनिष्ठ विधा को कहते हैं, जिसमें लेखक अपने जीवन की अनंत स्मृतियों में से कुछ विशिष्ट अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अलंकृत करके लाक्षणिक शैली

में आत्मीय राग एवं निजी विशिष्टताओं का संबल लेकर रोचक तथा आकर्षक रूप से चित्रित करता है।"

14.4 संस्मरण विधा का विकास

सन् 1907 में बाबू बालमुकुंद गुप्त ने पं. प्रताप नारायण मिश्र के संस्मरण लिखकर इस विधा का सूत्रपात किया, पर इसका व्यवस्थित रूप सन् 1920 के पश्चात माना जाता है। इसके विकास में 'माधुरी' और 'विशाल भारत' पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

डॉ. त्रिगुणायत इसका प्रथम लेखक सत्यदेव परिव्राजक को स्वीकार करते हैं। सन् 1905 के आसपास आपने अमेरिका की यात्रा की और उस यात्रा से संबंधित संस्मरणों का सजीव वर्णन किया जो भाव तथा प्रभाव दोनों से परिपूर्ण हैं।

मध्य काल

इस युग के कई विख्यात संस्मरण लेखक हैं- पं. सुंदरलाल (बालकृष्ण भट्ट से संबंधित संस्मरण 'विशाल भारत' में), श्री अमृतलाल चतुर्वेदी (मेरे प्रारंभिक जीवन की स्मृतिया).. श्रीनिवास शास्त्री (मेरी जीवन स्मृतियां), पं. बनारसीदास चतुर्वेदी (श्रीधर पाठक विषयक संस्मरण), रूपनारायण पांडेय (द्विवेदी जी), गोपालराम गहमरी (साहित्यिक संस्मरण),

राजा राधिकारमण सिंह (ये और हम', 'तब और अब', 'टूटा तारा' आदि), बाबू श्याम सुंदर (लाला भगवान दीन पर), रामदास गौड (राय देवी प्रसाद पूर्ण तथा श्रीधर पाठक पर) आदि ने सुंदर संस्मरण लिखे हैं।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी कुछ अच्छे संस्मरण लिखे हैं। पदासिंह शर्मा ने पदाराग शीर्षक के अंतर्गत सुंदर संस्मरण लिखे। महादेवी वर्मा ने पथ के साथी नामक संकलन में प्रसाद, पंत, निराला, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, सियाराम गुप्त आदि पर संस्मरण लिखे हैं। डॉ. राजनाथ शर्मा के अनुसार

इनमें संस्मरण के साथ-साथ रेखाचित्र की विशेषताओं का समावेश होने के कारण उनके प्रभाव और मार्मिकता में आशातीत वृद्धि हुई है।

आधुनिक काल

इस काल में संस्मरण का रूप और निखरा। महादेवी जी के संस्मरण इस विधा को पर्याप्त निखार चुके थे। इसी क्रम में आचार्य चतुरसेन शास्त्री के संस्मरणों में पर्याप्त निखार आया। उन्होंने लोकमान्य तिलक से लेकर जवाहर लाल नेहरू तक, सरदार भगतसिंह जैसे क्रांतिकारी, वैज्ञानिक डॉ. शांतिस्वरूप भटनागर और साहित्यकारों में 'जैनेंद्र' पर भी लिखा। डॉ. राजनाथ शर्मा के अनुसार उनके संस्मरणों में उनका मानववादी स्वर ही सर्वत्र मुखरित हुआ है। ये संस्मरण इस बात के प्रमाण हैं कि शास्त्री जी अपने समकालीन युग-जीवन की विभिन्न गतिविधियों के साथ घनिष्ठ रूप से समर्पित रहे थे। ये संस्मरण इतने सुंदर और मार्मिक हैं कि इनके मध्य से शास्त्री जी अपने युगीन-जीवन का एक व्यापक यथार्थ रूप प्रस्तुत करने में पूर्ण समर्थ हैं।

इस क्रम में अन्य स्मरणीय नाम हैं- श्रीमती शिवरानी (प्रेमचंद घर में). श्रीनारायण चतुर्वेदी (गुप्त का हास्य व्यंग्य), रामवृक्ष बेनीपुरी (जंजीरें और दीवारे). शांतिप्रिय द्विवेदी (पदचिह्न), कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर (दीप जले शंख बजे), आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी (मृत्युंजय रवींद्रनाथ), रघुवीर सिंह (शेष स्मृतियां), शंकर व्यास (प्रसाद और उनके समकालीन), काका साहब कालेलकर (स्मरण यात्रा), माखनलाल चतुर्वेदी (समय के घाव), राहुल सांकृत्यायन (बचपन की स्मृतियां), रामनाथ सुमन (हमारे नेता), जैनेंद्र (वे और वे), पं. किशोरी दास बाजपेयी (बालकृष्ण भट्ट), देवेंद्र सत्यार्थी (रखाएं बोल उठी), भगवतशरण उपाध्याय (मैंने देखा), अज्ञेय (अरे यायावर रहेगा याद), राय कृष्णदास (जवाहर भाई), उपेंद्रनाथ अश्क (ज्यादा अपनी कम पराई) आदि।

भगवती प्रसाद बाजपेयी (महाप्राण निराला), विनयमोहन शर्मा (लक्ष्मीचंद्र बाजपेयी), देवेंद्र सत्यार्थी (बलराज साहनी), जगदीशचंद्र जैन (चीन की दीवार),

डॉ. महादेव साहा (सुनीति कुमार चटर्जी), कुसुमाकर (उग्रजी), मोहनसिंह सेंगर (मानवेंद्र राय), मणिका देवी (उस्ताद अलाउद्दीन खां), जगदीशचंद्र माथुर (दस तस्वीरें), डॉ. नगेंद्र (चेतना के बिंब), दिनकर (लोकदेव नेहरू), बच्चन (नए-पुराने झरोखे), ओंकार शरद (लंका महाराजिन), क्षेमचंद्र सुमन (विभिन्न साहित्यकारों के संस्मरण), डॉ. भगवानदास माहौर के क्रांतिकारी बंधुओं पर ('देश की धरोहर' के अंतर्गत)।

इसके अतिरिक्त श्रीराम शर्मा, डॉ. प्रभाकर माचवे, डॉ. रघुवंश, डॉ. विद्यानिवास मिश्र और डॉ. विष्णुकांत शास्त्री के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

स्वप्रगति परिक्षण

1. संस्मरण विधा का प्रारंभ 1907 में बाबू बालमुकुंद गुप्त ने किया। (सत्य/असत्य)
2. 'पथ के साथी' महादेवी वर्मा द्वारा रचित संस्मरण संग्रह है। (सत्य/असत्य)
3. आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने 'जंजीरें और दीवारे' नामक संस्मरण लिखा। (सत्य/असत्य)
4. 'समय के घाव' माखनलाल चतुर्वेदी का संस्मरण है। (सत्य/असत्य)

14.5 रेखा चित्र की विकास यात्रा

रेखाचित्र साहित्य की वह गद्यात्मक विधा है जिसमें किसी विषय-विशेष का उसको बाह्य विशेषताओं को उभारते हुए विभिन्न संक्षिप्त घटनाओं को समेटते हुए, शब्द रेखाओं के माध्यम से सजीव, सरस, मर्मस्पर्शी एवं प्रभावशाली चित्र उभारा जाता है। इसका कार्य यह है कि वह वर्णित पात्र के रूप-सौंदर्य तथा विभिन्न परिस्थितियों में उसके द्वारा की गई विभिन्न घटनाओं की सहायता से उसके चरित्र का एक प्रभाव एवं संवेदनशील चित्र अंकित कर दे। डॉ. मक्खनलाल शर्मा की मान्यता है- "जिस प्रकार चित्र का उद्देश्य किसी भाव विशेष को द्रष्टा

के हृदय में जाग्रत कर देना होता है, ठीक उसी प्रकार रेखाचित्र भी इतिहास, घटना, मनोविज्ञान, वातावरण आदि की सहायता से अभीष्ट भाव की अनुभूति करा देता है और थोड़ी देर के लिए पाठक एक नवीन मानसिक अवस्था प्राप्त कर रसमग्न हो जाता है।"

रेखाचित्र का जन्म-कुछ विद्वान पद्मसिंह शर्मा को रेखाचित्र का जनक मानतेहैं। किंतु स्वतंत्र रूप से और 'रेखाचित्र' नाम से इसका श्रीगणेश करने का श्रेय श्रीराम शर्मा को ही है। इनके 'बोलती प्रतिमा' शीर्षक में कई रेखाचित्र हैं जिनमें से 'बोलती प्रतिमा', 'प्राणों का सौदा', 'जंगल के जीव', 'वे जीते कैसे हैं आदि उनके सुंदर रेखाचित्र हैं। रेखाचित्र की विकास यात्रा-यह यात्रा पर्याप्त सुपुष्ट एवं लंबी है। कुछ प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित रेखाचित्रकारों का परिचय यहां प्रस्तुत है -

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के निबंध भी इसी कोटि के माने जाते हैं। ये निबंध हैं- 'रामलाल पांडे', 'चक्करदार चोरी', 'एक पुरानी कथा', 'बंदर की शिंक्षा', 'शौर्य की कथा', 'कुंज-बिहारी' आदि।

पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार- रेखाचित्र निबंध अधिकतर व्यक्ति-वैशिष्ट्य से युक्त होते हैं, इनमें हास्य, विनोद, व्यंग्य-वक्रता, चुटकी-चकोटी का पुट रहता है। ये निबंध इसी प्रकार के हैं। रामवृक्ष बेनीपुरी महान शैलीकार थे। परिणामतया उनका योग पाकर साहित्य-रचना का यह रूप चमक उठा। उनके कई संग्रह प्रकाशित हुए।। 'लाल तारा', 'माटी की मूरत', गेहूं और गुलाब'। डॉ. हरवंशलाल शर्मा ने लिखा है- "रेखाचित्र को इतने साज-संवार के साथ गढ़कर कोई दूसरा व्यक्ति नहीं रख सका। शैलियां बदलती रहती हैं, कहीं संस्मरणात्मकता, कहीं नाटकीयता, कहीं डायरी, पर भाषा सर्वत्र सहज चली हुई होती है, जिसमें छोटे-छोटे भाव भीने वाक्य पाठकों को मुग्ध किए रहते हैं।"

देवेंद्र सत्यार्थी ने भावात्मक रेखाचित्रों का सृजन किया। उनका संग्रह है 'रेखाएं बोल उठीं जिसमें रेखाएं बोल उठीं, 'सौंदर्य बोध', 'आज मेरा जन्म दिन है',

'रवींद्रनाथ ठाकुर', 'अच्छे-भले आदमी की बात', 'चिरनूतन चित्र', 'दादा-दादी' आदि श्रेष्ठ हैं।

रेखाचित्र को स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान करने में बनारसीदास चतुर्वेदी का भी योगदान कम नहीं है। उन्होंने एक ओर तो उत्कृष्ट कोटि के चालीस रेखाचित्र लिखे, दूसरी ओर उनकी भूमिका में प्रकाश भी डाला- "जिस प्रकार अच्छा चित्र खींचने के लिए कैमरे का लैंस बढ़िया और फिल्म भी काफी सेंसिटव हानी चाहिए उसी प्रकार साफ चित्र के लिए रेखाचित्र में विश्लेषणात्मक बुद्धि तथा भावुकतापूर्ण हृदय दोनों का सामंजस्य होना चाहिए, संवेदनशीलता, विवेक और संतुलन इन सब गुणों की आवश्यकता है।

महादेवी वर्मा के कई संग्रह प्रकाशित हुए- 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएं' और 'पथ के साथी' आदि। कुछ विद्वान उन्हें संस्मरणात्मक रेखाचित्र मानते हैं। प्रकाशचंद्र गुप्त के 'पुरानी स्मृतियां और 'नए स्केच' संग्रह भी महत्वपूर्ण हैं। डॉ. राजनाथ शर्मा के अनुसार "इन्होंने पूर्ण आत्मीयता और कलापूर्ण ढंग से इनको संवारा है। इन्होंने सड़क, नगर, मौहल्ला आदि निर्जीव वस्तुओं में मान, अभिमान, ईर्ष्या-द्वेष, स्नेह, छल-कपट, घृणा ग्लानि आदि मानवीय भावों का आरोपण कर उन्हें मानव की सहानुभूति और प्यार का पात्र बना दिया है।" गुप्तजी ने कुछ ऐसे रेखाचित्र भी लिखे हैं जिनमें निबंध और रिपोर्ताज के मिले-जुले रूप उभरे हैं। इनकी रचनाओं में राजनीतिक चेतना, समाजवादी दृष्टिकोण, स्नेह, सहानुभूति, करुणा आदि का प्राधान्य है।

'विशाल भारत' पत्रिका के शहीद अंक में विभिन्न लेखकों ने शहीदों के अनेक ऐसे सुंदर रेखाचित्र लिखे थे जिनमें व्यक्ति का व्यक्तित्व, चरित्र, वेषभूषा कलात्मक ढंग से व्यंजित हो उठा था। 'हंस' ने रेखाचित्र विशेषांक (1939) प्रकाशित किया। इन विशेषांकों से रेखाचित्र विधा को पर्याप्त बल प्राप्त हुआ। इनके अतिरिक्त अन्य प्रतिष्ठित रेखाचित्रकार भगवतशरण उपाध्याय (वो दुनिया), हवलदार त्रिपाठी सहृदय (रांची का दासौड़ प्रताप), राधा राधिकारमण सिंह (टूटा

तारा), देवेंद्र सत्यार्थी (रखाएं बोल उठी), सत्यजीत वर्मा (एलबम), जगदीशचंद्र माथुर (दस तस्वीरे), इंद्र विद्यावाचस्पति (मैं इनका ऋणी हूं), सेठ गोविंददास (स्मृति कण), आचार्य विनय मोहन शर्मा (रखा और रंग).

इसके अतिरिक्त श्रीराम शर्मा, डॉ. प्रभाकर माचवे, डॉ. रघुवंश, डॉ. विद्यानिवास मिश्र और डॉ. विष्णुकांत शास्त्री के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

14.6 संस्मरण और रेखाचित्र में अंतर

संस्मरण और रेखाचित्र पर्याप्त निकट की विधाएं स्वीकार की जाती हैं। दोनों में ही अतीत की घटनाओं, स्मृतियों, भावानुभूतियों का ऐसा चित्रण रहता है कि उनमें वर्णित वस्तु, घटना एवं स्मृति के यथार्थ चित्र सामने उभर आए और भावनामूलक तथा कल्पनामूलक रोचकता, यथार्थ के साथ मिली-जुली रहे। दोनों में ही लेखक की व्यक्तिगत रुचियों की महत्ता होती है।

इसके साथ-साथ अंतर भी पर्याप्त है- संस्मरण अधिकतर प्रसिद्ध व्यक्तियों द्वारा प्रसिद्ध व्यक्तियों के संबंध में लिखे जाते हैं, पर रेखाचित्र सामान्य व्यक्ति पर भी लिखा जा सकता है। रेखाचित्र चरित्र उभारने का कार्य करता है, अतः उसे चारित्रिक चित्र भी माना जाता है, जबकि संस्मरण व्यक्ति-विशेष के चरित्र का दर्पण बनकर सामने आता हैं रेखाचित्र उसका वर्णन करता है। संस्मरण परिस्थिति विशेष का, क्षण विशेष का एक सजीव बिंब उभारकर पाठक के मन में उस बिंब को साकार कर देता है।

14.7 सार संक्षेप

रेखाचित्र एक स्वतंत्र विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका है और इनकी तालिका भी पर्याप्त लंबी है। फिर भी अभी उत्कृष्ट कोटि के रेखाचित्रों की कमी बनी हुई है। यह तो संतोष किया जाता है कि कुछ रचनाएं ऐसी हैं जिन पर गर्व किया जा सकता है। इसका भविष्य उज्ज्वल है क्योंकि उसकी पूर्व पीठिका जो

बनारसीदास चतुर्वेदी, महादेवी वर्मा, रामवृक्ष बेनीपुरी आदि लेखकों द्वारा निर्मित हुई है, श्रेष्ठ है। यह विधा रोचकता के समावेश के कारण, कहानी के समकक्ष ठहरती है अतः जीवनी, रिपोर्ताज, संस्मरण आदि से अधिक महत्वपूर्ण है।

14.8 मुख्य शब्द

1. **आत्मनिष्ठ**:

   आत्मा पर आधारित, स्वयं से संबंधित, या आत्मा से जुड़ा हुआ। इसका उपयोग किसी व्यक्ति, विचार, या वस्तु के उस पक्ष को दर्शाने के लिए किया जाता है जो पूरी तरह आत्म-केंद्रित हो।

2. **अनुरंजित**:

   प्रसन्न, आकर्षक, और सुशोभित किया हुआ। इसका उपयोग किसी वस्तु, व्यक्ति या स्थान के सुशोभन और मोहकता को प्रकट करने के लिए किया जाता है।

3. **अलंकृत**:

   सजाया हुआ, सुसज्जित, या शोभायुक्त। इसे सौंदर्य या वैभव बढ़ाने के लिए उपयोग किया जाता है, जैसे–किसी वस्तु, स्थान, या रचना को सुंदर रूप देना।

4. **व्यंजना**:

   अप्रत्यक्ष रूप से किसी विचार, भाव, या अर्थ को प्रकट करना। साहित्यिक संदर्भ में यह शब्द विशेष रूप से उस अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग किया जाता है, जिसमें स्पष्ट शब्दों के बजाय संकेतों और भावों से अर्थ प्रकट किया जाता है।

14.9 स्व प्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

1. उत्तर - सत्य
2. उत्तर - सत्य
3. उत्तर - असत्य
4. उत्तर - सत्य

14.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. गुप्त, प. (2021). संस्मरण और साहित्य की भूमिका. साहित्य प्रकाशन.
2. यादव, र. (2022). स्मृतियों का अर्थ: एक सांस्कृतिक दृष्टिकोण. हिंदी ज्ञान पुस्तकालय.
3. शर्मा, श. (2023). आधुनिक संस्मरण लेखन: रूप और संभावना. साहित्य अकादमी.
4. सिंह, प. (2024). यादें और गहराई: संस्मरण की शक्ति. भारतीय साहित्य परिषद

14.11 अभ्यास प्रश्न

1. संस्मरण की परिभाषा क्या है? डॉ. कृष्णदेव शर्मा और डॉ. गोविंद त्रिगुणायत द्वारा दी गई परिभाषाओं का विश्लेषण करें।
2. संस्मरण लेखन की प्रक्रिया में लेखक के व्यक्तित्व का क्या प्रभाव पड़ता है? उदाहरण देकर स्पष्ट करें।
3. संस्मरण और रेखाचित्र में अंतर को स्पष्ट करें। दोनों विधाओं में से कौन सी अधिक आत्मनिष्ठ होती है?

4. रेखा चित्र की विशेषताएँ क्या हैं? इस विधा के माध्यम से लेखक किस प्रकार किसी पात्र के व्यक्तित्व और परिस्थितियों को जीवंत रूप में प्रस्तुत करता है?
5. पद्मसिंह शर्मा और श्रीराम शर्मा के रेखाचित्रों के विश्लेषण से यह कैसे सिद्ध होता है कि रेखाचित्र में केवल बाहरी रूप का ही नहीं, बल्कि आंतरिक भावनाओं और मनोविज्ञान का भी चित्रण होता है?

इकाई - 15

जीवनी और आत्मकथा

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 जीवनी: परिचय एवं विकास
15.4 आत्मकथा परिचय एवं स्वरूप
15.5 आत्मकथा का उद्भव
15.6 जीवनी और आत्मकथा में अंतर
15.7 सार संक्षेप
15.8 मुख्य शब्द
15.9 स्व प्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर
15.10 संदर्भ ग्रन्थ
15.11 अभ्यास प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

जीवनी और आत्मकथा साहित्य की महत्वपूर्ण विधाएँ हैं, जो लेखक की जीवन-यात्रा, उसके अनुभवों और विचारों को विस्तार से प्रस्तुत करती हैं। जबकि जीवनी किसी अन्य व्यक्ति के जीवन के बारे में होती है, आत्मकथा उस व्यक्ति द्वारा लिखी जाती है, जो अपनी जीवनगाथा स्वयं प्रस्तुत करता है। यह साहित्यिक विधाएँ केवल व्यक्तित्व के सामाजिक और मानसिक पहलुओं को ही नहीं, बल्कि एक व्यक्ति के जीवन में घटित महत्वपूर्ण घटनाओं और संघर्षों को भी उजागर करती हैं।

इन विधाओं का साहित्य में विशेष स्थान है, क्योंकि ये न केवल जीवन के संघर्षों और उपलब्धियों को अभिव्यक्त करती हैं, बल्कि समाज और संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को भी दर्शाती हैं। जीवन की कठिनाइयों, असफलताओं, सफलताओं और संघर्षों की कथाएँ पाठकों को प्रेरणा और आत्मविश्लेषण के लिए मार्गदर्शन प्रदान करती हैं। जीवनी और आत्मकथा के माध्यम से लेखक अपने जीवन के अनुभवों से पाठकों को परिचित कराता है और उन्हें अपने अनुभवों से कुछ सिखने की प्रेरणा देता है।

जीवनी और आत्मकथा के बीच अंतर है, क्योंकि जीवनी किसी अन्य व्यक्ति के जीवन का वर्णन होती है, जबकि आत्मकथा स्वयं के जीवन का व्यक्तिगत और विश्लेषणात्मक चित्रण है। इस इकाई में हम इन दोनों विधाओं के परिचय, विकास, स्वरूप, और उनके साहित्यिक महत्व पर चर्चा करेंगे, साथ ही आत्मकथा साहित्य के प्रारंभ और उद्भव पर भी विचार करेंगे।

15.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझेंगे:

- जीवनी और आत्मकथा की परिभाषा और उनके बीच का अंतर।
- जीवनी और आत्मकथा के ऐतिहासिक विकास के प्रमुख युगों का अध्ययन।
- आत्मकथा साहित्य का स्वरूप और इसके लेखन की विशेषताएँ।
- हिंदी में आत्मकथा और जीवनी की प्रमुख रचनाएँ और उनके लेखक।
- आत्मकथा लेखन के उद्देश्यों, लाभ और महत्व का विश्लेषण।
- जीवनी और आत्मकथा के शास्त्रीय दृष्टिकोण से संबंधित विचारों का अवलोकन।

15.3 जीवनी: परिचय एवं विकास

जीवनी हिंदी गद्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। इसे यद्यपि अर्वाचीन विधा स्वीकार किया जाता है, पर डॉ. त्रिगुणायत का मत है कि यह प्राचीन विधा है। इतना अवश्य है कि इसका गठबंधन साहित्यिकता के साथ आधुनिक युग में ही हुआ है। यह बात दूसरी है कि इसके शास्त्रीय पक्ष पर हिंदी में कम विचार हुआ। मध्यकालीन वैष्णव भक्तों एवं भक्त कवियों संबंधी वार्ता एवं चरित्र साहित्य उपलब्ध है। इसे जीवनी भी माना जाए पर इसमें जीवनी के स्रोत तो विद्यमान हैं ही। 'गुसाई चरित्र' को तो तुलसीदास का जीवन-चरित्र माना ही जाता है। नाभादास के 'भक्तमाल' में भक्त कवियों के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। यह बात दूसरी है कि इन्हें प्रामाणित जीवन-चरित्र कहने में हिचकिचाहट होती है।

यह भी धारणा है कि हिंदी में 'जीवनी' शब्द अंग्रेज़ी के 'बायोग्राफी' शब्द के आधार पर प्रयुक्त हुआ। जो भी हो, पर जीवनी में किसी वर्णित व्यक्ति के संपूर्ण जीवन की चर्चा रहती है। शिल्पे की मान्यता है- "जीवनी को नायक के संपूर्ण जीवन अथवा उसके यथेष्ट भाग की चर्चा करनी चाहिए और अपने आदर्श रूप में उसे एक विशिष्ट इतिहास होना चाहिए।" डॉ. गोविंद त्रिगुणायत के अनुसार- "जीवन-कथा वह साहित्यिक विधा है, जिसमें भावुक कलाकार किसी व्यक्ति के संपूर्ण जीवन का या उसके जीवन के किसी भाग का वर्णन परम सुपरिचित ढंग से इस प्रकार व्यक्त करता है कि उस व्यक्ति की सच्ची जीवन गाथा के साथ-साथ कलाकार का हृदय भी मुखरित हो उठता है।"

इस विधा का विकास विभिन्न युगों में इस प्रकार हुआ-

भारतेंदु युग

इस विधा का प्रारंभ भी भारतेंदु युग से ही माना जाता है। भारतेंदु जी ने 'चरितावली' में विभिन्न व्यक्तियों के छोटे-छोटे जीवन-चरित्र लिखे हैं।

कार्तिक प्रसाद खत्री ने भीरा, विक्रमादित्य, शिवाजी, अहिल्याबाई के जीवन-चरित्र लिखे। राधाकृष्ण दास ने सूर, नागरीदास और भारतेंदु का जीवन-चरित्र लिखा। देवी प्रसाद ने बाबर, हुमायूं, शेरशाह, अकबर, शाहजहां, राणा सांगा, राणा प्रताप, मानसिंह, बीरबल आदि के चरित्रों पर प्रकाश डाला। बाबू बालमुकुंद गुप्त ने प्रतापनारायण मिश्र का जीवन-चरित्र लिखा। डॉ. जयकिशन प्रसाद खंडेलवाल के अनुसार इस युग के जीवनी-लेखकों में रमाशंकर व्यास, जगन्नाथ, बलभद्र मिश्र, काशीनाथ खत्री, पन्नालाल, गोकुलनाथ शर्मा, रत्नाकर, श्रीनारायण, गणेश, गोपालदास, देवगुण शर्मा, अयोध्या उपाध्याय, बालमुकुंद गुप्त, लाला खंगबहादुर 'खंग' आदि उल्लेखनीय हैं।

डॉ. खंडेलवाल के अनुसार- भारतेंदु युग के जीवनी-साहित्य में तथ्यपरकता है। इसमें प्राचीन भक्त, संत, कवि, धार्मिक नेता, राजा रानियों औद देश-विदेश के महापुरुषों तथा साहित्यकारों का वर्णन है।

द्विवेदी युग

इस युग में मनमथनाथ गुप्त द्वारा रचित गुरुनानक, सुंदरलाल का 'हजरत मोहम्मद', बलदेव उपाध्याय का 'शंकराचार्य, शिवनंदन सहाय का भारतेंदु हरिश्चंद्र, श्यामसुंदर दास का 'भारतेंदु हरिश्चंद्र, डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी का 'डॉ. राजेंद्र प्रसाद', पं. सीताराम चतुर्वेदी का 'मालवीयजी, घनश्याम दास बिड़ला का 'बापू, माधवप्रसाद मिश्र का 'स्वामी विशुद्धानंद' आदि। इसके अतिरिक्त डॉ. राधाकृष्णन, तिलक, नेहरू के भी जीवन-चरित्र लिखे गए। आनंद प्रकाश जैन का कार्य भी सराहनीय है।

इस श्रृंखला में बनारसीदास चतुर्वेदी का स्थान विशेष महत्वपूर्ण है। इन्होंने 'सत्यनारायण कविरत्न' की जीवनी में उनके गुण-दोषों का सहृदयतापूर्वक वर्णन करते हुए उनके जीवन का पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया। गणेशशंकर विद्यार्थी का जीवन-चरित्र और दीनबंधु ऐण्ड्रयूज की जीवनी भी लिखी।

जिस प्रकार गद्य की अन्य विधाओं का परिष्कार हो रहा था, इस काल में जीवन-साहित्य में भी निखार आया। तत्कालीन स्थितियों, परिस्थितियों के आलोक में, स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों का जीवन-चरित्र (बनारसीदास चतुर्वेदी), प्रेरणा के सोत बने और कुछ जीवनियां पर्याप्त लोकप्रिय हो गईं।

द्विवेदी युग के बाद

यह काल जीवनी-साहित्य के विशेष विकास का काल है। इस कालखंड में कई श्रेष्ठ जीवनियां सामने आई। राहुल जी ने मार्क्स, स्टालिन, महात्मा बुद्ध, सिंहल के वीर, नए भारत के नेता, सरदार पृथ्वीसिंह आदि पर लिखा।

डॉ. खंडेलवाल के अनुसार इन जीवनियों में लेखक ने चरितनायक के व्यक्तित्व के विकास में सामाजिक-आर्थिक पक्षों पर विशेष बल दिया।

बलराज मधोक (श्यामा प्रसाद मुखर्जी), पूर्णचंद्र सनक (चंद्रशेखर आजाद), इंदु विद्यावाचस्पति (महर्षि दयानंद), सेठ गोविंददास (देशरतन राजेंद्र प्रसाद), अमृतराय प्रेमचंद पर- (कलम का सिपाही), मदनगोपाल प्रेमचंद पर ही (कलम का मजदूर). ओंकार शरद (लोहिया), वासुदेवशरण अग्रवाल (हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन), डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी (बाणभट्ट की आत्मकथा) इसमें द्विवेदी जी ने बाणभट्ट के यायावर एवं प्रतिभाशाली जीवन का साहित्यिक परिचय दिया। यह अपने ढंग की निराली रचना है।

डॉ. रामविलास शर्मा ने 'निराला की साहित्य साधना' के प्रथम खंड में निराला के जीवन की झलक दी है, सुमंगल प्रसाद (बापू के साथ), सुशील कुमार (बापू के कारावास की कहानी) भी श्रेष्ठ हैं। डॉ. राजनाथ शर्मा के अनुसार "रांगेय राघव ने प्राचीन महापुरुषों और साहित्य-साधकों से संबंधित छोटी-छोटी औपन्यासिक जीवनियां लिखकर इस क्षेत्र में एक नया प्रयोग किया है।"

काका कालेलकर (बापू की झांकिया), विष्णु प्रभाकर (शरतचंद्र पर आवारा मसीहा), डॉ. राजेंद्र प्रसाद (बापू के कदमों में), जैनेंद्र (अकाल-पुरुष गांधी), भदंत आनंद कौसल्यायन (भगवान बुद्ध), दीनदयाल उपाध्याय (जगतगुरु शंकराचार्य), रामनाथ

सुमन (मोतीलाल नेहरू), रामवृक्ष बेनीपुरी (जयप्रकाश नारायण), भारतभूषण अग्रवाल (भारत-भक्त ऐण्ड्रयूज) आदि भी उल्लेखनीय हैं।

1. हिंदी में जीवनी विधा को अर्वाचीन मानने के साथ इसे _____ विधा भी स्वीकार किया गया है।
2. डॉ. गोविंद त्रिगुणायत के अनुसार, जीवन-कथा वह साहित्यिक विधा है जिसमें कलाकार किसी व्यक्ति के _____ जीवन का वर्णन करता है।
3. भारतेंदु युग में बाबू बालमुकुंद गुप्त ने _____ का जीवन-चरित्र लिखा।
4. 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में _____ के यायावर जीवन का साहित्यिक परिचय दिया गया।

15.4 आत्मकथा परिचय एवं स्वरूप

संस्मरण और जीवनी के समान ही आत्मकथा भी साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। आत्मकथा किसी विशिष्ट व्यक्ति द्वारा लिखा गया वह आख्यान, वृत्तांत या वर्णन है जो वह बड़ी बेबाकी से अपने जीवन के बारे में प्रस्तुत करता है। प्रायः यह व्यक्ति कोई दार्शनिक, विचारक, चिंतक, समाज-सुधारक, उत्कृष्ट राजनीतिज्ञ या कलाकार होता है जो अपने जीवनानुभव, अनुभूत तथ्यों, परिचित तथ्यों मान्यताओं आदि को समाज के सम्मुख प्रस्तुत कर दिशा-निर्देशन करना चाहता है। यह बात दूसरी है कि 'आत्म-प्रशंसा की भावना भी कुछ आत्मकथाओं में हो सकती है।

आत्मकथा का साहित्य में विशेष महत्व है। पाश्चात्य विचारक डॉ. ई. एस. बेटरा के अनुसार, "आत्मचरित की भांति अनोखा, अद्भुत तथा चमत्कारयुक्त संग्रहालय अन्य कोई साहित्य का रूप नहीं है।"

आत्मकथा का स्वरूप

यद्यपि इस पर कम ही विचार हुआ है, फिर भी कतिपय विद्वानों की निम्न मान्यता है-

1. "आत्मकथाकार अपने संबंध में किसी मिथक की रचना नहीं करता, कोई स्वप्न-सृष्टि नहीं करता, वरन् अपने गत जीवन के खट्टे-मीठे, उजले-अंधेरे, प्रसन्न-विषण्ण, साधारण असाधारण संचरण पर मुड़कर एक दृष्टि डालता है, अतीत को पुनः कुछ क्षणों के लिए स्मृति में जी लेता है और अपने वर्तमान तथा अतीत के मध्य संबंध सूत्रों का अन्वेषण करता है।" - डॉ. भगवतशरण भारद्वाज

2. "आत्मकथा लेखक के जीवन की दुर्बलताओं, सफलताओं आदि का वह संतुलित और व्यवस्थित चित्रण है जो उसके संपूर्ण व्यक्तित्व के निष्पक्ष उद्घाटन में समर्थ होता है।" - डॉ. गोविंद त्रिगुणायत

15.5 आत्मकथा का उद्भव

हिंदी में आत्मकथा साहित्य प्रायः कम है। आत्मकथा में प्रायः संपूर्ण जीवन का या जीवन के किसी विशिष्ट अंश का क्रमबद्ध वर्णन होता है। इस ढंग की पहली आत्मकथा जैन कवि बनारसीदास की 'अर्थ-कथा' मानी जाती है। भारतेंदु ने कुछ आप बीती-कुछ जग बीती' में अपनी आत्मकथा लिखने का प्रयास किया था, पर पूर्ण न हो सकी। इसी क्रम में सन् 1901 में पं. अंबिकादत्त व्यास ने 'निज वृत्तांत' लिखा। हिंदी की आरंभिक आत्मकथा में स्वामी श्रद्धानंद द्वारा रचित कल्याण का पथिक' महत्वपूर्ण मानी जाती है।

धार्मिक प्रवृत्ति-प्रधान व्यक्तियों की आत्मकथाएं

इस प्रकार की आत्मकथाओं में आत्म-निवेदन और आत्म-निगर्हण के साथ-साथ उन परिस्थितियों और घटनाओं का मार्मिक चित्रण मिलता है, जिन्होंने उनके जीवन को प्रभावित किया था। इस श्रेणी की उल्लेखनीय आत्मकथाएं हैं- वियोगीहरि (मेरा जीवन-प्रवाह), स्वामी दयाल संन्यासी (प्रवासी की आत्मकथा),

हरिभाऊ उपाध्याय (साधना के पथ पर), स्वामी सत्यदेव परिव्राजक (स्वतंत्रता की खोज)।

राजनीतिक प्रवृत्ति प्रधान व्यक्तियों की आत्मकथाएं

भारत के स्वतंत्रता संग्राम ने अनेक श्रेष्ठ पुरुषों को राजनीति की ओर प्रेरित किया। जीवन में न जाने कितने उतार-चढ़ाव आए, कितनी पीड़ा और विषमता को उन्होंने भोगा। इसका लेखा-जोखा इन आत्मकथाओं में अंकित है- महात्मा गांधी (मेरी कहानी), पंत नेहरू (मेरी आत्मकथा), डॉ. राजेंद्र प्रसाद (मेरी आत्मकथा), वीर सावरकर और भाई परमानंद की भी कुछ रचनाएं कारावास यात्रा पर हैं (काले पानी की कारावास कहानी, रामप्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा)।

कलाकार के जीवन की आत्मकथाएं

कला एक साधना मार्ग है, इस साधना में कष्ट, साधनाकाल की अनुभूतियां आदि होती हैं। इनका भावात्मक शैली में चित्रण इस प्रकार की आत्मकथाओं में होता है। इस कोटि की उल्लेखनीय आत्मकथाएं हैं- देवेंद्र सत्यार्थी (चांद सूरज के बीच), कन्हैयालाल मुंशी (स्वप्न सिद्धि की खोज में), बाबू गुलाबराय (हमारी जीवन की असफलताएं), डॉ. श्यामसुंदरदास (मेरी आत्म-कहानी), राहुल सांकृत्यायन (मेरी जीवन-यात्रा). आचार्य चतुरसेन शास्त्री (यादों की परछाइयां), बेचन शर्मा 'उग्र' (अपनी खबर), बच्चन (क्या भूलूं क्या याद करू), यशपाल (सिंहावलोकन), शांतिप्रिय द्विवेदी (परिव्राजक की प्रजा), पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी (मेरी अपनी कथा), सेठ गोविंददास (आत्म-निरीक्षण), पं. किशोरीदास बाजपेयी (साहित्यिक जीवन के संस्मरण), छविनाथ पांडे (अपनी बात). वृंदावन लाल वर्मा (अपनी कहानी), डॉ. संपूर्णानंद (कुछ स्मृतियां और स्फुट विचार), उपेंद्रनाथ अश्क (ज्यादा अपनी कम पराई)।

इसके अतिरिक्त आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने अपनी आत्मकथा लिखना प्रारंभ किया था, परंतु उनकी बीच में ही मृत्यु हो जाने के कारण यह प्रयास पूर्ण न हो

सका। प्रेमचंद ने 'हंस' का 'आत्मकथा अंक' निकाला था जिसमें अनेक साहित्यकारों ने अपनी संक्षिप्त आत्मकथाएं या उनके कुछ विशिष्ट अंश लिखे थे।
यह मानते हुए भी कि यह साहित्य लघु परिमाण में है फिर भी इसे साहित्य का महत्वपूर्ण अंग माना जाता है।

15.6 जीवनी और आत्मकथा में अंतर

दोनों में पर्याप्त अंतर है। पहला यह है कि जीवनी दूसरे के बारे में लिखी जाती है और आत्मकथा स्वयं के बारे में। यह बात दूसरी है कि दोनों में ही जीवन-चरित्र होता है. पर जीवनी में स्तुति-निंदा का भी थोड़ा-बहुत स्थान होता है, प्रशंसा को भी समेटा जा सकता है, परंतु आत्मकथा में प्रशंसा आत्मप्रशंसा का रूप धर लेगी, अतः वहां लेखक का बड़ी बेबाकी से तटस्थ रहना अपेक्षित है।

15.7 सार संक्षेप

इस अध्याय में जीवनी और आत्मकथा साहित्य की महत्वपूर्ण विधाओं का परिचय दिया गया है। जीवनी वह साहित्यिक रूप है जिसमें किसी व्यक्ति के जीवन की पूरी या महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन होता है, जबकि आत्मकथा लेखक के अपने जीवन का विवरण होती है। जीवनी का विकास भारतेंदु युग से हुआ, जहां प्रमुख लेखकों ने विभिन्न व्यक्तित्वों के जीवन की चर्चा की। द्विवेदी युग में इस विधा में और निखार आया और स्वतंत्रता संग्राम के सेनानियों की जीवनियाँ लिखी गईं।

आत्मकथा का स्वरूप भी महत्वपूर्ण है, जिसमें लेखक अपने जीवन के अनुभवों को बेबाकी से प्रस्तुत करता है। यह किसी दार्शनिक, समाज सुधारक, या कलाकार द्वारा लिखा जाता है, जिसमें वे अपने जीवन के सच्चे अनुभवों को साझा करते हैं। हिंदी में आत्मकथा साहित्य का प्रारंभ बनारसीदास की 'अर्ध-कथा' से हुआ,

और फिर कई अन्य लेखकों ने अपनी आत्मकथाएँ लिखी, जैसे पं. अंबिकादत्त व्यास और स्वामी श्रद्धानंद।

अध्याय में यह भी बताया गया कि आत्मकथा और जीवनी के बीच मुख्य अंतर है कि जीवनी दूसरों के जीवन का विवरण होती है, जबकि आत्मकथा लेखक के अपने अनुभवों पर आधारित होती है।

15.8 मुख्य शब्द

1. जीवनी: - किसी व्यक्ति के जीवन के घटनाओं, कार्यों और संघर्षों का विवरण, जिसमें व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन या उसके महत्वपूर्ण पहलुओं का वर्णन होता है।
2. आत्मकथा: - लेखक द्वारा अपने व्यक्तिगत जीवन की कथा का वर्णन, जिसमें वह अपनी अनुभवों और विचारों को व्यक्त करता है।
3. विधा: - साहित्य की एक शैली या श्रेणी, जैसे काव्य, गद्य, निबंध, आदि।
4. भारतेंदु युग: - 19वीं सदी के अंत में भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा हिंदी साहित्य को नए दिशा देने वाला काल, जिसमें जीवनी लेखन का प्रचलन शुरू हुआ।
5. द्विवेदी युग: - 20वीं सदी के प्रारंभ में हिंदी साहित्य का वह दौर, जिसमें जीवनी लेखन में प्रगति हुई और कई प्रसिद्ध व्यक्तित्वों की जीवनियाँ लिखी गईं।
6. चरितनायक: - जीवनी या आत्मकथा का मुख्य पात्र, जिसके जीवन की कथा लिखी जाती है।
7. संवेदनशीलता: - आत्मकथा में लेखक द्वारा अपने जीवन के सुख-दुःख और घटनाओं का गहरी भावना से वर्णन।
8. आत्म-प्रशंसा: - आत्मकथा में लेखक द्वारा अपनी महानता या सफलता का गुणगान।

9. जीवनकथा: - किसी व्यक्ति के जीवन के प्रमुख पहलुओं का सारगर्भित रूप में वर्णन।

15.9 स्व प्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

1. उत्तर - प्राचीन
2. उत्तर - संपूर्ण
3. उत्तर - प्रतापनारायण मिश्र
4. उत्तर - बाणभट्ट

15.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. शर्मा, राधिका (2021). *महात्मा गांधी की आत्मकथा: जीवन की गाथा*. दिल्ली: हिंदी पुस्तकालय.
2. कुमार, सुनील (2022). *स्वामी विवेकानंद: जीवन और दर्शन*. मुंबई: भारतीय साहित्य प्रकाशन.
3. चौधरी, अर्जुन (2023). *स्वतंत्रता संग्राम और जीवनी लेखन*. कानपुर: लोक साहित्य.
4. यादव, विमल (2020). *आत्मकथा: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन*. दिल्ली: राष्ट्रीय पुस्तक गृह.
5. तिवारी, महेश (2023). *आधुनिक हिंदी जीवनी साहित्य*. पटना: वर्धमान पुस्तक.

15.11 अभ्यास प्रश्न

1. जीवनी और आत्मकथा में अंतर स्पष्ट कीजिए।

2. आत्मकथा के स्वरूप को लिखिए।
3. जीवनी के विकास क्रम को समझाइए।
4. आत्मकथा के उद्‌भव विकास को विस्तार से समझाइए।

इकाई - 16

रिपोतार्ज

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 रिपोतार्ज परिभाषाएं

16.4 रिपोर्ताज उद्भव और विकास

16.5 हिंदी के प्रसिद्ध रिपोतार्ज

16.6 सार संक्षेप

16.7 मुख्य शब्द

16.8 स्व प्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

16.9 संदर्भ ग्रन्थ

16.10 अभ्यास प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

रिपोर्ताज एक ऐसी साहित्यिक विधा है, जो घटना के आंखों देखे विवरण और अनुभवों को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करती है। यह पत्रकारिता और साहित्य का सम्मिलन है, जो घटना के वास्तविक रूप को बिना किसी आंशिकता के पाठकों के सामने लाता है। रिपोर्ताज का उद्देश्य केवल जानकारी देना नहीं, बल्कि घटनाओं को इस प्रकार प्रस्तुत करना है कि वह पाठक के दिल पर प्रभाव डालें और उसे सोचने पर मजबूर करें।

रिपोर्ताज का उद्भव द्वितीय विश्व युद्ध के समय हुआ था, जब पत्रकार और लेखक स्वयं युद्ध क्षेत्रों में गए और वहां की घटनाओं को न केवल तथ्यात्मक रूप से, बल्कि संवेदनशीलता और कलात्मक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया। हिंदी में इस विधा का प्रारंभ बंगाल के अकाल के समय हुआ, जब डॉ. रांगेय राघव ने

'तूफानों के नाम' से अपने रिपोर्ताज की शुरुआत की। इसके बाद, कई प्रमुख साहित्यकारों ने इस विधा को अपनाया और इसे हिंदी साहित्य में एक महत्वपूर्ण स्थान दिलवाया।

इस इकाई में रिपोर्ताज के इतिहास, विकास, लेखकों और उनकी कृतियों के बारे में चर्चा की जाएगी। साथ ही, यह भी समझा जाएगा कि किस प्रकार रिपोर्ताज पत्रकारिता और साहित्य दोनों का सम्मिलन है और कैसे यह समाज की समस्याओं और घटनाओं को एक नई दृष्टि से प्रस्तुत करता है।

16.2 उद्देश्य

प्रिय शिक्षार्थियों, इस इकाई के अध्ययन के बाद आप निम्नलिखित पहलुओं को समझ सकेंगे:

- रिपोर्ताज की परिभाषा और इसके मुख्य तत्वों को, जैसे कि इसकी साहित्यिक और पत्रकारिता विशेषताएँ।
- रिपोर्ताज के उद्भव और विकास की प्रक्रिया, जिसमें द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान इसकी शुरुआत, और हिंदी में इसके सूत्रपात का इतिहास।
- प्रमुख हिंदी रिपोर्ताज लेखकों के नाम और उनके प्रसिद्ध रिपोर्ताजों के बारे में जानेंगे।
- रिपोर्ताज की शैली, जिसमें घटना का विवरण और उसका कलात्मक प्रस्तुतीकरण शामिल है।
- हिंदी साहित्य में रिपोर्ताज की स्थिति और इसके साहित्यिक महत्व का मूल्यांकन।

16.3 रिपोतार्ज परिभाषाएं

1. "किसी आंखों देखी घटना के विस्तृत विवरण के संक्षिप्त तथा सरल शैली में प्रस्तुतीकरण को 'रिपोर्ताज' की संज्ञा दी जाती है।" - डॉ. माया अग्रवाल

2. "जिस घटना में वर्ण्य-विषय का आंखों देखा तथा कानों-सुना ऐसा विवरण प्रस्तुत किया जाए कि पाठक की हृदयतंत्री के तार झंकृत हो उठें और वह उसे भूल न सके उसे 'रिपोर्ताज' कहते हैं।" - डॉ. ओमप्रकाश सिंहल

16.4 रिपोर्ताज उद्‌भव और विकास

द्‌वितीय विश्व युद्‌ध के समय गद्‌य की एक नवीन विधा यूरोप में जन्मी। साहित्यकार स्वयं युद्‌ध क्षेत्र में गए और वहां के समाचार सर्वथा नए ढंग से भेजे, ये समाचार ही 'रिपोर्ताज' कहलाए। प्रख्यात रूसी लेखक एलिया एहरनबर्ग के लिखे रिपोर्ताज ने विश्व में प्रसिद्‌धि पाई।

हिंदी में इस विधा का सूत्रपात बंगाल के भयानक अकाल (1943) में माना जाता है। डॉ. रांगेय राघव स्वयं अकालग्रस्त क्षेत्र बंगाल गए, वहां से जो समाचार भेजे, उन्होंने ही रिपोर्ताज का रूप धारण कर लिया। उनके ये रिपोर्ताज तूफानों के नाम' से प्रकाशित हुए।

परंतु डॉ. देवीशरण रस्तोगी रिपोर्ताज के सूत्रपात करने का श्रेय श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकरजी को प्रदान करते हैं- 1926 के गुरुकुल कांगड़ी की रजत जयंती से संबंधित उनका रिपोर्ताज, हिंदी का पहला रिपोर्ताज माना जाता है। किंतु डॉ. ओमप्रकाश सिंहल के मतानुसार हिंदी में रिपोर्ताज की परंपरा के सूत्रपात का श्रेय, प्रभाकर जी को नहीं, श्री शिवदान सिंह चौहान को मिलना चाहिए। सबसे पहले सन्‌ 1938 में उन्हीं का रिपोर्ताज 'लक्ष्मीपुरा' प्रकाशित हुआ था।

16.5 हिंदी के प्रसिद्‌ध रिपोतार्ज

प्रारंभ पर भले ही विवाद हो, पर हिंदी में कई प्रतिष्ठित रिपोर्ताज सामने आए हैं जिनके प्रतिष्ठित लेखक इस प्रकार हैं-प्रकाशचंद्र गुप्त-इनके घटना प्रधान रिपोर्ताज 'रेखाचित्र' संग्रह में संकलित हैं, जिनमें से 'स्वराज्य भवन', 'अल्मोड़े का बाजार', 'बंगाल का अकाल' महत्वपूर्ण हैं। अमृतराय, प्रभाकर माचवे के भी

कई रिपोर्ताज प्रकाशित हुए। उपेंद्रनाथ अश्क (रेखाएं और चित्र-संकलन जिसमें पहाड़ों में 'प्रेममय संगीत' प्रमुख है)। रामनारायण उपाध्याय ('गरीब और अमीर शीर्षक' जिसमें 'नव वर्षांक समारोह' महत्वपूर्ण हैं)। शमशेर बहादुर सिंह (प्लाट का मोर्चा), कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर (क्षण बोले कण मुस्काए) के साथ विष्णु प्रभाकर के भी रिपोर्ताज सामने आए।

यह क्रम गतिमान रहा और फणीश्वरनाथ रेणु (एकलव्य के नोट्स), भदंत आनंद कौशल्यायन (देश की मिट्टी बुलाती है), शिवसागर मिश्र (वे लड़ेंगे हजारों साल), डॉ. भगवतशरण उपाध्याय (खून के छींटे), रामकुमार (पेरिस के नोट्स), श्रीकांत वर्मा (मुक्ति फौज), कमलेश्वर (क्रांति करते हुए आदमी को देखा), डॉ. धर्मवीर भारती (युद्ध यात्रा), पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी (मोटर स्टैंड), विवेकीराय (बाढ़ ! बाढ़ !! बाढ़ !!!), कैलाश नारद (धरती के लिए), जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी (चीनियों द्वारा निर्मित काठमांडू-ल्हासा सड़क), निर्मल वर्मा (प्रातः एक स्वप्न), सतीश कुमार (क्या हमने कोई षड्यंत्र रचा था), बालकृष्ण राव (कमलकांतजी ने कहा), जगदीशचंद्र जैन (पीरिडा की डायरी), अमृतलाल नागर (गदर के फूल), प्रभाकर माचवे (जब प्रभाकर पाताल गए). लक्ष्मीचंद्र जैन (कागज़ की किश्तियां) आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

रिपोर्ताज

रिपोर्ताज का तात्पर्य है घटना का विवरण। रिपोर्ट के कलात्मक और साहित्यिक रूप को ही रिपोर्ताज कहते हैं। रिपोर्ताज का विषय कभी कल्पित नहीं होता है। यह विधा पत्रकारिता और साहित्यिकता से युक्त होने पर रिपोर्ताज बन जाती है।

लेखक	रिपोर्ताज
• शिवदान सिंह चौहान	लक्ष्मीपुरा
• रांगेय राघव	तूफानों के बीच
• धर्मवीर भारती	युद्ध यात्रा
• कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	क्षण बोले कण मुस्कुराए
• शिवसागर मिश्र	वे लड़ेंगे हजार साल
• शमशेर बहादुर सिंह	प्लॉट का मोर्चा

स्वप्रगति परिक्षण

1. रांगेय राघव द्वारा रचित रिपोर्ताज का नाम _____ है।
2. रिपोर्ताज विधा के प्रसिद्ध लेखक _____ हैं, जिनकी रचना 'युद्ध यात्रा' महत्वपूर्ण मानी जाती है।
3. 'वे लड़ेंगे हजार साल' नामक रिपोर्ताज के लेखक _____ हैं।
4. 'क्षण बोले कण मुस्कुराए' रिपोर्ताज के लेखक _____ हैं।

16.6 सार संक्षेप

रिपोर्ताज एक ऐसी साहित्यिक विधा है जिसमें लेखक किसी घटनाक्रम को आंखों देखी घटनाओं और अनुभवों के आधार पर विस्तार से, संवेदनशीलता और कलात्मकता के साथ प्रस्तुत करता है। यह पत्रकारिता और साहित्य का सम्मिलन है, जो घटनाओं को केवल तथ्यात्मक रूप में नहीं, बल्कि गहरे प्रभाव और भावनात्मक दृष्टिकोण से पाठकों के समक्ष लाता है।

इस विधा का प्रारंभ द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान हुआ, जब लेखक और पत्रकार युद्ध क्षेत्रों से प्रत्यक्ष रिपोर्ट भेजते थे। हिंदी में रिपोर्ताज की शुरुआत बंगाल के अकाल (1943) के दौरान हुई, जब डॉ. रांगेय राघव ने अपने रिपोर्ताज 'तूफानों के नाम' के रूप में इसे पेश किया। इसके बाद, हिंदी साहित्य में कई प्रतिष्ठित

लेखकों ने इस विधा को अपनाया और इसे लोकप्रिय किया, जैसे कि कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', धर्मवीर भारती, शमशेर बहादुर सिंह, फणीश्वरनाथ रेणु, और कमलेश्वर।

रिपोर्ताज में घटनाओं के जीवंत और प्रभावशाली विवरण के माध्यम से पाठक को न केवल सूचित किया जाता है, बल्कि उनके भीतर उस घटना को महसूस करने का अनुभव भी उत्पन्न किया जाता है। यह विधा पत्रकारिता के विकास के साथ निरंतर परिपक्व होती गई है और आज भी समाज की जटिलताओं और समस्याओं को उजागर करने का एक प्रभावशाली माध्यम बनी हुई है।

16.7 मुख्य शब्द

1. **रिपोर्ताज** - किसी घटना या दृश्य का आंखों देखी जानकारी को विस्तार से और साहित्यिक रूप से प्रस्तुत करना। इसमें लेखकीय संवेदनाओं का समावेश होता है, जिससे घटना को एक गहरे प्रभाव के साथ दर्शाया जाता है।
2. **आंखों देखा** - वह जानकारी या विवरण जो लेखक ने स्वयं देखा और अनुभव किया हो। रिपोर्ताज में यह विवरण महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि यह पाठकों को घटनाओं से सीधे जोड़ता है।
3. **पत्रकारिता** - समाचार और घटनाओं का लेखन, प्रसारण और विश्लेषण। रिपोर्ताज पत्रकारिता की एक उन्नत विधा है, जिसमें साहित्यिक गुण होते हैं।
4. **साहित्यिकता** - किसी कृत्या का कला, भावनाओं और गहरी सोच से जुड़ा हुआ होना। रिपोर्ताज में साहित्यिकता का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि यह पाठकों को प्रभावी तरीके से घटनाओं का अनुभव कराता है।

5. **विवरण** - किसी घटना या वस्तु का विस्तार से और ध्यान से विवरण करना। रिपोर्ताज में घटना का विवरण विशेष रूप से महत्वपूर्ण होता है, जिससे पाठक उसे महसूस कर सके।
6. **भावनात्मक** - किसी व्यक्ति या घटना के साथ जुड़ी हुई भावनाओं से संबंधित। रिपोर्ताज में घटनाओं को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि पाठकों की भावनाओं को जगाया जा सके।
7. **प्रस्तुति** - किसी विषय या जानकारी को व्यवस्थित और प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करना। रिपोर्ताज में प्रस्तुत करने की शैली अन्य लेखन विधाओं से अलग होती है।
8. **उद्भव** - किसी विधा या विचार का आरंभ। रिपोर्ताज की शुरुआत द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान हुई, जब पत्रकारों ने युद्ध क्षेत्र से घटनाओं का रिपोर्ट करना शुरू किया।
9. **विकास** - किसी चीज का समय के साथ विस्तार और बदलाव। रिपोर्ताज ने पत्रकारिता और साहित्य के बीच एक स्थान विकसित किया है।

10. साहित्यकार - वह व्यक्ति जो साहित्यिक कृतियां रचता है। रिपोर्ताज विधा को कई प्रमुख साहित्यकारों ने अपनाया, जैसे कि धर्मवीर भारती, शमशेर बहादुर सिंह आदि।

16.8 स्व प्रगति-परीक्षण प्रश्नों के उत्तर

प्रगति की जांच

1. उत्तर - तूफानों के बीच
2. उत्तर - धर्मवीर भारती
3. उत्तर - शिवसागर मिश्र

4. उत्तर - कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

16.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. शर्मा, अ. (2021). *समय की सच्चाई: रिपोर्ताज और उसके काव्यात्मक रूप*। दिल्ली: हिन्दी साहित्य प्रकाशन।
2. पांडेय, प. (2022). *रिपोर्ताज की विधा और उसकी प्रमुख विशेषताएँ*। इलाहाबाद: साहित्य विमर्श।
3. वर्मा, र. (2023). *रिपोर्ताज लेखन: पत्रकारिता और साहित्य का संगम*। भोपाल: प्रभात पब्लिकेशन।
4. मिश्र, श. (2024). *रिपोर्ताज के सिद्धांत और विकास*। कानपुर: भारतीय साहित्य संस्थान।
5. सिंह, म. (2020). *हिंदी साहित्य में रिपोर्ताज: ऐतिहासिक परिपेक्ष्य*। वाराणसी: साहित्यधारा।

16.10 अभ्यास प्रश्न

1. रिपोर्ताज की परिभाषा क्या है? डॉ. माया अग्रवाल और डॉ. ओमप्रकाश सिंहल की परिभाषाओं की
2. तुलना करें।
3. रिपोर्ताज के उद्भव और विकास की प्रक्रिया को समझाएं। इस विधा के विकास में कौन से प्रमुख साहित्यकारों का योगदान है?
4. हिंदी साहित्य में प्रसिद्ध रिपोर्ताज लेखकों के नाम बताएं और उनके प्रमुख कार्यों का उल्लेख करें।
5. रिपोर्ताज और रिपोर्ट के बीच अंतर स्पष्ट करें।
6. 'लक्ष्मीपुरा' और 'तूफानों के बीच' रिपोर्ताज का तुलनात्मक अध्ययन करें।